होलकरहिन्दीग्रन्थमाला नं० ८

विज्ञान और आविष्कार



लेखक

सुखसम्पतिरायभंडारी

प्रकाशक

श्रीमध्यभारतहिन्दीसाहित्यसमिति, इन्दौर

सम्वत् १९७६

प्रथम मुद्रण]

[मूल्य १=)

निवेदन

इस वक्त सारे भारतवर्ष में हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का आन्दोलन हो रहा है। भारत के प्राय. सब नेताओं ने यह बात मुक्तकंठ से स्वीकार कर ली है कि हिन्दी ही भारत की राष्ट्रभाषा होने का गौरव प्राप्त कर सकती है। किसी भी भाषा को राष्ट्रभाषा होने के लिये दो बातों की आवश्यकता है। एक तो उसके बोलनेवालों की सख्या अधिक होनी चाहिये और दूसरे उसका साहित्य खूब समृद्धिशाली होना चाहिये। पहला गुण हिन्दी भाषा में पूर्णरूप से है। मद्रास प्रान्त को छोडकर सारे भारतवर्ष में हिन्दी अच्छी तरह से समझी जाती है। भिन्न भाषा-भाषी तो हिन्दी को केवल समझ ही नहीं लेते हैं, पर टूटी फूटी हिन्दी में अपने भावों तक को व्यक्त कर लेते हैं। जो भिन्न भाषा-भाषी लोग हिन्दी का अध्ययन करते हैं वे तो थोडे ही दिनों में इस भाषा पर अच्छा अधिकार जमा लेते हैं। इस बार बम्बई के सम्मेलन में कुछ मद्रासप्रान्तनिवासियों के भाषण हुए थे। थोडे ही दिनों के अध्ययन के बाद इन लोगों ने हिन्दी पर इतना अच्छा अधिकार जमा लिया था कि वे धाराप्रवाह से हिन्दी में व्याख्यान देते थे। मतलब यह कि हिन्दी सरल और सुबोध भाषा है। भारत में हिन्दी बोलनेवालों की सख्या दस करोड से अधिक है, इसके अतिरिक्त अन्य भाषा-भाषी भी हिन्दी ठीक तौर से समझ लेते हैं, अतएव पहले गुण के लिहाज से हिन्दी राष्ट्रभाषा होने के सर्वथा योग्य है।

अब दूसरी बात पर विचार करना है। अब यह देखना है कि हिन्दी का साहित्य किस प्रकार समृद्धिशाली है? इसमें सन्देह नहीं कि इन दस पाच वर्षों में हिन्दी साहित्य ने कुछ

अच्छी तरक्की की है। यदि उसमें उपन्यासों के ढेर के ढेर प्रकाशित हुए हैं, तो इनके साथ साथ कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए हैं। पर राष्ट्रभाषा के पद पर बैठनेवाली हिन्दी के लिये यह तरक्की कुछ नहीं के बराबर है। दुःख की बात है कि हिन्दी में न तो राजनीति ही पर कोई अच्छा ग्रन्थ है, न समाजशास्त्र ही पर। तात्विक इतिहास, विज्ञान, तुलनात्मक दर्शनशास्त्र, कलाकौशल, उद्योग-धन्धे, व्यापार आदि महत्व-पूर्ण विषयों पर हिन्दी में अच्छे ग्रन्थ नहीं लिखे गये। हिन्दी भाषा की इसी कमी पर मेरा ध्यान गया और मैंने सोचा कि जब तक इन विषयों पर कोई योग्य लेखक लेखनी न उठावे तब तक, योग्यता न होने पर भी, मैं इन विषयो पर कुछ लिखता रहूं। यह ग्रन्थ मेरे इसी विचार का फल है।

यह ग्रन्थ विज्ञान सम्बन्धी है। हिन्दी में इस प्रकार के ग्रन्थों का अभाव है। इसमें मैंने दिखलाया है कि वैज्ञानिक जीवन किस प्रकार का होता है और उसका किस प्रकार विकास होता है। विज्ञानी को खोज करते समय अपनी मनो-वृत्ति कैसी रखनी पडती है? इसके बाद विज्ञान के कुछ मह-त्वपूर्ण विषयों और आविष्कारों पर मैंने थोडा-बहुत लिखा है। ग्रन्थ को देखने से पाठकों को इस ग्रथ के विषय में विशेष जानकारी हो जायगी। इस ग्रथ को लिखने में मुझे अंग्रेजी भाषा के कोई चालीस पचास ग्रन्थों से सहायता लेनी पडी है। उनके लेखकों को अलग अलग धन्यवाद देना यहां सम्भव नहीं। अतएव इन ग्रन्थों के विद्वान् लेखकों के प्रति मैं अपना हार्दिक कृतज्ञता प्रकाशित करता हूं। इसके अतिरिक्त इन्दौर के सुप्रसिद्ध भूविद्याविशारद श्रीयुत सत्यबोध हुदलीकर एम० ए०, पी० एच० डी० ने मुझे "भूपृष्ठशास्त्र" पर मराठी में

लेख लिखकर दिया था। मैने इस पुस्तक में इसका हिन्दी अनुवाद दिया है, इस कृपा के लिये मैं आपका बडा अहसानमन्द हूं। यहां के होलकर कालेज के प्रोफेसर देवधर महाशय ने भी मुझे एक लेख देने की कृपा की थी। उनके प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हू। वैज्ञानिक ग्रन्थों के समझने में मुझे यहा के अध्यापक श्रीयुत विष्णुराव बारपुटे बी० एस सी० से बडीही सहायता मिली। अतएव यहां इनको हार्दिक धन्यवाद देना मैं उचित समझता हू

स्थानीय महाराजा होलकर कमेटी ने मुझे उचित पुरस्कार देकर इसे प्रकाशित किया है, अतएव इस कमेटी का भी मैं कृतज्ञ हू। उक्त कमेटी के प्रेसिडेएट श्रीयुत रावबहादुर सरदार माधवराव विनायक किबे एम० ए०, एम० आर० ए० एस० तथा सेक्रेटरी सुप्रसिद्ध हिन्दीप्रेमी रायबहादुर डाक्टर सरजूप्रसादजी तथा यहा के हाइकोर्ट के भूतपूर्व जज श्रीयुत जुगमन्दिरलालजी एम० ए०, बैरिस्टर को भी हार्दिक धन्यवाद देता हु, जिन्होने इस सम्बन्ध में मेरे उत्साह को खूब बढाया था। स्थानीय डेली कालेज के भूतपूर्व प्रोफेसर हिन्दी के सुविख्यात, लेखक श्रीयुत बाबू सम्पूर्णानन्दजी का भी कृतज्ञ हू कि उन्होने इस पुस्तक का अवलोकन कर मुझे कुछ योग्य सूचनाएँ दी हैं

अब मुझे यह निवेदन करना है कि कई प्रकार की अव्यवस्था के कारण तथा मेरे अस्वास्थ्य के कारण मे एक वक्त से अधिक इस पुस्तक के प्रूफ नहीं देख सका। इससे इसमें बहुतसी भाषा सम्बन्धी भूलें रह गई है। पाठक उन्हें सुधार कर पढें, इसकी भाषा में भी कुछ दोष है। इसका कारण

यह है कि यह विषय ही बहुत जटिल है और हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दों की कमी है। दूसरा कारण यह है कि मैं भी इतना योग्य लेखक नहीं हूं कि भाषा बिलकुल शुद्ध लिख सकूं। इसके अतिरिक्त पुस्तक बहुत जल्दी में लिखी गई है और अस्वास्थ्य के कारण मैं इसे दुबारा नहीं देख सका हूँ। आशा है, पाठकगण इसके लिये मुझे क्षमा करेंगे और इस पुस्तक को भाषा की दृष्टि से नहीं पर विषय की दृष्टि से अवलोकन करेंगे।

सुखसम्पत्तिराय भण्डारी।

अध्याय पहला

विज्ञान

अच्छे कार्य्य का कभी नाश नहीं होता

—मेक्समूलर

सिवा अज्ञानता के और कुछ अन्धकार ही नहीं है

—शेक्सपीयर

सब ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, पर ऐसे बहुत कम लोग हैं जो उसके लिये कुछ खर्च करना चाहते हैं

—राल्फवाल्डो एमर्सन

एक नाले के पास पत्थर की एक बडी चट्टान रखी हुई है, उस पर एक आदमी सुबह से आकर बैठा हुआ है। तीन देहाती स्त्रियां उस ओर से निकलती हैं और वे इससे प्रणाम करके चली जाती हैं। सूर्य भगवान के अस्त हो जाने पर वे अपने खेतों से वापस लौटती हैं और उस मनुष्य को उसी चट्टान पर बैठा हुआ पाती हैं। वे देखती हैं कि सुबह उस मनुष्य का जिस जगह ध्यान था अब भी वहीं है। वह किसी पदार्थ को बडे गौर और सूक्ष्म दृष्टि से देख रहा है। ये बेचारी क्या समझें कि यह मनुष्य कौन है? किस लिये यहां बैठा हुआ है और किस चीज पर अपना ध्यान जमाये हुए है। देहाती औरतें इसे एक भोलाभाला प्राणी समझ आपस में कानाफूसी करने लगीं कि यह मनुष्य कितना मूर्ख और भोला है कि व्यर्थ के लिये सुबह से अब तक, जब कि शाम होने आई है, यहीं बैठा हुआ है। यह कोई पागल तो नहीं है? सचमुच इसकी दशा बडी शोचनीय और दयाजनक है। पाठक! क्या आप सोच सकते हैं कि यह मनुष्य कौन था?

होना है। विज्ञान जगत में प्रकाश डालने वाले—अपने निरीक्षण से कई बातों का फल निकालनेवाले—महामति गैलिलियो को अपने बुढापे में इसका पुरस्कार यह मिला कि उसे कारावास का कठिन दण्ड भोगना पडा—दारुण यातनाए सहनी पडी। सारांश यह है कि परम्परागत विश्वासों के गुलामो ने ससार मे नया प्रकाश डालनेवाले गैलिलियो के साथ इस प्रकार का पाशविक और नीच व्यवहार किया ?

लडन के रायल इन्स्टीट्यूशन में विद्वान् और भद्र श्रोतृसमाज के सामने एक ऐसे विज्ञानविद् व्याख्यान दे रहे थे जिन्होंने अपने मौलिक (original) प्रयोगो के कारण ससार मे विख्याति प्राप्त की थी। आपने यह बतालाया कि तारों के वर्तुल के पास जब लोह चुबक लाया जाता है तब उन तारों में थोडा सा विजली का प्रवाह उत्पन्न होता है। यह एक नया और अपूर्व आविष्कार था पर पाठक क्या आप यह समझते है कि श्रोतृसमाज पर इस आविष्कार का कुछ प्रभाव पडा ? यदि आप ऐसा समझते है तो भूल करते हैं। श्रोतृसमाज की ओर से एक महिला उठ कर बोली कि "प्रोफेसर महाशय ! माना कि आपके कहे अनुसार सब कुछ प्राप्त हो जायगा, पर इससे फायदा क्या" ? इसके जवाब मे उक्त प्रो० महाशय ने कहा कि बाई ' यह तो कहो कि नये पैदा हुए लडके से क्या फायदा है ?

अग्रेजी के सुप्रख्यात् लेखक मि० लेकी "Democracy and Liberty" नामक पुस्तक की प्रस्तावना में लिखते है कि आधुनिक वैज्ञानिक खोज के विशाल क्षेत्र को ग्लेडस्टन जैसे प्रख्यात् विद्वान और राजनीतिज्ञ भी उपेक्षा की दृष्टि से देखते थे। इसका प्रमाण यह है कि जब विज्ञानविद् फेरेडे महाशय ग्लेडस्टन साहब को तथा अन्य विद्वान् महाशयों को

विज्ञान् के महत्वपूर्ण नये आविष्कार के रहस्य को समझाने की चेष्टा कर रहे थे, तब ग्लेडस्टन साहब ने कहा था कि "माना कि जो कुछ आप कहते हैं, सब सच है पर इससे लाभ क्या ? इसके उत्तर में फेरेडे महाशय ने कहा जनाब क्यों नहीं। इन आविष्कारों से आपको बहुत कुछ कर मिलने की सम्भावना है।

कहने का साराश यह है कि इन आविष्कर्ताओं का अपने समय में आदर नहीं हुआ। फेरेडे के यान्त्रिक गति से विद्युत पैदा करनेवाले आविष्कार का सुशिक्षित लोगो ने कुछ महत्व नहीं समझा। पोपो के फैसले के विरुद्ध प्रकृति माता की कोर्ट में अपील करनेवाला गैलिलियो उस समय के लोगो की दृष्टि में असभ्य जचा। फेवर का जीवाणु विषयक अभ्यास उन देहाती औरतो को पागलपन मालूम हुआ।

यहां वैज्ञानिक क्षेत्र मे सफलता प्राप्त किये हुए तीन आदर्श आविष्कर्ताओ का उदाहरण उपस्थित किया है और साथ साथ में यह भी दिखलाया गया है कि लोगो के उनके प्रति क्या भाव रहे है ? प्रकृति विज्ञानी केवल ज्ञान ही के अर्थ ज्ञान की खोज करता है। प्रकृति के रहस्य को जानने का यत्न करता है। यह अपनी प्राणप्यारी पत्नी प्रकृति देवी के मुख मण्डल पर नित्य नया सौन्दर्य—खूबसूरती—देखता है। उसके हर एक कार्य में नित्य नये आश्चर्य देखता है। उसे अपने प्रत्येक आविष्कार पर जो आत्म-सतोष—जो आत्मानद— प्राप्त होता है, सचमुच वह उसके लिये अवर्णनीय होता है। तीन लोक की सम्पत्ति भी उसको उसके आगे तुच्छ मालूम होती है। वह इस बात की तनिक भी परवाह नहीं करता कि इन आविष्कारो का मुझे कुछ मूल्य मिले। पर दु ख है कि

सायमनन्यूकम्ब का नाम सब से ऊपर रखा गया, हालांकि न्यूकम्ब ने ज्योतिषशास्त्र का ऐसा कोई आविष्कार नहीं किया था कि जिससे समाचार पत्र उसकी तारीफ करें। पर उसने जो काम किया था, वह किसी नये तारे ग्रह तथा धूम्र केतु का पता चलाने के कार्य से कहीं अधिक महत्व पूर्ण और कठिन था। न्यूकम्ब ने सूर्य, चन्द्र,गृहों और कुछ नियमित तारों की स्थिति का बड़ी सूक्ष्मता से पता लगाया। इसी महान् और अपूर्व कार्य के कारण महामति न्यूकोम्ब का आसन सब से ऊंचा रखा गया।

जो लोग विज्ञान देव के सच्चे भक्त हैं, उनकी यह भक्ति भी वैसेही निःस्वार्थ रहती है जैसे सच्चे ईश्वर भक्ति की भक्ति। विज्ञान जगत में अपने अपूर्व आविष्कारों से नया प्रकाश डालनेवाले महानुभाव के हृदय में धन तथा कीर्ति की लालसा बिलकुल नहीं रहती। उसकी सदा यही आकांक्षा रहती है कि मानव जाति के विकास के लिये—उसकी ज्ञान वृद्धि के लिये—मैं कुछ कार्य्य करू। कहा जाता है कि एक समय सुप्रसिद्ध प्रकृतिविज्ञानी लुइ आगेसिस ने किसी से सवाल करने पर यह जवाब दिया कि "मुझे पैसा जमा करने के लिये समय ही नहीं है"। तीसरे नेपोलियन ने आश्चर्य प्रकट करते हुए महामति पाश्चर से कहा था कि आप अपने आविष्कारों का उपयोग पैसा पैदा करने की ओर क्यों नहीं करते ? इसके जवाब में पाश्चर ने कहा था कि "वैज्ञानिक लोग पैसा करने से अपने आप को नीचे गिरा लेते हैं"।

एक समय महामति फेरेडे ने टिन्डल से बातचीत करते हुए कहा था कि अपने जीवन में मैं एक समय अपने आपको ८ प्रश्न करने में बाध्य हुआ था कि मैं अपने जीवन का

लक्ष्य धन बनाऊ या विज्ञान। इन दो को एक साथ तो मैं सेवा नहीं कर सकता। अन्त में मैंने "विज्ञान" ही को अपने जीवन का उद्देश बनाना पसन्द किया। इस विज्ञानविद् ने जब "magneto-electricity" का आविष्कार किया तब से इसकी कीर्तिध्वजा बड़े ज़ोरो से चहु ओर फहराने लगी। यह आविष्कार ससार के लिये इतना उपयोगी और काम का था कि जिसका व्यापारिक ससार कुछ मूल्य ही नहीं दे सकता। हिन्डरल का कथन है कि यदि फेरेडे चाहता तो इस आविष्कार की बदौलत वह मज़े से उसके अन्तिम जीवन के तीस वर्ष तक प्रति साल १०,००० पोएड अर्थात कोई डेढ लाख रुपये कमा सकता पर उसने इस तरह से कुछ भी नहीं कमाया। वह गरीबी ही की हालत म मरा। पर इसका परिणाम क्या हुआ ? चालीस वर्ष तक वैज्ञानिक ससार में इग्लेन्ड को सर्वोपरि आसन पर इसने बिठला दिया।

फेरेडे ही क्यो ? ससार में जितने भी बडे बडे वैज्ञानिक और आविष्कारक हुए हैं, उनमें प्राय आपको ऐसे महानुभाव ही मिलेंगे जिन्होंने अपने स्वार्थ की कुछ परवाह न कर अपने आविष्कारों को मानवजाति के लिये छोड दिया। हमारे पाठको ने कोयले की खानो का हाल अवश्य ही सुना होगा। ये बहुत ठडी रहती हैं। इन के भीतर इतना अन्धकार रहता है कि मनुष्य के लिये बिना दीपक के उनमें जाना महा दु साध्य काम है। इन खानो में कोयले से पैदा होनेवाली एक प्रकार की मार्श गैस निकला करती है, जहा इसका दीपक तथा किसी जलते हुए पदार्थ के साथ सस्पर्श हुआ कि यह भभक उठती है और इससे सारी खान मे आग लग जाती है। इससे मामूली दीपक तथा लेम्प का उनमें कुछ भी उपयोग नहीं हो

किया कि यह अपने इस आविष्कृत दुर्बीन को उक्त समिति के पास भेज दे। तब न्यूटन ने अपने आविष्कृत दूर्बीन को उक्त समिति को भेज दिया। यहां यह अभी तक ज्यों का त्यों रखा हुआ है। इसके सिवा महामनि न्यूटन ने बड़े सूक्ष्म पर्य्यवेक्षण से यह बात देखी कि सूर्यकिरण का रंग सात रंगों के मिश्रण से बना है। उन्होंने सूर्यकिरण को काच के Prism (गोलक) में ले उसका विश्लेषण किया। इससे यह मालूम हुआ कि सूर्यकिरण का सफेद रंग सात भिन्न भिन्न रंगों के मिश्रण से बना है। यह आविष्कार न्यूटन ने दूर्बीन के आविष्कार के पहले ही कर लिया था, पर सन् १६७२ तक किसी को मालूम नहीं हुआ। न्यूटन ने मध्याकर्षण के नियम का आविष्कार कर बहुत दिन तक उसे प्रगट नहीं किया था। बहुत वर्ष के पीछे हेले को यह बात मालूम हुई और उसने न्यूटन के इस अपूर्व आविष्कार का सन्देशा संसार को सुनाया।

अब प्रश्न यह उठता है कि वैज्ञानिक न तो पैसे की पर्वाह करते हैं और न कीर्ति ही की, न वे लोगों की वाह वाह ही को पसन्द करते हैं। ज्ञान से प्रेम करने की लालसा और नये नये आविष्कार निकाल कर आत्म-सन्तोष प्राप्त करना, यही उनके जीवन का प्रधान उद्देश रहता है। इसके लिये वैज्ञानिक धीरता पूर्वक तरह तरह की भीषण बाधाओं और आपदाओं को सहन करते हैं। अपनी जान को हथेली पर रख निडर होकर विज्ञान क्षेत्र में आगे पैर बढाते जाते हैं। सन् १८६५ में पेरिस नगर में ज़ोर से हैजा चल रहा था। पाश्चर इस व्याधि के रहस्य का पता लगाने के लिये एक अस्पताल में रहा था, जहां कि केवल हैजे ही के

बीमारों का इलाज किया जाता था। वहा रहना उसके लिये बडा खतरनाक था। क्योंकि हैजे की बीमारी उडन बीमारी है। इस समय उसके मित्र ने कहा था कि "प्रिय पाश्चर' इस बीमारी की जाच करना बडा खतरनाक काम है। इस पर पाश्चर ने जवाब दिया मित्र! क्या तुम नहीं जानते कि विज्ञान के भक्त युद्ध पर गये हुए वीर सिपाही की तरह डर की कुछ पर्वाह नहीं करते।

सुप्रख्यात् महामति हक्सले भी बडा विज्ञान वीर था उस समय एक मासिक पत्र में इसने अपने भावी मनोभाव यो प्रकट किये थे।

'तमाम वेवकूफियो का—असार बातो का—चाहे वे कितनी ही जबर्दस्त क्यो न हो, नाश कर देना, विज्ञान की उदारता मे रग देना, छोटे छोटे क्षुद्र व्यक्तिगत मतभेदों से अलग रहना, सिवा झूठ के सब बातो को सहन करने की शक्ति प्राप्त करना, अपने काम की दुनिया तारीफ करे इस विचार से उदासीन रहना, यही मेरे जीवन के उद्देश है।

कई लोगो का ऐसा मत होता है कि विज्ञानदेव की भक्ति से मनुष्य की आध्यात्मिक स्थिति बडी कमजोर हो जाती है। यह समझ बडी ही वेबुनियाद है। कई वैज्ञानिकों की जीवनी पर से इसकी असत्यता प्रकट होती है। जो जीवन प्रकृति देवी के अध्ययन में लगाया जाता है, उसके आदर्श और उद्देश इतने ऊँचे और श्रेष्ठ रहते है जितने कि किसी बडे से बडे आध्यात्मिक पुरुष के। कोई भी महान् कार्य चाहे वह विज्ञान जगत का हो, चाहे आध्यात्मिक जगत का, बिना ऊँची और दिव्य महत्वाकाक्षाओ के परिपूर्ण हो ही नहीं सकता। वे सब लोग जो ज्ञान का दिव्य प्रकाश फैलाने के लिये—सत्य की

प्रतिष्ठा कर उसकी विजय दुंदुभी बजाने के लिये—परिश्रम करते हैं, एक अत्यन्त उच्च उद्देश के लिये काम कर रहे हैं। यह बात दूसरी है कि ये भिन्न भिन्न मार्गों से प्रयाण करते हैं, पर उनका लक्ष्य स्थल एक ही होता है। वे अपने अपने मार्ग से जाते हैं और एक ही लक्ष्यस्थल अर्थात सत्य पर पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। वे दृढता के साथ अपने रास्ते पर चले जाते हैं और इस बात की परवाह नहीं करते कि दूसरे किस मार्ग मे जारहे हैं। वैज्ञानिक जब किसी छुपे हुए रहस्य का पता लगाने में यत्नवान् होता है तब वह सिवा उस के सब रहस्य को भूल जाता है। कोई अच्छा योगी जिस प्रकार अपने मन की वृत्तियों को चहु ओर से हटाकर आत्मा की खोज मे उन्हें लगा देता है, वैसे ही विज्ञान-रत सज्जन अपनी वृत्तियो को चहु ओर से हटा कर प्रकृति के उस रहस्य की ओर लगा देता है, जिसका कि वह पता चलाना चाहता है। उस समय वह सब बाहरी इधर उधर की बातो को तथा मत मतान्तरों को भूल जाता है। पाश्चर ने एक समय कहा था कि जब मैं अपनी प्रयोगशाला में रहता हू, तब मै भौतिकवाद तथा आध्यात्मिक वाद के झगडों की ओर से अपने मनोमन्दिर के दरवाजे बन्द कर लेता हू। वहां केवल मै सत्य का अन्वेषण करता हू। मै केवल उन वैज्ञानिक स्थितियो को देखता हू, जिनके कारण जीवन का आविष्करण होता है।

सत्य तत्व चाहे वे प्रचलित विश्वास तथा सिद्धान्त के नितान्त विरुद्ध क्यो न हों वैज्ञानिक परीक्षाओं की कसौटी पर निकलने के बाद जैसे के तैसे रहें अर्थात् उनमें कुछ भी फेर बदल न हो तो उन्हें ग्रहण करना चाहिये और मिथ्या विश्वासों तथा सिद्धान्तो को त्याग देना चाहिये। नैसर्गिक ज्ञान के

संसार में किसी बात को सिद्ध करने के लिये यह प्रमाण नहीं माने जाते कि अमुक अमुक महात्मा ने तथा बड़े विज्ञानी ने यह बात कही है, अतएव प्रमाणभूत है। बिना किसी प्रकार की जांच किये, इसे मान लेना चाहिये। इसमें तो परीक्षाओं पर परीक्षा करने पर जब उसकी सत्यता सिद्ध होती है, तब ही वह मानी जाती है। वैज्ञानिक कार्य बिना किसी लाग लपेट के खुले तौर से चलाया जाना चाहिये। इसमें यह देखने की आवश्यकता नहीं कि अमुक अमुक बात के विषय पर हमारे पूर्वाचार्यों का क्या मत है। इसमें तो हर बात को कसौटी पर चढ़ाकर उसकी बारीकी से परीक्षा करनी होती है और बाद में सच झूठ का निर्णय किया जाता है। महाशय फैरेडे ने इस प्रकार की जांच कर किसी पदार्थ का निर्णय करनेवाले वैज्ञानिक के लक्षण इस प्रकार कहे हैं।

"वैज्ञानिक को हरएक की बात जरूर सुनना चाहिये पर बिना जांच पड़ताल किये कोई बात मानना न चाहिये। उसको बाहरी तड़क भड़क पर मोहित न हो जाना चाहिये, पर उस पदार्थ के आन्तरिक स्वरूप का भी पता लगाना चाहिये। वैज्ञानिक को किसी खासमत (School) का अनुयायी न होना चाहिये। सिद्धान्तों के निश्चित करने में उसको गुरु की आवश्यकता न समझ अपनी स्वत की जांच और निरीक्षण से अपने सिद्धान्त निश्चित करना चाहिये। सत्य उसके जीवन का खास तत्व होना चाहिये। यदि इन उद्देशों को सामने रख वह कार्य करेगा तो प्रकृति माता के मन्दिर में प्रविष्ट होने की वह आशा रख सकता है।

वैज्ञानिक सत्य प्रार्थना करने से तथा उपवासादि करने से नहीं जाना जा सकता। इसके लिये शान्तिपूर्वक परीक्षण

और लगातार जांच की आवश्यकता है। प्रकृतिदेवी से अणु अणु करके ज्ञान प्राप्त करना होता है और इस तरह से अणु अणु करके प्राप्त किये ज्ञान से किसी सिद्धान्त या तत्त्व का आविष्करण किया जाता है। इसमे वे बाते छोड दी जाती हैं, जो परीक्षा की कसौटी पर ठीक नही निकलती हैं। ग्रहण केवल वे ही की जाती है जो परीक्षा की कसौटी पर सोलह आने ठीक ठीक उतर जाती है। फेरेडे ने एक समय कहा था कि दुनिया इस बात को बहुत कम जानती है कि वैज्ञानिक अनुसन्धान कर्ताओ के मन मे गुजरे हुए कितने विचार और सिद्धान्त उन्ही की सूक्ष्म जाच और पडताल के द्वारा भीतर के भीतर कुचल दिये जाते है। मन में आई हुई सूचनाओं का, विचारों का आशाओं तथा प्रारम्भिक सिद्धान्तो का एक दसवा हिस्सा भी सूक्ष्म परीक्षण की कसौटी पर ठीक निकल गया तो समझना चाहिये कि उसे आशातीत सफलता प्राप्त हुई है।

वैज्ञानिक कार्य मे अन्त तक जुटे रहने के लिये विज्ञान की पवित्रता मे विश्वास रखना आवश्यक है। क्योकि बिना उस उत्साह के जो इस विश्वास से उत्पन्न होता है शोधकों का सफल मनोरथ होना कठिन है। वैज्ञानिक लोग अपने स्थल से मुह फेरना तो जानते ही नहीं क्योकि उनका यह विश्वास रहता है कि हमारा कार्य बडा पवित्र है। यदि इसमें हम कृतकार्य हो गये तो उसका फायदा फल हमें ही न मिलेगा, पर सारी मानव जाति को मिलेगा। वह इस बात की परवाह नहीं करता कि जो कार्य मे कर रहा हू उसका मुझे उचित पुरस्कार मिलेगा या नहीं उसका यह पक्का विश्वास रहता है कि मै एक ऐसे महान् कार्य के लिये काम कर रहा हू। जो

केवल बहुमूल्य ही नहीं, पर अमूल्य है और जो अत्यन्त पवित्र एव मानव जाति को लाभ पहुचाने वाली है। ससार प्रख्यात् महामति हक्सले ने एक जगह कहा है यदि मैं अपने मनोभावो को प्रगट करू तो वे सक्षेप यह है कि नैसर्गिक ज्ञान की वृद्धि को उत्तेजन देना, जीवन सम्बन्धी सब बातो को वैज्ञानिक तरीके पर लगाना। मेरा यह विश्वास है कि जब तक विचार और कार्य की एकता न होगी, तब तक मानव जाति का दु ख से उद्धार नहीं हो सकता।

जिस विषय से इस प्रकार की उदार अभिलाषाओं का विकास होता है, उस विषय को प्रत्येक सभ्य पुरुष के शिक्षण में मिलाना आवश्यक है। सचमुच विज्ञान शिक्षा के राज-महल में पटरानी है।

प्रकृति देवी के अध्ययन से आत्मा का विकास होता है और साथ साथ में इससे बाह्य लाभ भी होते है, इतना होते हुए भी दु ख की बात है कि बहुत कम लोगो का ध्यान इस ओर पहुचता है। अशिक्षित और गवार लोगो की बात जाने दीजिये, पर आप को ऐसे कई साहित्यसेवी सज्जन मिलेंगे, जिनका नाम साहित्य रूपी गगन मे चन्द्रमा की नाई चमक रहा है पर अगर आप उन्हें विज्ञान के साधारण तत्व पूछेंगे तो वे बता न सकेंगे। साहित्यसेवियो के लिखे हुए ग्रन्थों म आप को विज्ञान की चर्चा बहुत कम मिलेगी। ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनसे यह बात प्रगट होती है कि बड़े २ कौन्सिलर तथा राजनीतिज्ञ एव विद्वान् प्रकृति के स्थूल नियमो तक से अनभिज्ञ देखे गये है। इनमे कई लोग ऐसे देखे गये है कि जिन्हें विज्ञानशास्त्र में आनेवाले मामूली शब्दो तक का अर्थ मालूम नहीं। देखा गया है कि ऐसे लोग

अपने आस पास के जड़ जगत के लिये तो अन्धपरम्परा के विश्वासु और अन्धेरे को उजाला बनानेवाले होते हैं, विज्ञान के आश्चर्यमय विकास को देख कर इनके मन में न हर्ष होता है और न विषाद। ये इस ओर से बिलकुल उदासीन रहते हैं। ये लोग किसी पदार्थ की ऊपरी तड़क भड़क पर मोहित हो जाते हैं पर उसका आभ्यन्तरिक देखने का प्रयत्न नहीं करते। वे उस स्वर्ग में रहना पसन्द करते हैं, जो बाहर से सजा सजाया सुन्दर पर भीतर जिसके कुछ नहीं है। ऐसे मनुष्य एक दृष्टि के होते हैं। हम तो उस समय कुछ सुधार की आशा रक्खेंगे जब हम देखेंगे कि सुशिक्षित मनुष्य साहित्य के साथ साथ विज्ञान से भी परिचय रखता है।

जब हम इतिहास की ओर दृष्टि डालते हैं, तब हमें यह देख कर सचमुच बड़ा आश्चर्य होता है कि बड़े २ राजनीति-धुरन्धर तथा साहित्यसेवियों ने अपने समय के बड़े २ विज्ञान-विदों की निरी उपेक्षा की है। मि० ग्लेडस्टोन जैसे प्रख्यात् राजनीतिज्ञ और विद्वान् को उनके समय के बड़े विज्ञानविदों की जानकारी न थी। और भी उदाहरण लीजिये। तुलनात्मक शरीर शास्त्र तथा पृथ्वी के प्राचीन जीव जन्तु विषयक विज्ञानशास्त्र का जनक एवं अपने समय का सर्वोत्कृष्ट वैज्ञानिक क्यूविहियर के मृत्यु का समाचार जब फ्रान्स के बादशाह ल्यूइस फिलिप ने सुना था तब उसने पूछा था कि 'यह क्यूविहियर कौन है? कहिये कितने आश्चर्य की बात है? फ्रान्स देश ही के इस सर्वोत्कृष्ट प्रकृति विज्ञाता का नाम तक फ्रान्स देश का बादशाह न जानता था। इसी तरह का एक और उदाहरण है। फ्रान्स ही में नेपोलियन तीसरे के वक्त में क्लाउडे बर्नार्ड नाम का एक प्रख्यात् शरीर

शास्त्रवेत्ता हो गया। इससे परिचय करवाने के लिये एक जर्मन मेहमान ने बादशाह से प्रार्थना की थी। इसपर बादशाह नेपोलियन ने कहा था कि "क्लाउडे बर्नार्ड कौन है?" इसपर उस जर्मन ने जवाब दिया था कि वह श्रीमान् के साम्राज्य का एक अत्यन्त नामाङ्कित सेवक है। सचमुच वैज्ञानिक की कीर्तिध्वजा अपने देश के सिवा चहुं ओर फहराती है।

अब सौभाग्य से वह समय आ रहा है जब यह समझा जायगा कि उस मनुष्य ने उदार शिक्षा ही प्राप्त न की है, जिसे विज्ञान का कुछ ज्ञान नहीं है। डार्विन और फेरेडे के ग्रन्थ आज कल उतनी प्रतिष्ठा के साथ देखे जाते हैं, जितने महा कवि टेनिसन और स्काट के। वह साहित्य सम्बन्धी शिक्षा जो विज्ञान से शून्य है, बहुत ही अपूर्ण समझना चाहिये।

क्या आप सत्य के प्रति अनुराग उत्पन्न करने के लिये विद्या पढना चाहते हैं? तो इसके लिये शिक्षा सम्बन्धी विषयों में प्रकृति का अध्ययन भी मिलाइये, क्योंकि प्रकृति के अध्ययन से सत्य का प्रकाश होता है—असत्य का आपाआप नाश हो जाता है। क्या आप नैतिक उत्तरदायित्व के भाव पैदा करना चाहते हैं? तो प्रकृति से यह सीखिये कि हर एक कर्म का परिणाम होता है और हर पाप के बदले दण्ड भुगतना पड़ता है। क्या आप यह चाहते हैं कि हमारा मन इधर उधर की बातों से तथा ऊपरी तड़क भड़क से भुलाव में न पड़े तो आप वैज्ञानिक खोज की ओर अपने मन को झुकाइये क्योंकि ऐसा करने से आप की आन्तरिक और विवेचनात्मक (Critical faculty) बुद्धि का विकास होगा और आप किसी बात की असारता को निकाल कर सार ग्रहण करने में समर्थ हो सकेंगे। क्या आपका यह ख्याल है कि कोई भी काम करने

में हलकापन नहीं है और मानवजाति के लिये स्वार्थ त्याग करना कर्तव्य है तो विज्ञान की ओर झुकिये, क्योंकि विज्ञान मानव जाति की भलाई के लिये दिली परिश्रम चाहता है। सत्य से अनुराग, धैर्य, विवेचनात्मक भाव (Logical thought), उत्तरदायित्व पूर्ण शिक्षा, और नये विचार आदि महान् गुणों का विकास विज्ञान के अध्ययन से होता है। विज्ञान से जीवन के उदार विचारों को प्रकाश प्राप्त होता है। उपरोक्त गुण मानव आत्मा के विकास के लिये कितने आवश्यक हैं यह यहा वतलाने की आवश्यकता नहीं।

अहा ! जो बात जगत निर्माता परमकुशल परमात्मा के सिवा संसार मे और किसी को मालूम नहीं है, ऐसी नई बात का—प्रकृति के छुपे हुए रहस्य का—जब कोई वैज्ञानिक आविष्कार करता है, तब उसे कितना अपूर्व और अलौकिक आनन्द होता होगा ? हम तो समझते हैं कि उस दिव्य आनन्द के सामने ससार का समग्र ऐश्वर्य भी किसी बिसात मे नही है। किसी भूखे और भिखारी मनुष्य को करोडों रुपयो की सम्पत्ति एकाएक प्राप्त हो जाने पर जैसा अप्रतिहत सुख होता है, उससे कहीं अधिक वढकर सुख प्रकृति देवी के रहस्य का पता लगानेवाले वैज्ञानिक को होता है। सिवा प्रकृति के उपासक के हृदय में परोपकार बुद्धि, सृष्टि सौन्दर्य्य परीक्षण शक्ति आदि का अद्भुत रूप से विकास होता है। इसके सिवा जहा दूसरी शाखाओं के मनुष्य अपने अन्तिम जीवन में उनसे उदासीन हो जाते है, वहा प्रकृति प्रेमी पुरुषो का उत्साह दिन दूना और रात चौगुना वढता जाता है। वे कभी अपने कार्य से निवृत्त होने का प्रयत्न नहीं करते। जैसे २ नई २ बातों का, प्रकृति देवी के अपूर्व रहस्य का

उन्हें पता लगता जाता है वैसे २ उनको अधिकाधिक आनंद प्राप्त होता जाता है। उनकी आत्मा आजीवन तक नित्य नये भावों से पल्लवित होती रहती है। कहने का मतलब यह है कि जहां दूसरे कारोबार करनेवाला मनुष्य अपनी ढलती हुई अवस्था में उस कारोबार से उकता जाता है वहां विज्ञान-विद् के हृदय में प्रकृति प्रेम और नया ज्ञान प्राप्त करने की लालसा सदा बनी रहती है। एक समय डाक्टर वेर मिश्चेल से किसी ने पूछा था कि क्यों डाक्टर महाशय? हमेशा प्रसन्न रहनेवाले आपके मित्र प्रकृति प्रेमी मि० जोसेफ लीडी क्या जीवन से कभी नहीं उकताएंगे। इस पर उक्त डाक्टर ने जवाब दिया कि "उकताना! जब तक ऐसा एक भी कीडा रहेगा जिसका पता नहीं चला है, ऐसा एक भी पौधा रहेगा जिसकी जानकारी प्राप्त नहीं हुई है, तब तक उनका मन उकता नहीं सकता। प्रकृति देवी से प्रेम करनेवाले मनुष्य की ठीक वही दशा है जो उस मनुष्य की होती है जो उस सुन्दरी से प्रेम करता है जिनका सौन्दर्य कभी मुर्झाता नहीं। प्रकृति के अध्ययन से जैसा पूर्ण सन्तोष प्राप्त होता है, जैसा स्थायी उत्साह उद्भूत होता है वैज्ञानिको के जीवन इसके लिये प्रमाण स्वरूप है। सचमुच नई २ बातो का—नये नये रहस्यो का—पता चलने से मनुष्य के अन्त करण में नवजीवन, नवोत्साह का सञ्चार होता है"। रावर्ट वायले नाम के विख्यात् वैज्ञानिक ने एक वक्त कहा था कि "मैं अपनी प्रयोगशाला में जब जाता हू, तब सब कुछ भूल जाता हू, केवल प्रयोग करने से जो अपूर्व आनंद प्राप्त होता है उसका लाभ प्राप्त करता हू" कहा जाता है कि एक वक्त किसी प्रकृतिविज्ञानी ने कहा था कि 'मै मृत्यु से केवल इसलिये डरता हू कि उसके बाद

नये २ आविष्कारों को निकालने के आनन्द से मैं विहीन हो जाऊगा", डूमाज नाम के सुप्रख्यात् फ्रेन्च रसायनशास्त्र-वेता ने एक वक्त कहा था।

'मुझे अपने दीर्घ जीवन में भिन्न भिन्न प्रकार के कई लोगो से मिलने का काम पडा। मैंने अपने अनुभव से देखा है कि इस पृथ्वी पर सुख न तो अधिकारसम्पन्न शक्तिशाली मनुष्य को प्राप्त है, न सम्पत्तिशाली मनुष्य ही को। सच्चा और दिव्य सुख का अनुभव तो वैज्ञानिक ही करता है, जो प्रकृति के पडदे मे घुस कर नये नये सत्य ढूढ निकालता है"।

सुप्रख्यात् वैज्ञानिक डाक्टर आलफ्रेड रसल को उन की ८९ वीं वर्ष गाठ पर, क्लोरोडो विश्वविद्यालय के वनस्पति-शास्त्र के विभाग ने अभिनन्दनपत्र भेजा था। इसके उत्तर में उक्त प्रकृति पूजक ने क्या ही अच्छा जवाब दिया था।

"प्रकृति चमत्कार मेरे जीवन के लिये आनद और शान्ति के साधन रहे हैं। मैं हृदय पूर्वक यह इच्छा रखता हू कि आप लोग भी प्रकृति देवी का ध्यान पूर्वक निरीक्षण कर उसके रहस्य और सौन्दर्य से प्राप्त होनेवाले आनद का लाभ प्राप्त करें'।

डार्विन साहब विकासवाद के जनक थे। उन्होंने वालेस के साथ मिल कर यह सिद्धान्त निकाला था कि प्राकृतिक चुनाव (natural selection) ही जीवन विकास का मुख्य कारण है। इसके लिये ससार में इनका नाम एक तरह से अमर हो गया ह। इतना होते हुए भी अपने जीवन के अन्त तक यह प्रकृति के पूरे भक्त रहे। उन्होंने इस बात पर बडा खेद प्रकट किया कि मै प्रकृतिक ज्ञान में और मानव सुख में कुछ वृद्धि न कर सका। मुझे इस बातका पस्तावा नहीं है कि

मैंने कोई महान् पाप किया है, पर मुझे इस बात का बड़ा खेद है कि मैं प्रत्यक्ष में अपने भाइयों को अधिक लाभ न पहुंचा सका।

वैज्ञानिक अपने कार्य से कभी सन्तुष्ट नहीं होता। वह हमेशा यह कहता रहता है कि बहुत थोड़ा काम किया गया है। बहुत कुछ करने को अभी शेष है। अपने मृत्यु के थोड़े ही दिनों के पहले सर इसाक न्यूटन ने ये विचार प्रकाशित किये थे। पाठक जरा सोचिये कि न्यूटन अपने कार्य को कितना तुच्छ समझता था, जब कि संसार की दृष्टि में उसका कार्य एक महान और अपूर्व कार्य था। एक वक्त प्रशिया की रानी ने लेबनिज को पूछा था कि आप न्यूटन के विषय में अपना मत प्रकाश कीजिये। तब लेबनिज ने जवाब दिया था कि 'महारानी साहबा! न्यूटन के पहले संसार में जितने गणितशास्त्रवेत्ता हो गये हैं, उन सब ने मिल कर जितना काम किया है, उस कार्य के आधे हिस्से से भी न्यूटन ने अधिक कार्य किया है।"

सर विलियम हर्शेल ने यूरेनस का पता लगाया था। इसके लिये सारे विज्ञान संसार में उसके कीर्ति की तूती बज रही थी। इस समय सम्राट् जार्ज तृतीय ने इसे अपने दूर्बीन सहित कोर्ट में बुलाया था। इन सब बातों का अपनी बहन को हाल लिखते हुए इसने लिखा था "आज कल जिधर देखिये उधर मेरे ही मेरे आविष्कारों की बात हो रही है। हाय! इससे क्या प्रगट होता है। केवल यही न कि ये लोग कितने पिछड़े हुए हैं कि मेरे द्वारा किये गये क्षुद्र कामों को भी ये महान कार्य कह रहे हैं।"

सच है जितना आदमी कम जानता है उतना ही वह अपनी बौद्धिक योग्यता से—अपने कार्य से—अधिक सतुष्ट हो जाता है। जितना बडा आदमी होगा, उतना ही वह अपनी अपूर्णताओ को—अपनी कमजोरियों को—अधिक जान सकेगा। सन १८९६ में लार्ड केलव्हिन की ज्युबिली पर सारे ससार के देशो के अग्रगण्य वैज्ञानिक उनका सम्मान करने के लिये ग्लासगो के विश्वविद्यालय में जमा हुए थे। विज्ञान ससार में इस प्रतिभाशाली वैज्ञानिक का नाम अपने आविष्कारो के लिये कितने ऊचे आसन पर है, यह बतलाने की यहा कोई आवश्यकता नहीं, पर लार्ड केलव्हिन अपने आपको कितना तुच्छ समझता था यह उनके उन शब्दों से प्रतीत होता है, जो उन्होने एक अभिनन्दन पत्र के उत्तर में कहे थे। आपके कहने का सक्षिप्त भाव यह है—

"मैंने पच्चपन वर्ष तक लगातार विज्ञान की अभिवृद्धि के लिये सतत परिश्रम किया पर मुझे असफलता ही असफलता होती गई। विद्युत् और चुम्बक शक्ति का रहस्य मैं न जान पाया। आकाश (ether) विद्युत् (electricity) और भारयुक्त द्रव्य मे क्या सम्बन्ध है यह बात न जान सका।

कौन विज्ञान प्रेमी इस बात को नही जानता है कि लार्ड केलव्हिन ने अपने समय में विज्ञान की अभिवृद्धि के लिये जो काम किया वह किसी ने नहीं किया था। उन्होंने यह बतलाया था कि प्राकृतिक ज्ञान से मनुष्य अपने व्यवहार में किस प्रकार लाभ उठा सकता है? इतना होते हुए भी लार्ड केलव्हिन को अपने कार्य से सन्तोष नहीं था। वे इस बात से बडे असन्तुष्ट थे कि पचास वर्ष तक सतत परिश्रम करने पर भी यह न समझ सका कि आकाश (ether) क्या है और

विद्युत् और चुम्बक शक्तियो से उसका सम्बन्ध क्या है? यद्यपि उस समय वे समुद्रीयतार (ocean telegraphy) निकाल चुके थे। दिग्दर्शकयन्त्र (compass) में सुधार करने का श्रेय उन्हें प्राप्त हो चुका था। द्रव्य (matter) के गुण स्वभाव पर वे कई लेख लिख चुके थे। इसके लिये विज्ञान संसार में उनकी कीर्तिध्वजा बड़े जोरो से उड़ने लग गई थी। पर लार्ड केलविन को इनसे बिलकुल सन्तोष नहीं हुआ। उनका तो यह पक्का विश्वास था कि जब आकाश (ether) और द्रव्य (matter) का सम्बन्ध मालूम हो जायगा, तब ही मानव जाति प्रकृति के उस खजाने में प्रविष्ट हो सकेगी, जहा कि उसके रहस्यो का दिग्दर्शन हो सकता है।

सचमुच लार्ड केलविन जैसे महानुभाव हमेशा ही विद्यार्थी की दशा में रहते है। वे हमेशा सीखना चाहते है। क्योकि ऐसे महानुभाव यह बात भली भाति समझते है कि किसी सिद्धान्त का हल हो जाने से, किसी तत्व का आविष्कार हो जाने से यह नहीं समझना चाहिये कि ज्ञान की परमावधि हो चुकी। ऐसी अनंत चीजें है जिनके विषय मे हम कुछ नहीं जानते। इसी विचार के कारण लार्ड केलविन जैसे जिज्ञासु हमेशा विद्यार्थी ही का जीवन व्यतीत करते है। वे नई नई बातो की खोज में हमेशा लगे रहते है।

शरीर की दृष्टि से विचार करने से मनुष्य इस विशाल और विराट् विश्व का एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म अणु है। पर उसके भीतर मन कहलानेवाला एक ऐसा पदार्थ है जो उसे हमेशा ऊंचा उठाता रहता है। वह बड़े धैर्य के साथ स्वर्ग के शिखर पर पहुचना चाहता है। विशाल और विराट् विश्व का उसे जो कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह अत्यन्त मर्यादित और

सकीर्ण है, अतएव ऐसी कई बातें बच रहती हैं जो उसके गर्व का खर्व करती रहती है। फिर भी वह उन गूढ और अज्ञात बातों की अन्वेषणा करता रहता है, जिनका उसे पता न चला है। वही क्या उसके बच्चे नाती तक इनकी खोज में लगे रहेंगे॥

—— ० ——

अध्याय दूसरा

सत्य और प्रमाण

प्रकृति देवी में असत्य को स्थान नहीं है। विज्ञान के प्रकाश में, विश्व के नियमों में विरोध का नामोनिशान भी नहीं है

— किग्सले।

उन मनुष्यों से जिनमें सत्यान्वेषण के दैवी गुण नहीं है, वे चाहे जितने शक्तिशाली क्यो न हो, उनके हाथ से कोई भी बडा काम नहीं हो सकता।

—हक्सले।

यदि इस ससार में मनुष्य कोई सर्वोत्कृष्ट और दिव्य सुख प्राप्त कर सकते है, तो वह नये नये सत्यों को ढूढ निकालने ही से प्राप्त कर सकते है। इसके बाद में पुराने बेबुनियाद विश्वासों को तोडने मरोडने में भी बडा सुख है

—फ्रेडरिक।

ससार मे जितने मत मतान्तर तथा धर्म है, उन सब में सत्य की महिमा बहुत विस्तृत रूप से बखानी गई है। ससार में ऐसा कोई धर्म नहीं—कोई पथ नहीं—जिसमें सत्य की महिमा न गाई गई हो। हमारे हिन्दू शास्त्रों में भी महाराज मनु ने दस धर्मों में सत्य को रखा है। हम लोगो मे जो गुरु कहे जाते है, चाहे वे कितनाही असत्य आचरण क्यो न करें

पर अपने चेलो को सदा सत्य का उपदेश देंगे। सत्य सत्य की चहुओर से आवाज आने पर भी हमे सिवा विज्ञान के सत्य के बहुत कम दर्शन होते हैं। सब अपनी अपनी तूती बजाते है और अपने ही कहे हुए तथा माने हुए वचनो को सत्य के रूप मे ग्रहण करते है। बहुत कम लोग ऐसे हैं जो अपना मगज लड़ा कर सत्यासत्य का विचार करते होगे। यदि हम दुनिया मे सत्य का सब से अधिक प्रेम देखते हैं तो वह वैज्ञानिको ही में देखते हैं।

वैज्ञानिक सत्य के अन्वेषण मे अपने समय को खर्च करता है। सत्य की रक्षा के लिये वह सारी दुनिया का सामना करने को तैयार रहता है। वैज्ञानिक शुरू से अत तक सत्य ही के दर्शन करने के लिये तन मन धन से यत्न करता रहता है। वे अपनी प्रयोगशाला में तथा अन्वेषण के क्षेत्र मे सत्य ही को प्रकाशित करने के लिये प्रयोग करते रहते हैं व उनका विश्वास रहता है कि सूक्ष्म और विश्वसनीय निरीक्षण से ही सत्य फल प्रगट हो सकता है। सत्य का प्रेम ही उनके स्वभाव का एक हिस्सा बन जाता है। सत्य को पाने के लिये जो वे खोज करते है, उससे उनका जीवन पवित्र होता है। आप किसी ऐसे वैज्ञानिक का जीवनचरित्र उठा कर देखिये, जिसने प्रकृति के अध्ययन से वैज्ञानिक संसार में ऊंचा स्थान प्राप्त किया है, तथा कुछ विशेष काम किया है, तो आप को मालूम होगा कि सब बातो की अपेक्षा सत्य ही को वह अधिक मौलिक समझता होगा। लार्ड केलविन ने एक समय कहा था कि भौतिक और रासायनिक प्रयोगशालाओं के विषय में जो सब से पक्की बात मेरे मन मे है, वह यह है कि वहा सत्य अर्द्धसत्य और असत्य का साफ

विज्ञानान्वेषी मन ही को है। यही मन भविष्य में सब पर सत्ता चलायेगा। यही राजनैतिक और मानव जाति की बड़ी २ समस्याओं को हल करेगा। अजीब प्रकृति की निगूढ़ और कठिन समस्याओं को हल करने में यही सफल हो सकेगा। यह सत्य की वैसी ही कद्र करता है जैसी कि करना चाहिये। किसी बात की अन्वेषणा करते समय सब प्रकार के व्यक्तिगत मतमतान्तरों को यह भूल जाता है।

वैज्ञानिक शिक्षा का यही उद्देश है कि इस प्रकार के सत्यान्वेषी मन बनें। ऊंट का सुई के छेद में निकलना सहज है, पर बिना इस प्रकार के मन के विज्ञान राज्य में प्रवेश करना कठिन है। विज्ञान सचमुच में उन्नति का सन्देशा है। यह एक ऐसा प्रकाश है जो अन्वेषण रूपी बड़ी तपश्चर्या से सत्यान्वेषी मन के द्वारा प्राप्त होता है। हक्सले ने एक समय कहा था—"मेरी दृष्टि में सत्य ही सब से बड़ा गुण है। यह एक ऐसा महा गुण है कि जिसके बिना न तो विज्ञान ही का पाया मजबूत हो सकता है और न समाज ही का। विज्ञान का सर्वोपरि उद्देश सत्य पर पहुचना है"।

सत्य का प्रेम ही ज्ञान का आरम्भ है और यही ज्ञान का अन्त भी है। जब तक मानव जाति इस पृथ्वी पर अवस्थित रहेगी, तब तक सत्य की खोज होती ही रहेगी। यदि ठीक शब्दों में—ठीक अर्थ में—कहा जावे तो सत्य की खोज क्या है? वह ज्ञान ही की खोज है। वैज्ञानिक सत्य का कहीं अन्त नहीं। जैसे जैसे आप खोज करते जावेंगे वैसे वैसे आप को नये २ सत्य मिलते जावेंगे। इस से वैज्ञानिक कभी अपने आप को पूर्ण ज्ञानी नहीं समझता। कभी वह यह नहीं कहता कि विश्व की सब बातें मुझे मालूम हो गई हैं। कभी वह इस बात का

अभिमान नहीं धरता कि मैं विश्व का गुरु हू। मेरे ज्ञान के परे कोई बात ही नहीं है। वह सदा जिज्ञासु बना रहता है और सृष्टि के नये २ रहस्यों का पता चलाने में यत्नवान रहता है। यदि मनुष्य यह मानकर बैठा रहता कि मुझे सब कुछ मालूम हो गया है। मेरे लिये जानने को अब कुछ नहीं रहा तो हम समझते हैं कि आज मानव जाति की भी वही हालत होती जो समुद्र में रहनेवाले लेम्पशेल नामक जानवरों की है। जो जानवर कि आज भी वैसी ही दशा में हैं जैसे कि लाखों करोड़ों वर्ष के पहले थे। पर देखते हैं कि अनन्त वर्षों से मानव जाति क्रमश उन्नति कर रही है। दिन दिन अपने सुख और सुभीताओं के साधनों को बढा रही है। सृष्टि के निगूढ रहस्यों का पता लगा रही है। भूतकाल ही पर संतोष न मान वर्तमान काल और भविष्यकाल को उन्नति के प्रकाश से चमकाने की कोशिश कर रही है। यही उसके विकास के कारण हैं। अपने अनुभव तथा दूसरों के अनुभव से ज्ञान प्राप्त करने की लालसा ही ने मानव जाति को इतना ऊंचा चढा रक्खा है। जो मनुष्य हमेशा जिज्ञासु बने रहते हैं, वे ही इस संसार में कुछ ज्ञान का प्रकाश फैला सकते हैं॥

विज्ञानान्वेषी मस्तिष्क

जिन जिन खास गुणों से विज्ञानान्वेषी मस्तिष्क बनता है, वे गुण केवल वैज्ञानिकों केही पास नहीं होते हैं। ये गुण उन मनुष्यों में भी पाये जाते हैं, जिन्होंने दूसरे कामों में अपनी अद्भुत् मानसिक शक्तियों तथा प्रतिभा का परिचय दिया

है। जिन मनुष्यों में सुसगठित रीति से अपनी व्याव-हारिक बुद्धि (common sense) को परिष्कृत किया है, उनमें यह विज्ञानान्वेषी मस्तिष्क पाया जाता है, जो नई नई बातों की खोज करता रहता है और जिसके द्वारा सृष्टि के अनेक गूढतम रहस्य प्रकट होते है। विज्ञान्वेषी मस्तिष्क के लक्षण सर मिकाइल फास्टर ने यों वर्णन किये है "इस मनुष्य म सब से पहले यह बात होनी चाहिये जिसकी वह खोज करना चाहता है उससे तन्मय हो जावे। सत्य की अन्वेषण करनेवाले के लिये यह आवश्यक है कि वह खुद सच्चा हो और प्रकृती के सच्चाई से सच्चा रहे। जिसे हम मामूली बात चीत मे सत्य कहा करते है, प्रकृति का सत्य उससे बहुत ऊचा और ठीक २ है। जो मनुष्य वैज्ञानिक नही है, वह प्राय सत्य तथा अधिकांश सत्य से सतुष्ट हो जाता है। पर प्रकृति विज्ञानी को बिना पूर्ण सत्य के सतोष नही होता। इसके सिवाय इस मनुष्य में वह ग्राहक शक्ति होनी चाहिये कि जहा उसे सत्य दिखाई दिया कि उसने उसका ग्रहण किया ही। प्रकृति हमेशा हमारी ओर सकेत करती रहती है। वह हमेशा अपने रहस्य हमारे सामने खोलती रहती है। अतएव वैज्ञानिक को चाहिये कि वह प्रकृति की ओर हमेशा टकटकी बाँध कर सूक्ष्म दृष्टी से देखा करे, जिससे कि प्रकृति के जरा से सकेत का वह लाभ उठा सके। तीसरी बात यह है कि यद्यपि शुरू शुरू में वैज्ञानिक अन्वेषण मान सिक श्रम है पर उसके लिये धैर्य के नैतिक गुण की सब से बडी आवश्यकता है।"

सत्य के प्रेम से वह आदत उत्पन्न होती है, जिससे मनुष्य किसी पदार्थ को उसके बिलकुल विशुद्ध स्वरूप में देख

सकता है। जिस मनुष्य में यह आदत पड जाती है वह सत्य के सामने विश्वासो को कुछ कीमत नहीं समझता। वह खुद पदार्थ की परीक्षा करता हे और जो उसकी परीक्षा की कसोटी पर ठीक २ उतर जाता है, उसे ही वह सत्य मानकर ग्रहण करता हे। अमुक पदार्थ के वास्ते अमुक मनुष्य ने यह कहा है, अतएव वह ऐसा ही होना चाहिये, यह ख्याल वैज्ञानिक के पास फटकने भी नही पाता। खुद की परीक्षा ही को वह अधिक काम की समझता है। उसका विश्वास रहता है कि सत्य के दिव्य प्रकाश को सब एकसा देख सकते हैं। उसके लिये यह बात नहीं कि वह कुछ खास मनुष्यो ही को दीखे और दूसरो का नहीं। उस सत्य में जिसकी परीक्षा चाहे जब कोई कर सकता है, और उस सत्य में जिसे कुछ मनुष्यों ने बिना परीक्षा किये ही मान रखा है, बडा ही मार्के का अन्तर हे। विज्ञान का विद्यार्थी केवल सत्य ही से विश्वास रखना सीखता है। वह और वह सत्य ही की खोज में रहता है। हर पदार्थ में से—हर बात में से—सत्य को ढूढ निकालने ही को अपने जीवन का प्रधान उद्देश समझता है। वह अपने मन की स्थिति ही को कुछ ऐसी बना लेता है कि उसके सामने अमूलक विश्वासो के पडदे आप ही आप फट जाते हैं। सत्य ही की ताकत है कि उसकी नजरो के सामने टिक सके।

जो लोग परम्परागत अमूलक विश्वासो के बुरी तरह गुलाम हो रहे हैं—जो केवल पुराण कथाओं में आई हुई अतिशयोक्तिपूर्ण बातो ही को बिना सोचे समझे विशुद्ध सत्य के रूप में ग्रहण करने को तैयार रहते हैं, वे इस बात को समझ ही नहीं सकते कि सतत अन्वेषणाओं के द्वारा प्रकृति से निकाले हुए सत्य में और केवल पुराणोक्त सत्य में कितना मार्के का अन्तर है।

वैज्ञानिक जो कुछ अपने आखो से, देखेगा, जिसकी सत्यता की वह अच्छी तरह जांच कर लेगा उसी को सत्य कह कर वह प्रकाशित करेगा। वह उन बातों को मानने के लिये कभी तैयार न होगा, जो उसकी परीक्षा की कसौटी पर ठीक ठीक न उतरे, इसी लिये एक विद्वान् का कथन है कि वैज्ञानिक जज और गवाह दोनो का काम करता है। उसकी अन्वेषणाए उसके सामने जो प्रमाण उपस्थित करती है उन्ही को देख कर वह अपना निर्णय प्रकट करता है। विज्ञान देव की अदालत में बिना सच्चे प्रमाण के कोई बात नहीं मानी जाती। विज्ञान का तो यह खास कर्तव्य है कि जहा जहा से उसे सत्य मिलता जावे, वहा वहा से वह उसे ग्रहण करता जावे। तब ही कहीं जाकर उसे सफलता हो सकती है।

ससार-प्रख्यात् इतिहासवेत्ता ह्यूम ने अपने एक व्याख्यान में कहा था कि प्रकृति देवी का घूघट खोल उसके असली रूप को देखनाही वैज्ञानिक का काम है। इस घूघट को खुलवाने में मनुष्य को प्रकृति की बडी खुशामद बरामद करना पडती है। तरह तरह के यत्न करना पडते हैं तब जाकर प्रकृति कभी अपना घूघट खोलती है। अतएव प्रकृति देवी का असली मुख मडल देखने के लिये सतत निरीक्षण की बडी आवश्यकता है। सतत निरीक्षण ही से प्रकृति देवी के भव्य मुखमण्डल के कुछ दर्शन हो सकते है।

अगर आप प्रकृति देवी के दर्शन करना चाहते है, अगर आप विज्ञान के विद्यार्थी होना चाहते है तो प्रकृति के क्षेत्र में जाइये और वहा उसके दर्शनों के लिये हृदय पूर्वक यत्न कीजिये। अपनी सारी मनोवृत्तियो को—अपनी सारी दृष्टि को—उस बात की ओर लगा दीजिये जो आप प्रकृति से पूछना चाहते

है। प्रकृति देवी से आप तन्मय हो जाइये, जरूर आप को उस में कुछ न कुछ रहस्य मालूम होंगे जरूर आप को अपने कार्य में विजय लाभ होगा।

विज्ञान में नई विजय प्राप्त करना मानो नये ज्ञान को जन्म देना है। दुनिया को अपनी तरक्की के लिये उन विचारों की जरूरत है, जिन से नये नये सत्य प्रकट हों और वैज्ञानिक भी यही चाहता है। दुःख इस बात का है कि आज कल के जमाने में लोग अपने मगज से कोई नई बात पैदा करने का उतना यत्न नही करते, पर वे दूसरो के मतो पर अन्धो की तरह चलना चाहते हैं। इस प्रवृत्ति से मनुष्य की स्वतंत्र विचार शक्ति का—उस की अन्वेषण शक्ति का—तथा सत्यासत्य को परखने की बुद्धि का जो नाश हुआ है, उस का पारावार नहीं। दूसरो के मतो पर चलनेवाले न तो अपनी ही तरक्की कर सकते है और न दुनिया ही की। इतिहास इस बात की डके की चोट साक्षी दे रहा है। मानव जाति को उन्ही लोगो ने विकास के मार्ग पर लगाया है जिन्हो ने दुनिया के—मनुष्यो के अधिकांश समूह के—माने हुए मतो पर न चल अपनी स्वतन्त्र विचार-शक्ति का विकास किया था, जिन्हो ने सत्य की अपने आप परीक्षा की थी। एक महात्मा का कथन है कि अपनी सौन्दर्य परीक्षण शक्ति का विकास करो, सत्य शोधक बुद्धि को बढाओ और अपनी उत्पादक शक्ति का प्रकाश करो, जिस से दूसरी बातें आपोआप तुम्हें प्राप्त हो जावे। सत्य, सौन्दर्य, विद्वत्ता, निरीक्षण शक्ति, सत्यासत्य जानने की बुद्धि और उत्पादक शक्ति (Production) आदि गुण कम तथा ज्यादा परिणाम में सब मनुष्यों में रहते है। ये गुण जिस मनुष्य में अधिकता से पाये जाते हैं, वह ससार में उतनाही ज्यादा

चमकना है। तिस पर भी उत्पादक शक्ति की बात ही क्या ' यह जिस मनुष्य में जितनी ही ज्यादा विकास रूप में होगी और जो मनुष्य इस शक्ति का जितना ही ज्यादा उपयोग ससार की ज्ञान वृद्धि के लिये करेगा, उस का नाम इस भूमण्डल पर अमर हुए सिवाय न रहेगा। प्रोफेसर एच० एफ० आसबार्न महाशय ने क्या ही अच्छा कहा है—

" अत्यत प्राचीन काल से लगाकर यह दुनिया ठढी हो जायगी, तब तक वही मनुष्य उदार शिक्षा पाया हुआ समझा जायगा, जो सत्य और सौन्दर्य का प्रेमी है—जो अपनी विद्वत्ता का, अपनी बौद्धिक शक्ति का, अपनी प्रतिभा का उपयोग ससार में कोई नई और अभूतपूर्व बात प्रकट करने में करता है। अर्थात् जो ससार के ज्ञानरूपी खजाने में अपनी ओर से कुछ डालता है"।

उत्पादक शक्ति—नई नई बातें पैदा करने की शक्ति—किसी खास जाति की, किसी खास देश के निवासियों की मौरूसी जायदाद नहीं। जो मनुष्य विज्ञान के राज्य मे प्रकृति देवी के पास आंखें खोलकर शुद्ध अत करण से जायगा, वह उसका कुछ न कुछ अवश्यही निरीक्षण कर सकेगा। इसी लिये यह कहा जा सक्ता है कि वैज्ञानिकों की उपरोक्त शक्ति का विकाश पदार्थों का सूक्ष्म निरीक्षण कर उन का यथार्थ रूप जानने की कोशिश करने से होता है। जो मनुष्य यह कह कर सतोष मान लेता है कि "जैसा है वैसा ही चलने दो" उस की उत्पादकशक्ति का कभी विकास नहीं हो सकता। जो मनुष्य जानी हुई वस्तुओं का पता चलाने की हार्दिक अभिलाषा रखते हैं और उन के लिये तन, मन, धन से कोशिश करते हैं वे इस कोशिश से—इस हार्दिक प्रयत्न से—मानों

अपनी उत्पादक शक्ति का विकास करते है। चार्लस किग्जले ने कहा है—

"प्राकृतिक तथा नैसर्गिक विज्ञान एक ऐसी चीज है, जिसे मनुष्य मास्टरों को तनख्वाह देकर नहीं पढ सकता, यह तो शांति पूर्वक निरीक्षण से और धीरज युक्त सहज बुद्धि ही से सीखी जा सकती है। अगर इन गुणों में कोई गरीब आदमी किसी अमीर आदमी से कम है तो यह उस का खुद का दोष है, न कि उस की गरीबी का"।

सच है प्रकृति देवी का सच्चा रहस्य वही जान सकते है, जो हमेशा उस के साथ रहते है—जो निरंतर उस से संबंध रखते है। प्रत्येक विज्ञान-भक्त विद्यार्थी को जानना चाहिये कि उसे अपने आप प्रकृतिरूपी ग्रंथ को पढना होगा। जब वह इस अनुपम ग्रंथ को पढ चुकेगा तब उस के सामने ऐसे ऐसे आश्चर्य प्रगट होंगे कि जिसकी वह कल्पना तक नहीं कर सकता।

विज्ञान के अध्ययन से मानवी जीवन कितना सुखी और रम्य हो जाता है, इस बात की कल्पना वे लोग कैसे कर सकते है जिन्होंने कभी विज्ञान का अध्ययन नहीं किया। सचमुच वे लोग बड़ी गलती पर है, जो यह कहते हैं कि विज्ञान का अभ्यास नीरस है। विज्ञान के अध्ययन मे तो इतना अपूर्व आनंद है कि उसे हम करीब करीब आत्मानंद के बराबर कह सकते है। वैज्ञानिक को अपवित्रता में पवित्रता दिखती है। सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ के खूबी को देखने की वह हमेशा चेष्टा किया करता है और इसमे उसे जो आनंद आता है उसका अनुमान करना साधारण मस्तिष्क के लिये असंभव है।

अध्याय तीसरा

ज्ञान की खोज

ज्ञान धीरे २ बढता है। वह ऐसी चीज नही जो एक दम प्राप्त हो जावे

—मेकाले

सब पदार्थों का निरीक्षण करो, पर ग्रहण उन्ही को करो जो अच्छे हैं

—सेन्ट पाल

जब आप किसी पदार्थ को निगूढ़ तथा रहस्य-मय कहते हैं, तब समझना चाहिये कि आप उस पदार्थ के विषय मे कुछ नही जानते

—लार्ड क्लविहन

एक विद्यार्थी सुप्रख्यात महामति आगाभिक्ष के पास प्राणिशास्त्र का अभ्यास करने आया। आगाभिक्ष उसे अपनी प्रयोगशाला मे ले गया और एक मछली उठा कर उसके हाथ में दी और कहा कि इस मछली के शरीर की रचना का सूक्ष्मता से निरीक्षण करो। जब तुम इसका निरीक्षण कर चुकोगे, तब मै तुम से पूछूंगा कि तुमने इसकी शरीर रचना के विषय में क्या जाना? उस विद्यार्थी ने उस मछली को अपने हाथ में ले लिया और उसके शरीर को इधर उधर फिरा कर देखा। दस ही मिनट बाद वह अपने मन ही मन कहने लगा कि मेगनिफाइंग ग्लास के बिना इस प्राणी के शरीर की रचना जितनी देखी जा सकती थी, मैंने सब कुछ देख ली। कुछ घण्टो के बाद आगाभिक्ष वापस लौट कर

आया और उस विद्यार्थी से पूछा कि कहो तुमने उसके शरीर में क्या देखा ? इस पर उक्त विद्यार्थी ने उन्हीं बातों को वापस दोहराया जो वह अपने मन ही मन कह चुका था। इस पर आगासिज़ ने कहा कि मालूम होता है कि अभी तक तुम उसके शरीर रचना के बड़े बड़े और साफ साफ दीखनेवाले लक्षण भी न देख सके हो। अच्छा फिर जरा फिक्र से देखो।

तीन दिन तक वह विद्यार्थी उस मछली के शरीर रचना को बड़े गौर से देखता रहा, तब जाकर कहीं वह उस मछली के शरीर रचना की प्रधान प्रधान बातों का आगासिज़ के संतोष के योग्य कुछ उत्तर दे सका। चौथे दिन उसी दल की एक और मछली आगासिज़ ने उस विद्यार्थी के हाथ में दी और कहा कि इन दो मछलियों के शरीर रचना में कितना साम्य है और कितना विभेद है, इसका सूक्ष्म निरीक्षण कर पता चलाओ। इस तरह वह विद्यार्थी पता चलाता गया और आगासिज़ अलग अलग दलों (group) की मछलियों के शरीर रचना के साम्य और विभेद की बातें उससे पूछता रहा। इसी तरह एक जाति के मछलियों की शरीर रचना का उस विद्यार्थी ने सूक्ष्मता से निरीक्षण कर कई बारीक बारीक बातें जान लीं। बस वैज्ञानिक खोज इसी तरह की पद्धति का नाम है, जो वैज्ञानिक करते रहते हैं।

विज्ञान का विद्यार्थी तब ही वैज्ञानिक कार्य में सफलता लाभ कर सकता है, जब कि उसकी विज्ञान की ओर स्वाभाविक रुचि हो। वस्तुओं के सूक्ष्म परीक्षण करने की तथा वस्तुओं के सापेक्ष गुणों को सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करने की उसमें बुद्धि हो। कानफ्यूसियस नामक चीनी दर्शनशास्त्रवेत्ता

उपाय हैं। मलेरिया और पीलिया ज्वर के प्रचलन को हम उस जगह की निरन्तर सफाई करने से रोक सकते है, जहां कि मच्छरों की उत्पत्ति होती है। वैज्ञानिक उपायों के उपयोग से युरोप से प्लेग का काला मुह हो गया। वैज्ञानिक उपायों ही की बदौलत हेवना, पनामा की सयोजक भूमि, वेस्ट इन्डीज आदि से मलेरिया और पीलिया ज्वर को अपना मुह लेकर भगना पडा। इन बीमारियों के कारण इन प्रदेशों में जाना उस जमाने में बडा खतरनाक समझा जाता था। इनसे लोग यमदूत की तरह डरा करते थे। आज यही प्रदेश योग्य वैज्ञानिक व्यवस्था के कारण मनुष्य प्रकृति के लिये आरोग्यशाली समझे जाते हैं। पनावा के समुद्र धुनि का नाम सुनते ही लोगो मे पहले सनसनी छा जाती थी। यह जगह रोग का केन्द्र समझी जाती थी, पर आज उसकी क्या हालत है? सफाई, आरोग्य आदि सब बातों पर नजर रख कर जिस ढङ्ग से उसका नया निर्माण हुआ है, उसे देख कर स्वर्ग का ख्याल होता है। मालूम होने लगता है, मानो यह स्थान देवताओं के लिये तैयार किया गया है। अब यह स्थान रोगों का घर कहलाने के बजाय आरोग्य भूमि कहे जाय तो कुछ भी हर्ज न होगा।

बीमारों को निरन्तर देखते रहने से तथा औषध की व्यवस्था करते रहने से रोगो की व्यवहारिक जानकारी प्राप्त हो सकती है, पर इस प्रकार की जानकारी तथा अनुभव से रोगो की प्रकृति तथा मूल कारण के निकालने में विशेष सहायता नहीं मिलती। हम जानते हैं कि शताब्दियो से वैद्यगण रोगियो को तसल्ली और आराम दे रहे हैं, पर रोगो का मूल कारण निकाल कर रोगो की जड ही को

उडाकर मनुष्य जाति को रोगो के फदे से छुडाने का इन से बहुत कम काम बना है।

व्याधियो का मुकाबला करने के लिये–उनको जड से नाश करने का उपाय निकालने के लिये–हमें लोक प्रिय डाक्टर की सहायता की अपेक्षा न करना चाहिये, पर इसके लिये हमें रसायनिक प्रयोगशालाओं की सहायता लेना चाहिये, जहां जीवाणुओं की छानबीन होकर व्याधियों के मूल कारणों को ढूढ निकालने की चेष्टा की जाती है। साधारण डाक्टर क्या करता है ? वह केवल इन्जिनियर की तरह उन उपायो को काम में लाता है जिनका वैज्ञानिक आविष्कर्ता पता लगाता है, पर वह स्वत किसी व्याधि का मूल कारण ढूढ निकालने की बहुत कम कोशिश करता है। हम कह सकते हे कि ऐसा मनुष्य चाहे वह रोग निदान में कितना ही निपुण क्यों न हो, चाहे वह रोग चिकित्सा में कितना यशशाली क्यों न हो गया हो, पर ससार उसे सम्मान की दृष्टि से नहीं देख सकता, जितना उसको देखता है, जो व्याधियो के मूल कारणों के आविष्कार द्वारा मानवजाति के दु खो को दूर करने का स्तुत्य प्रयत्न करता है।

देखते हैं कि हरसाल बहुत सा वक्त, परिश्रम और धन केवल व्याधियो के परिणामों के निरीक्षण ही व्यय किया जाता है और इन परिणामों को मिटाने ही की कोशिश में बहुत सी बुद्धि, परिश्रम और धन व्यय किया जाता हे, पर दु ख के साथ कहना पडता हे कि व्याधियो के मूल एव प्रारम्भिक कारणों को मिटाने की बहुत कम कोशिश की जाती है। व्याधियो को जड से मिटाने के जो थोडे बहुत प्रयत्न हुए हे, उनमें अच्छी सफलता प्राप्त हुई है और उनके देखने से

उपाय हैं। मलेरिया और पीलिया ज्वर के प्रचलन को हम उस जगह की निरन्तर सफाई करने से रोक सकते हैं, जहां कि मच्छरों की उत्पत्ति होती है। वैज्ञानिक उपायो के उपयोग से युरोप से प्लेग का काला मुह हो गया। वैज्ञानिक उपायों ही की बदौलत हेवना, पनामा की सयोजक भूमि, वेस्ट इन्डीज आदि से मलेरिया और पीलिया ज्वर को अपना मुह लेकर भगना पड़ा। इन बीमारियों के कारण इन प्रदेशो में जाना उस जमाने में बडा खतरनाक समझा जाता था। इनसे लोग यमदूत की तरह डरा करते थे। आज यही प्रदेश योग्य वैज्ञानिक व्यवस्था के कारण मनुष्य प्रकृति के लिये आरोग्यशाली समझे जाते है। पनावा के समुद्र धुनि का नाम सुनते ही लोगो मे पहले सनसनी छा जाती थी। यह जगह रोग का केन्द्र समझी जाती थी, पर आज उसकी क्या हालत है ? सफाई, आरोग्य आदि सब बातों पर नजर रख कर जिस ढङ्ग से उसका नया निर्माण हुआ है, उसे देख कर स्वर्ग का ख्याल होता है। मालूम होने लगता है, मानो यह स्थान देवताओं के लिये तैयार किया गया है। अब यह स्थान रोगो का घर कहलाने के बजाय आरोग्य भूमि कहे जाय तो कुछ भी हर्ज न होगा।

बीमारो को निरन्तर देखते रहने से तथा औषध की व्यवस्था करते रहने से रोगो की व्यवहारिक जानकारी प्राप्त हो सकती है, पर इस प्रकार की जानकारी तथा अनुभव से रोगों की प्रकृति तथा मूल कारण के निकालने मे विशेष सहायता नहीं मिलती। हम जानते हैं कि शताब्दियो से वैद्यगण रोगियों को तसल्ली और आराम दे रहे है, पर रोगो का मूल कारण निकाल कर रोगों की जड ही को

उडाकर मनुष्य जाति को रोगो के फदे से छुडाने का इन से बहुत कम काम बना है।

व्याधियो का मुकाबला करने के लिये–उनको जड से नाश करने का उपाय निकालने के लिये–हमें लोक प्रिय डाक्टर की सहायता की अपेक्षा न करना चाहिये, पर इसके लिये हमें रसायनिक प्रयोगशालाओं की सहायता लेना चाहिये, जहां जीवाणुओं की छानबीन होकर व्याधियो के मूल कारणों को ढूढ निकालने की चेष्टा की जाती है। साधारण डाक्टर क्या करता है? वह केवल इन्जिनियर की तरह उन उपायों को काम में लाता है जिनका वैज्ञानिक आविष्कर्ता पता लगाता है, पर वह स्वत. किसी व्याधि का मूल कारण ढूढ निकालने की बहुत कम कोशिश करता है। हम कह सकते है कि ऐसा मनुष्य चाहे वह रोग निदान में कितना ही निपुण क्यो न हो, चाहे वह रोग चिकित्सा में कितना यशशाली क्यों न हो गया हो, पर ससार उसे सम्मान की दृष्टि से नहीं देख सकता, जितना उसको देखता है, जो व्याधियो के मूल कारणों के आविष्कार द्वारा मानवजाति के दु खों को दूर करने का स्तुत्य प्रयत्न करता है।

देखते हैं कि हरसाल बहुत सा वक्त, परिश्रम और धन केवल व्याधियों के परिणामो के निरीक्षण ही व्यय किया जाता है और इन परिणामो को मिटाने ही की कोशिश में बहुत सी बुद्धि, परिश्रम और धन व्यय किया जाता है, पर दु ख के साथ कहना पडता है कि व्याधियो के मूल एव प्रारम्भिक कारणों को मिटाने की बहुत कम कोशिश की जाती है। व्याधियो को जड से मिटाने के जो थोडे बहुत प्रयत्न हुए हैं, उनमें अच्छी सफलता प्राप्त हुई है और उनके देखने से

मन में सहजतया ये भाव उत्पन्न होते हैं कि अगर इस तरह सब ही व्याधियों की केवल ऊपरी चिकित्सा ही में अपनी समग्र शक्ति खर्च न कर उनकी बुनियाद को मिटाने में भी समान शक्ति व्यय की जावे, तो आज नाना प्रकार की व्याधियों से मानवजाति जैसा दुःख पा रही है, उससे उसका बहुत कुछ छुटकारा हो सकता है और विविध प्रकार की व्याधियों के द्वारा आज जैसा जन आरोग्य एवं धन का नाश हो रहा है, उसमें बहुत कुछ फर्क पड सकता है।

प्राय सब डाक्टर लोग इस बात को भली भांति जानते हैं कि सिपाही को शत्रु की तोप की मार के बनिस्यत बीमारी के भय से ज्यादा विव्हल होना पडता है। दक्षिण अफ्रिका की लडाई में बृटिश फौज के जितने आदमी युद्ध के घावों से मरे, उससे कोई दुगुने मोतीझरा आदि उन बीमारियों से मरे, जो रोकी जा सकती हैं। स्पेन और अमेरिका की लडाई में अमेरिकन फोज के कोई बीस हजार (समग्र फौज का छठा हिस्सा) आदमी मोतीझरा की विषम व्याधि के कारण परलोक की यात्रा करने में बाध्य हुए। बेरि बेरि नामक व्याधि से अमेरिका की जल सेना की इतनी बरबादी हुई कि उसके आधे आदमी इसके कारण मर गये। पर पीछे जा कर जापान सरकार ने उदार सहायता दे कर इसके मूल कारणों का वैज्ञानिक खोज से पता लगाने के लिये कई प्रख्यात् विज्ञानवेताओं को नियुक्त किये। इसका पता लगाया गया उसके मूल कारणों को नाश करने के लिये वैज्ञानिक रीतियों का अवलम्बन किया गया। इसका फल यह हुआ कि जापानी जल सेना में इस रोग का प्राबल्य बिलकुल कम हो गया। रूस जापान युद्ध में जापान जल सेना की इस

बीमारी के कारण नाम मात्र की हानि हुई। वैज्ञानिक रीतियो के अवलम्बन करने ही का परिणाम है कि युरोप के इस वर्तमान भीषण युद्ध में पहले युद्धों की अपेक्षा बहुत कम जन हानि हो रही है। सफाई और रोग प्रतिबन्धक उपायो की ओर उचित ध्यान देने से हम आशा करते हैं कि अंग्रेजी की वह कहावत मिट जायगी जिसका आशय यह है कि "युद्ध नहीं पर बीमारी सिपाही के लिये कब्र खोदती है।" *केवल सफाई ही का उचित और योग्य प्रबन्ध कर बृटिश फौज की आरोग्य रक्षा का प्रबन्ध नहीं किया गया है किन्तु मोतीझरा का टीका लगा लगाकर फौजी लोगो को एक तरह मोतीझरे की बीमारी से मुक्त कर दिये हैं। इन टीकाओं का परिणाम बडा ही आश्चर्य कारक हुआ है। इस महायुद्ध में मोतीझरे से ब्रिटिश लोगो की बहुत कम मृत्यु हुई है। जो लोग दो वक्त मोतीझरा का टीका लगा लेते हैं, उन्हें जन्म भर मोतीझरा निकलने का डर नहीं रहता।

जो बातें मोतीझरा, हैजा, अपचन और मेलेरिया के लिये सच हैं वे ही माता की बीमारी, क्षय, पीलिया, Rabbies, प्लेग डिप्थेरिया आदि रोगो के लिये सच होना चाहिये। इन रोगो के कारण मनुष्य को बहुत ही गरीबी और तग हालत भुगतना पडती है।

पहले जमाने में माता की बीमारी का टालना असम्भव सा समझा जाता था। लोग उन नौकरों की वैसे ही तलाश करते थे जो माता की बीमारी से बच गये हैं, जैसे आज कल के पाश्चिमात्य लोग उस कुत्ते की तलाश करते हैं जिसका स्वभाव बिगडा हुआ नहीं है। माता की बीमारी से बच

*Disease, not battle, digs the soldier's grave

निकलना उस वक्त वडे सौभाग्य की वात समझी जाती थी। अठारहवी शताब्दी की जर्मनों की एक कहावत है "माता की वीमारी और प्रेम से शायद ही कोई मुक्त रहता होगा।" इग्लैन्ड के इतिहास में मेकाले ने इस बीमारी से रानी मेरी की मृत्यु का ज़िक्र करते हुए लिखा है।

"यह बीमारी कि जिस पर विज्ञान ने लगातार मार्के की और ओजस्विनी सफलताए प्राप्त की हैं, उस समय मृत्यु के सब दूतों में सब से भीषण दूती समझी जाती थी। इसमें सन्देह नहीं कि प्लेग का भय भी वडा गजब का था पर मानवीस्मृति मे प्लेग एक दो ही वार उपस्थित हुआ हैं, पर माता की वीमारी तो हमेशा ही वनी रहती है। इससे कब्र स्थान मुर्दो से भरा रहता था। लोगों को इसका भय जब तक सताता रहता है, जब तक वे इसके पजे से सुरक्षित हो कर न निकल जावें। इसने कई छोटे छोटे सुहावने और सुन्दर लड़को की सुन्दरता को नष्ट कर उन्हें कुरूप बना दिया। इसने कई सुन्दर युवतियों के गुलाबी गालों पर ऐसे भद्दे चिन्ह कर दिये, जिनसे इनके प्रेमी को इनसे घृणा होने लग गई।"

आज कल माता की वीमारी का भय, जो इतना कम हो गया है, इसका सारा श्रेय स्वर्गीय महामति डाक्टर जेनर को प्राप्त है। मनुष्य जाति की एक भयङ्कर व्याधि [illegible] कर महामति जेनर महाशय ने सारे संसार को [illegible] बना लिया है। एडवर्ड जेनर (१[illegible] १८२३) [illegible] है जिन्हो ने माता के टीका [illegible] को इस दुर्दमनीय और भयं[illegible] बात सच है कि जेनर के [illegible]

तरह का टीका लगवाया था, पर पहला मनुष्य वही है, जिसने सभ्य ससार को इस विषय में उत्साहित किया। इसी लिये वैद्यक ससार में उसका नाम बडे आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है। जेनर, पाश्चर और लिस्टर ये ऐसे महानुभाव हैं, जिन्हो ने मानवजाति को ऊचा उठाने का और उसे सुखी बनाने का श्रेय प्राप्त किया है।

जब जेनर बीस वर्ष की उमर पर भी नहीं पहुचा था तभी से उसका ध्यान माता की बीमारी से मनुष्य जाति की रक्षा करने की ओर पहुचा था। एक वक्त एक नवयुवती किसी कार्य के लिये उसके पास आई और माता की बीमारी की बात निकलने पर उसने कहा कि 'मुझे यह बीमारी नहीं हो सकती क्योंकि मेरे पास गाय की लस है। इसकी तरह ग्लाऊसेस्टर शायर की ओर भी कई ग्वालिनो ने यही बात प्रगट की थी कि गाय की लस माता की बीमारी को रोकने के लिये रामबाण औषध है, पर जेनर ने अपनी अन्त-र्दृष्टि और सतत परिश्रम से इन बातो को विज्ञान की कसौटी पर चढा कर इनकी सत्यता प्रकट की और ससार भर को यह शुभ सवाद सुनाया।

डाक्टर जेनर ने सोलह वर्ष तक अच्छी तरह जाच करने के बाद सन् १७९६ में पहले पहल एक लडके को टीका लगा कर उसके शरीर में गाय की लस प्रविष्ट की और कहा कि अब इस लडके को माता की बीमारी न होगी। डाक्टर जेनर की बात सच निकली। मानवजाति को एक विकट रोग से बचाने का उपाय निकल गया। जेनर का उत्साह इससे कई गुना अधिक बढ गया। उसने अपने ग्राम-बार्कली-के और उस गाव के आस पास के कई गरीब लोगो के बच्चों

को टीका लगाया और इसमें पूरी पूरी सफलता प्राप्त की। अब तो डाक्टर साहब के इस अद्भुत और मानवजाति की रक्षा करने वाले अनुपम आविष्कार के डके चहु ओर बजने लगे। उक्त डाक्टर महाशय ने खुद अपने लडके के तीन चार वक्त टीका लगाया, जिससे इस टीके के सम्बन्ध में कई लोगों की भ्रमात्मक कल्पनाएं अपने आप नष्ट हो गई।

अगर जेनर चाहता तो इस अनुपमेय आविष्कार की बदौलत लाखो करोडो रुपये पैदा कर लेता पर मानवजाति की रक्षा और भलाई के लिये अपने सर्वस्व को अर्पण करने-वाले कोई महात्मा अगर स्वार्थ पर दृष्टि डालते हो तो डाक्टर जेनर भी डालते। उन्हों ने यह आविष्कार अपने नीच स्वार्थ को पूरा करने के लिये नहीं, पर मानवजाति की रक्षा करने के लिये निकाला था और उसमें उन्हें अच्छी कृत कार्यता हो गई, बस उन्हें सब से बढ़कर यह पुरस्कार मिल गया।

पहले पहल जब कोई सज्जन कोई नयी और अपूर्व बात कहता है, तथा प्रचलित अन्धविश्वास के विरुद्ध कोई घोषणा करता है उस वक्त उसके विरुद्ध लोगों का एक बडा समुदाय आवाज उठाने लगता है, पर समय पाकर जब लोगों को उसकी सत्यता जचने लगती है, तो वे अपनी आवाज को मन्दी कर लेते हैं और अपनी भूल स्वीकार करने की ओर उनकी प्रवृति होने लगती है। यही बात डाक्टर जेनर के वक्त में भी हुई। जब जेनर ने अपने इस अनुपमेय आविष्कार को प्रगट किया, तब लोग इनकी हँसी उडाने लगे। अखबारो में इनके कार्टुन निकलने लगे। लोग इस आविष्कार के विरुद्ध व्याख्यान देने लगे। पर सत्य की चिन-

मारी को कौन बुझा सकता है? तमाम बाधाओं को और मिथ्या विश्वासों को नाश करता हुआ, डाक्टर जेनर के आविष्कार का प्रकाश सारे ससार में फैल गया और मानव-जाति एक विकट रोग से रक्षा पाने का श्रेय सम्मान पूर्वक डाक्टर जेनर को दे रही है।

मनुष्य की तरह पशुओं की बहुत सी बीमारियां भी वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा अधिकृत की जा सकती हैं। जब तक विज्ञान ने पशुओं में होनेवाली बीमारी का तत्वानुसन्धान न कर उसका रहस्य प्रगट न किया था एव उसको रोकने का इलाज न निकाला था, तब तक युरोप में प्रति वर्ष हजारो लाखों जानवर इस बीमारी के कारण मर जाते थे। धन्यवाद देना चाहिये मि० राबर्ट कोच और लुइस पाश्चर को, कि जिनके असीम परिश्रम के कारण इस बीमारी का प्रतिबन्धक उपाय निकला।

कोच ने एक ऐसे पशु का लोहू लिया, जो इस बीमारी से मरा था और उसमें से उस बीमारी के कुछ जन्तु निकाल कर उनकी सख्या वृद्धि की और उन्हें टीका के द्वारा खरगोश, चूहे आदि जानवरो के शरीर में प्रविष्ट करवाये। इसका फल यह हुआ कि इन्हें भी यह बीमारी हो गई। पाश्चर ने साबित किया कि इस बीमारी का फेलाव जन्तुओं ही के कारण होता है। इसके बाद उसने यह सूचना दी कि लस का टीका लगाने से जानवर इस बीमारी के भयङ्कर आक्रमण से बच सकेगा। हां, टीका लगाने के कारण कुछ समय तक इस बीमारी का हल्का रूप उस पर असर करेगा। उसने कई भेडियों को यह टीका लगाया और वे सब की सब बच गईं। इस आविष्कार का विज्ञान ससार में बहुत ऊंचा आसन है।

इसी तरह बावले कुत्ते के विष निवारण का अपूर्व उपाय निकाल कर पाश्चरने मानवजाति का असीम उपकार किया। उसने देखा कि बावले कुत्तों के काटने से लाखो मनुष्यों की प्रति साल मृत्यु होती है। मनुष्य जाति को इस अकाल मौत से बचाना चाहिये। वैज्ञानिक ढङ्ग से वह इसकी जाच करने लगा। उस समय लोगों की यह समझ थी कि बावले कुत्ते की लार में विषैले जन्तु रहते हैं। इसकी सचाई जाचने के लिये उसने बावले कुत्ते की लार को टीका द्वारा खरगोश के शरीर में प्रविष्ट किया, पर इससे खरगोश पर कुछ भी असर नही हुआ। फिर उसने सोचा कि बावले कुत्तों के लक्षणों से प्रतीत होता है कि शायद यह रोग मस्तिष्क के मज्जा तन्तुओं से विशेष सम्बन्ध रखता है। इसके बाद पाश्चर ने बावले कुत्ते की लार की बजाय उसके मस्तिष्क तथा spinal cord के emulsion का टीका में उपयोग किया और देखा कि इससे प्राणी के शरीर मे हडकाव* (Hydrophobia) का असर होता है। बस उसने तुरन्त लस तैयार की और कुत्तों को इसका टीका लगा कर इस प्रयोग को अजमाने लगा।

इसमें उसे अच्छी सफलता प्राप्त हुई। अब तक हडकाव (Hydrophobia) बिलकुल असाध्यसा समझा जाता था। जिन लोगो को बावले कुत्ते ने काटा कि वे अपना जीवन का भरोसा छोड कर निराश से हो जाते थे। उनके दिल में हमेशा धोखा बना रहता था कि न मालूम किस वक्त इसका

---

*बावले कुत्ते के काटने से जो बावलापन उमडता है, उसे मालवा और मारवाड के लोग हड़काव कहते हैं। लेखक मारवाडी है, अतएव उसने यह शब्द उपयोग किया।

जहर हम पर असर कर जाय। लोग इस व्याधि से इतने भयभीत होते थे कि पूछिये ही मत। धन्य है महामति पाश्चर को कि उसने इस भीषण बीमारी का उपाय निकाल मनुष्य जाति को एक भयानक बला से बचाया। अब टीका लगा लेने पर निश्चित समय में अगर कोई बावला कुत्ता काट खाय तो उसका कुछ असर न होगा। जिन लोगों को बावले कुत्तों ने काटा है, टीका के द्वारा योग्य चिकित्सा करने पर उनकी रक्षा हो सकती है। नैनीताल के पास कसावली में पाश्चर प्रणीत चिकित्सा प्रणाली शुरू है। बावले कुत्तों के काटे हुए कितने ही मनुष्य वहां जा कर उस अनुपमेय चिकित्सा द्वारा इस भीषण बीमारी का नाश कर निश्चिन्त हो जाते हैं। पाश्चर द्वारा प्रचलित इस अमृत तुल्य चिकित्सा से शतश भारतवासी नवजीवन का लाभ कर अवश्यही संसार हितैषी उस महात्मा की स्वर्गीय आत्मा के लिये खैर मनाते होंगे, जिसने अपना तन, मन धन लगा कर अपने स्वार्थ का कुछ ख्याल न कर एक भयङ्कर व्याधि से मनुष्य रक्षा का ऐसा अपूर्व और अप्रतिहत उपाय ढूढ निकाला।

अहा! मानवज्ञान को बढाने के तथा मानवकष्टों को कम करने के स्तुत्य उद्देश को सामने रख जो विज्ञानवेत्ता अन्वेषणात्मक प्रयोग करते हैं, उनका जीवन इस नर लोक में अवश्य ही सार्थक है। नर लोक में उन्हीं महात्मा की पूजा होनी चाहिये, जो मानव ही नहीं, पर सारे प्राणियों के दु खो की जड काटने में सचेष्ट रहते हैं। स्वार्थी कीडे, चाहे कितने ही बडे अफसर तथा धनिक क्यों न हो उनके जीवन से संसार को क्या लाभ? संसार में सब से बडा आदमी वही है, चाहे उसके पास फूटी कौडी भी न हो, जो मनुष्य जाति

ही नहीं, पर सारी मानवजाति नम्र हो आप से प्रणाम करती है"।

सचमुच पाश्चर मानवजाति का बहुत बड़ा रक्षक था। मानवजाति के दुःखों से उसकी सकरुण आत्मा अकुला उठती थी। कहा जाता है कि गरीबों की आर्तध्वनि से उसकी आत्मा में अत्यन्त करुणासञ्चार होता था और वह तन, मन, धन से उनके दुःख मुक्ति का प्रयत्न करता था। दयालुता, विनम्रता और तसल्ली मानो उसकी जबान पर निवास करते थे।

शस्त्र क्रिया को भय रहित करने का काम लिस्टर ने किया, पर जागृतावस्था में बड़ी शस्त्र क्रिया करने में मनुष्य को जैसा अप्रतिहत कष्ट होता है, उसका अनुमान प्रत्येक विचारशील मनुष्य कर सकता है। अतएव कई विज्ञान वेताओं का ध्यान इस ओर पहुंचा कि अगर कोई ऐसी औषधि से कि जिसका मनुष्य की तन्दुरुस्ती पर बुरा प्रभाव न पड़े, रोगी को बेहोश कर उस पर शस्त्र क्रिया की जावे, तो रोगी का उस असह्य कष्ट से बचाव हो जावे, जिसका कि उसे शस्त्र क्रिया के समय अनुभव करना पड़ता है। इस प्रकार की औषधि का पता चलाने के लिये अनुसन्धान किया जाने लगा। शुरू शुरू में अठारवहीं शताब्दि के अन्त में ब्रिस्टल के सर हम्फरी डेव्ही ने पता चलाया कि nitrous oxide में कुछ ऐसे गुण हैं जिनसे मनुष्य को नशा आकर वह बेहोश हो जाता है। इन महाशय ने शस्त्र क्रिया के समय इस औषधि के उपयोग करने की राय दी। पचास वर्ष के बाद डाक्टर होरेस वेल्सने इस गैस को सूंघ कर अपना दर्द करता हुआ दांत निकलवाया। इस गैस के सूंघने उन्हें दांत निकालने के समय कुछ भी कष्ट नहीं हुआ।

इसके बाद बेहोश करने के लिये उक्त औषधि का बोस्टन मेडिकल स्कूल और अस्पताल में प्रयोग किया गया। पर इस समय यह गैस कुछ कम परिमाण में सुघाई जाने के कारण इस का यथेष्ट फल नहीं हुआ। इससे डाक्टर वेल्स को हताश होना पडा। इसके बाद इन डाक्टर महाशय के एक शिष्य और हिस्सेदार डाक्टर डब्ल्यू० टी० जी० मार्टन ने इस विषय को हाथ में लिया। आप सल्फ्यूरिक इथर का प्रयोग कर यह देखने लगे कि इससे मनुष्य बेहोश हो सकता है या नही। सेप्टेम्बर सन् १८४६ में उन्हों ने यह इथर सुघा कर एक रोगी का दर्द करता हुआ दांत निकाल लिया। इससे उस रोगी को कुछ तकलीफ नहीं हुई। इसके एक मास के बाद ही इन महाशय ने बोस्टन के अस्पताल में यह गैस सुघा कर एक बडा भारी आपरेशन (चीर फाड) कर डाला। इस वक्त देखा गया कि रोगी को जरा भी तकलीफ नहीं हुई। इसके बाद बोस्टन नगर के सब अस्पतालो में सर्जन लोग चीड फाड के वक्त इस इथर का उपयोग करने लगे। डाक्टर मार्टन ने अस्त्र विज्ञान के संसार मे एक नया मार्ग खोल दिया। सिम्पसन नामक वैज्ञानिक ने जब यह बात सुनी तब वह भी इस क्षेत्र में प्रविष्ट हुआ। उसने यह देखना चाहा कि इस इथर के प्रयोग से क्या स्त्री का वह दुःख कम हो सकता है जो उसे बच्चा जनते समय होता है। सन् १८४७ में उसे प्रयोग से मालूम हुआ कि इस के सुघाने से बच्चा जनती हुई माता का केवल कष्ट ही नहीं मिटता है, पर इसका बच्चे पर भी कुछ खराब असर नही होता।

यद्यपि महामति सिम्पसन को इसमें थोडी बहुत सफलता प्राप्त हो गई थी, पर उसे इससे संतोष नहीं हुआ। वह

इससे भी अच्छी और कोई बेहोश करने वाली दवा ढूढने लगा। उसने अपने दो सहायक डाक्टर केथ और डाक्टर डन्कन के सहयोग से कई द्रव्यों का प्रयोग किया। मुद्दतो के बाद उसे सफलता प्राप्त हुई। उसे क्लोरोफार्म नाम की औषध मिली जो इस काम में सब से श्रेष्ठ सिद्ध हुई। बडे बडे चीर फाड के मामलो में उसने पूरी सफलता के साथ इसका उपयोग किया। जब उसने प्रयोगों के द्वारा जांच कर यह देख लिया कि बेहोश करने के लिये क्लोरोफार्म एक श्रेष्ठ औषध है, तब उसने इसे सर्व साधारण पर प्रकट कर दिया। पहले पहल लोगों की ओर से इसका खूब विरोध हुआ। पर अन्त में सब लोगों को इसकी उपयोगिता मालूम हुई। आज इसके सहारे से सैकडों आपरेशन किये जा रहे हैं। क्लोरोफार्म के आविष्कार से, अगर यह कहा जाय कि वैद्यक ससार में अद्भुत क्रान्ति हो गई, तो हम समझते हैं, इसमें विशेष अतिशयोक्ति न होगी।

प्लेग की बात लीजिये। आज इस अभागे भारतवर्ष में भी प्लेग घर घर व्यापी शब्द हो गया है। पहले जमाने में युरोप में प्लेग की बीमारी एक दैवी कोप समझी जाती थी। लोग प्रार्थना कर इस दुर्दमनीय बीमारी को शान्त करने की चेष्टा में लगे रहते थे। लडन में एक समय जब यह बीमारी भयङ्कर रूप से चली थी, तब बहुत से लोगों ने इसे एक दैवी कोप ही समझा था। पर सन १८६४ में यर्सिन और किटेस्टो नाम के दो जापानी डाक्टरों ने इसके कारणों का पता चलाया उन्हों ने प्रयोगों के द्वारा मालूम किया कि इस बीमारी के कारण पराश्रवलम्बी जन्तु (Parasite) हैं। ये जन्तु चूहे तथा इसी प्रकार के दूसरे जानवरों के बदन में परवरिश पाते हैं। एक किस्म के पिस्सू इन जन्तुओं को लेकर उडते हैं और एक

बदन से दूसरे बदन पर पहुंचाते हैं। येही प्लेग इधर उधर फैलाने का कारण है। अहा! सब रहस्य खुल गया! जिस बीमारी का तीन हजार वर्षों में पता नहीं लगा था। तीन हजार वर्षों से जिसके लिये लोग निरे अन्धकार में थे और जो एक देवी कोप समझी जाती थी, उसका पता विज्ञान ने चला लिया। प्लेग की आक्रान्त दशा में जो श्रृंखला मनुष्य और जन्तु को बांधे हुई थी, उसका रहस्य खुलगया और उसे तोड़ देने का उपाय जहां हस्तगत हुआ कि मानवजाति इस भयङ्कर व्याधि से रक्षा पा सकेगी।

कुछ वर्षों के पहले मच्छर, मक्खी, पिसु, और इसी प्रकार के खून चूसनेवाले अन्य जन्तु परीक्षण करने योग्य नहीं समझे जाते थे, पर पीछे जाकर विज्ञान ने हमें बतलाया कि बीमारियों को फैलाने वाली येही बलाएं हैं। कई डाक्टरों ने जांच कर यह बात प्रकट की है कि मलेरिया, पीलिया सोने की बीमारी (sleeping sickness), प्लेग, कालाझार, मोतीझरा आदि बीमारियों के सञ्चालक प्रधानतया उपरोक्त जानवर ही हैं। ये ही इन बीमारियों के कीटाणुओं को मनुष्य के शरीर में पेवस्त कर देते हैं। ये उपरोक्त जानवर केवल इन रोगों के कीटाणुओं को एक जगह से दूसरी जगह लेजाकर बीमारी ही न फैलाते हैं, पर इन जन्तुओं के शरीर ही इन रोग कीटाणुओं के परवरिश के खास स्थान हैं, इस वास्ते रोगों को कम करने के लिये उपरोक्त जन्तुओं का नाश अनिवार्य्य है।

जीवन को नाश करने के बदले उसकी रक्षा करना अच्छा है। यह महा पुण्यकारी कार्य्य है। हमें उन वैज्ञानिकों को सम्मान प्रदान करना चाहिये, जिनकी शान्त और निरन्तर खोजों से मनुष्य जाति के दुःख और कष्ट कम होते हैं एवं

बीमारियों का प्रचार रुकता है। किसी बीमारी को रोकने का उपाय करने के पहले उसे खूब अच्छी तरह समझ लेना बहुत जरूरी है।

इस प्रकार से समझ बूझ कर काम करने से वैज्ञानिकों ने बड़ी बड़ी सफलताएं प्राप्त की हैं। मलेरिया को ले लीजिये। आप जानते होंगे कि केवल हिन्दुस्थान में कोई दस लाख के ऊपर मनुष्य मलेरिया बुखार से मर जाते हैं। पहले पहले ऐसा विश्वास किया जाता था कि दलदल जमीन से उड़नेवाली 'मिमिस्मा' नामक वाष्प इस ज्वर का कारण है। पर अब मालूम हुआ है कि इसके मूल कारण कोई खास किस्म के कीटाणु हैं जो मच्छरों के शरीर में परवरिश पाते हैं और उन्हीं के द्वारा एक के शरीर से दूसरों के शरीर में पहुंचाये जाते हैं। पहले पहल सी० एल० लेव्हेरेन नामक एक फ्रेन्च फौजी डाक्टर ने यह पता लगाया कि जो मनुष्य मलेरिया ज्वर से बीमार है, उसके खून में किसी खास किस्म के जीवाणु पाये जाते हैं। इसके बाद सर पेट्रिक मेन्सन ने परीक्षण द्वारा जाना कि यह जीवाणु अपने जीवन का कुछ हिस्सा मच्छरों के बदन में बिताते हैं, और मच्छर ही इन्हें एक मनुष्य के बदन से दूसरे मनुष्य के बदन पर लेजाते हैं।

सर रानाल्ड रास नाम के एक वैज्ञानिक ने मच्छरों के बदन में इन जीवाणुओं की भिन्न भिन्न स्थितियों का निरीक्षण किया। आपने इस प्रकार के मच्छरों से कटवा कर इन जीवाणुओं को मनुष्य के शरीर में प्रवीष्ट करवाये इसका परिणाम यह हुआ कि निरोग और हट्टे कट्टे मनुष्यों को मलेरिया हो गया। आपने कई प्रयोगों द्वारा यह बात भली प्रकार सिद्ध कर दी कि मलेरिया की बीमारी के मूल कारण जीवाणु हैं

और मच्छरों के द्वारा यह बीमारी फैलाई जाती है। अगर इस प्रकार के मच्छर न हों, जिनके शरीर में ये मलेरिया के जीवाणु पलसकें तो मलेरिया बुखार का नामोनिशान भी न रहे। इस आविष्कार के सफल हो जाने से इसके आविष्कारक सर रानाल्ड रास को जो अपूर्व आनन्द हुआ, वह वर्णनातीत है। जब इस ज्वर के कारण का पता लग गया, तब उसका उपाय करना भी सहज था। उसके रोकने का उपाय यह था कि जिन जिन स्थानों में मच्छरों के पलने के माफ़ूल साधन होने के कारण ये बहुतायत से बढते रहते हैं, उन जगहों को इस प्रकार से साफ कर देना जिससे मौजूद मच्छर नष्ट हो जावें और आगे उन स्थानों में मच्छरों की उत्पत्ति बन्द हो जावे। इन जगहों का लाव्हाँ नष्ट कर देना चाहिये। इससे मच्छरों की उत्पत्ति प्राय बन्द हो जायगी। इस प्रकार करने से बहुत से ऐसे स्थान जो किसी समय मलेरिया के केन्द्र-स्थान बने हुए थे, अब स्वर्ग से हो रहे हैं और वहां आनन्द पूर्वक मनुष्य बस रहे हैं।

जहां विज्ञानदेव की अर्चना और पूजा की जाती है, सच-मुच वहां दुश्मनों पर विजय पाना कोई बडी बात नहीं। जहां अज्ञानता का राज्य रहता है, वहीं मनुष्य जाति दुश्मनों के बली पडती है। यह बात मनुष्य जाति का परम शत्रु केवल मलेरिया ही के लिये लागू नहीं है, पर दूसरी बीमारियों के लिये भी लागू है। स्पेन और अमेरिका के युद्ध में अमेरिका फौजों की पीलिया ज्वर (Yellow fever) के कारण जैसी बेढब क्षति हुई, वह इतिहास में प्रसिद्ध है। इसके बाद इस बीमारी की वैज्ञानिक जांच शुरू हुई, जिससे मालूम हुआ कि यह बीमारी भी मच्छरों के द्वारा फैलाई जाती है।

सन् १९०० में अमेरिका के युक्त प्रान्त के प्रेसिडेन्ट ने पीलिया ज्वर का कारण ढूढ निकालने के लिये पांच सज्जनों की एक कमिशन नियुक्त की। इस कमिशन के अध्यक्ष डाक्टर वाल्टर रीड थे। क्यूबा टापू में इस कमिशन ने जांच करना शुरू किया। यह बात जान कर कि विना प्रत्यक्ष प्रयोग के किसी बीमारी का सच्चा कारण नहीं निकाला जा सकता। कमिशन ने निश्चय किया किसी मनुष्य को ऐसे मच्छर से कटवाकर देखना चाहिये, जिसने पहले पीलिया ज्वर से बीमार मनुष्य को काटा हो। जीवन सब को प्यारा है। अच्छी बातों के लिये सब तैयार हो जाते हैं, पर जान देने का तथा मुसीबत झेलने का जहा मौका आता है, वहां लोग फिसलने लगते हैं। पर वीरों का यह काम नहीं। मनुष्य जाति की भलाई और हित के लिये, वे अपनी जान की कुछ पर्वाह नहीं करते। दूसरों के हित के लिये अपने प्राणों को न्योछावर करने के लिये सदा तैयार रहते हैं। इस कमिशन में डाक्टर लेझियर नाम के एक वीर पुरुष थे। आपने आगे होकर बडे धैर्य्य और वीरता से कहा कि प्रयोग के लिये मुझे उस मच्छर से कटवाइये, जिसने पहले पीलिया-ज्वर पीडित मनुष्य को काटा हो। आप को ऐसे मच्छर से कटवाया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि आप भयङ्कर रूप से पीलिया ज्वर से आक्रान्त हो गये और थोडे ही दिनो में आप ने वीर की तरह अपने प्राण दे दिये। मनुष्य जाति को एक दुर्दमनीय व्याधि से बचाने के लिये तथा उसकी सुख की वृद्धि के लिये जिन वीरों ने अपने प्राण दिये हैं, उनके उज्ज्वल इतिहास में इस वीर का नाम स्वर्णाक्षरों से लिखे जाने योग्य है। इस प्रकार इस पीलिया ज्वर के कारणों की जांच में कितने ही मनुष्यों ने वीरों की तरह अपने प्राण न्योछावर किये थे।

पनामा की समुद्र ध्वनि का नाम हमारे पढे लिखे भाई अवश्यही जानते होंगे। कोई समय था जब कि यह कब्र के समान भयानक समझी जाती थी। स्पेनियर्डस, फ्रेन्च, और अ गरेजों ने यहा उपनिवेश वसाना चाहे थे, पर इस रोग भूमि से लाचार होकर उन्हें उस समय अपना यह विचार त्यागना पडा यह भूमि उस समय उन्हीं जगली लोगों के लिये छोड दी गई, जो इसमें मुद्दत से रहते थे और यहा की जल वायु के आदि हो गये थे। सुएझ नहर का निर्माता फर्डिनेंड जब नहर काटने के लिये यहा आया तब यहा उसके मार्ग में पीलिया और मलेरिया बुखार ने वडा ही विघ्न उपस्थित किया। उसके साथ के लोग मक्खियो की तरह मरने लगे। इसका कारण यही था कि उस वक्त लोगो को इन व्याधियो के रोकने के उपाय ही मालूम नहीं थे।

जब अमेरिका के युक्त प्रदेश की सरकार ने इस नहर को खुदवाने का काम हाथ में लिया, तब उन्होंने इन वीमारियो को फैलाने वाले मच्छरों का नाश करना शुरु किया। इस काम के लिये कर्नल डबल्यू० सी० गोर्गज की आधीनता में कई सेनिटरी आफिसर नियुक्त किये गये। इन्होने अपना काम वडी तेजी से चलाया। इसका यह फल निकाला कि थोडे ही दिनो में पीलिया और मलेरिया ज्वर नष्ट हो गया।

कहा तक कहा जावे विज्ञान ने मानवी सुख की वृद्धि में वहुत वडी सहायता पहुचाई है जो लाग मानवी कल्याण की सदाभिलाषा मन में रख वैज्ञानिक क्षेत्र में काम करते है, वे धन्य हैं। वे इस ससार को स्वर्ग सा सुखी और आनन्द मय वना सकते है। पर दुःख इस वात का है कि आज कल विज्ञान का उपयोग मानवी सुख की वृद्धि की वजाय मानव-

जाति को यह पता चला कि छोटी छोटी बातों से किस प्रकार बडे बडे चमत्कारों की सृष्टि होती है। सभ्य मनुष्य जाति ने यह जान लिया कि वैज्ञानिक खोज का उद्देश तात्कालिक लाभ पर नहीं रहता।

जिन बातों में वैज्ञानिक अपना सारा जीवन लगा देता है और जिनसे भविष्य में बडे बडे चमत्कार प्रगट होते हैं। शुरू शुरू में वे बातें साधारण लोगों को नाकुछसी मालूम होती हैं और न वैज्ञानिक ही इन बातों का खयाल करता है। पच्चास वर्ष से कुछ ऊपर हुए कि कुछ वैज्ञानिकों ने अपने जीवन का सब से श्रेष्ठ भाग इसी बात में गुजारा कि वे कांच के एक ट्यूब को लेते और उस में बिजली का प्रवाह (current) चलाते। उनके लिये यह बात खेलसी हो गई थी। यह काच का ट्यूब बन्द आर्क लेम्प का कुछ सुधरा हुआ रूप था। जहा तक बन पडता इन से हवा निकाल दी जाती और कार्बन के या धातु के दो टोक (points) इसके भीतर आमने सामने लगाये जाते। दोनो टोको का सम्बध तारों द्वारा उस बिजली की बैटरी से रहता जो इस ट्यूब के बाहर रखी जाती थी। इन दोनो टोकों के बीच जो खाली जगह रहती उसमें विद्युत् के प्रवाह द्वारा स्फुलिंग पैदा किये जाते। यह ट्यूब प्राय वायु रहित होने के कारण इस में बडी सुलभता से इस ट्यूब के एक सिरे की ठीक सामनेवाली टोक पर बिजली गुजरा करती अर्थात् ऋण विद्युत युक्त टोक से धन विद्युत् टोक की ओर बिजली की गति हुआ करती और इससे इस ट्यूब मे एक प्रकार का दिव्य चमकदार प्रकाश उत्पन्न हो जाता। कभी कभी ये वैज्ञानिक ऐसा करते कि वे इस प्राय वायु रहित ट्यूब में दूसरी प्रकार की गैस भरते और फिर उसमें

बिजली का प्रवाह (current) छोड़कर यह देखने कि इसका क्या परिणाम हुआ है।

काच के ट्यूब से हवा को बाहर निकाल कर उसे वायु रहित करने का काम बड़ा मुश्किल था। इस वक्त उन्हें स्वप्न में भी यह खयाल नहीं था कि उनके इस परिश्रम के फल बड़े चमत्कारिक और लोककल्याणकारक निकलेंगे। पहले पहल जैसा हम ऊपर कह चुके हैं अन्य लोगों ने इन प्रयोगों की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया क्योंकि शुरू शुरू में इसके कुछ मार्के के परिणाम नजर नहीं आये। केवल यह बात मालूम हुई कि वायु रहित ट्यूब (vacuum) में भरी हुई बिजली का प्रवाह कुछ सुलभता से गति करता है। अर्थात् बिजली के गति करने में जैसी हवा रुकावट डालती है और इसके लिये जिस प्रकार अधिक शक्तिशाली विद्युत् प्रवाह की जरूरत होती है वैसी अन्य गैसों में नहीं होती क्योंकि विद्युत प्रवाह के मार्ग में जैसी मामूली हवा रुकावट डालती है, वैसी दूसरी गैसें नहीं डालतीं। इसके बाद सन् १८५६ में सकर नाम के वैज्ञानिक ने इस बात में सफलता प्राप्त की कि उसने काच के ट्यूब को वायु से उतना अधिक खाली कर दिया, जितना पहले कोई नहीं कर सका था, अर्थात् उसने ट्यूब में रही हवा को जितने अधिक परिमाण में बाहर निकाली, उतनी पहले कोई वैज्ञानिक नहीं निकाल सका था। काच के ट्यूब को प्राय सम्पूर्ण* रूप से वायु रहित करने के बाद उसमें विद्युत् प्रवाह छोड़ा इससे उस ट्यूब में बड़ा ही सुन्दर और दिव्य प्रकाश मालूम हुआ। काच की दीवाला पर

*किसी भी पदार्थ से सम्पूर्णतया हवा नहीं निकाली जा सकती, इसलिए यहां 'प्राय' शब्द और लगाना पड़ा।

फास्फरस की तरह चमकता हुआ नीले रंग का प्रकाश दीखा। क्रूकर ने मालूम किया कि केथाड से निकली हुई किरणों का यह परिणाम था। हमारे पाठकों को केथाड का अर्थ नहीं समझना होगा, अतएव यहां उसका और साथ आनेवाले शब्द एनाड का खुलासा करना आवश्यक समझते हैं। हम ने ट्यूब में लगी हुई कार्बन तथा धातु के टौंकों का ऊपर वर्णन किया है। उनमें एक टौंक धन विद्युत (Positive) है और दूसरी ऋण विद्युत् (Negative) है। धन विद्युत् टौंक को एनाड (Anode) और ऋण विद्युत टौंक को केथाड (Cathode) कहते हैं, दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि जिस टौंक के द्वारा विद्युत ट्यूब में प्रवेश करता है उसे एनाड (Anode) कहते हैं और जिसके द्वारा विद्युत प्रवाह ट्यूब को त्यागता है उसे केथाड (Cathode) कहते हैं।

यहां यह स्मरण रखना काफी है कि विद्युत प्रवाह के कारण केथाड टौंक से जो किरणें निकलती हैं, उन्हें केथाड किरण कहते हैं। केथाड से निकलकर ये किरणें ट्यूब की बाजूपर टक्कर खाती हैं और इससे बहुत ही सुन्दर रंगीन प्रकाश उत्पन्न होता है। यह बात सन् १८५९ में क्रूकर ने जानी। इसके साथ ही प्रयोग द्वारा उसने यह भी जाना कि ट्यूब के बाहर चुंबक (magnet) रखने से इन किरणों की रुख भी पलटाई जा सकती है इसी बीच में हिट्राफ नाम का जर्मन वैज्ञानिक भी इस बात की खोज करने लगा। सन् १८६९ में उसने यह बात जानी कि इस ट्यूब के अंदर केथाड टौंक और ट्यूब के सिरे (side) के बीच एक ठोस पड़दा लगा देने से केथाड किरण वहीं रोके जा सकते हैं।

अंग्रेज और जर्मन वैज्ञानिकों के बीच विवाद।

अब तक लोगों का यह मत था कि केथाड किरण ईथर की तरंगों से बनते हैं। और ये तरंगें प्रकाश की विद्युत् चुम्बकीय (Electro magnetic) तरंगों के सदृश होती हैं। सन् १८७६ में सर विलियम क्रूक्स ने अपने नये प्रयोगों के आधार पर यह सिद्धांत प्रगट किया कि ये किरणें द्रव्य (matter) के अत्यन्त सूक्ष्म और ऋण विद्युत् युक्त अणुओं के स्रोत (stream) हैं और अणुओं में गजब की गति शक्ति भरी हुई है। पर जर्मन वैज्ञानिकों ने क्रूक्स साहब के इस कथन को स्वीकार नहीं किया। कई दिन तक जर्मन और अंग्रेज वैज्ञानिकों के बीच इसके लिये विवाद होता रहा। अंग्रेज वैज्ञानिकों के इस सिद्धांत को गलत साबित करने के लिये इस अद्भुत किरण की जांच करने के लिये तीन सुप्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक लगे। इनमें विद्युत तरंगों का आविष्कर्ता और बे तार के तार (Wireless telegraphy) का जनक हर्ट्स प्रधान था। हर्ट्स को क्रूक्स के सिद्धांत पर विश्वास न था। हर्ट्स एक अत्यंत प्रतिभाशाली वैज्ञानिक था। बड़ी खोज और निरीक्षण के बाद हर्ट्स ने यह प्रगट किया कि नयी किरण भौतिक अणुओं से (material particles) से नहीं पर विद्युत् तरंगों से बनी है। इस बात को सिद्ध करने के लिये इस प्रतिभाशाली वैज्ञानिक ने वायु रहित किये हुए शून्य (vacuum) के उस बाजू पर जहां केथाड से निकलकर केथाड किरण टकराती थी, एल्यूमिनियम की एक पतली खिड़की (window) बैठा दी। इसके बाद बड़े आश्चर्य के साथ यह बात देखी गई कि यह

आश्चर्यकारक किरण (marvellous ray) एल्यूमिनियम की इस पतली चादर में होकर उसके आर पार निकल गई और उस किरण ने इस ट्यूब के बाहर थोडी दूर की हवा को भी प्रकाशित कर दिया। इस प्रयोग से वैज्ञानिक ससार में बडी हल चल मच गई और जर्मन वैज्ञानिकों का विश्वास हो गया कि अंग्रेज वैज्ञानिको का सिद्धात गलत है क्योंकि इसके पहले यह बात मालूम नहीं हुई थी कि स्वय प्रकाशित द्रव्य की किरणों में सोना और एल्यूमिनियम धातु के पत्तरों के आर पार निकलने की शक्ति है। हर्टभ्क के बाद उसके फिलिपलिनार्ट नाम के एक शिष्य ने इतनी प्रबल केथाड किरण उत्पन्न की कि यह कुछ धातु के पत्तरों में वैसी ही आसानी के साथ घुस सकती थी जैसे सूर्य की किरण पारदर्शक पदार्थों मे घुस जाती है। फिलिपलिनार्ड के इस प्रयोग के एक वर्ष बाद वझ्वर्ग विश्वविद्यालय के भौतिक शास्त्र से अध्यापक विलिहम राजेन ने इसके आगे इस बात का प्रयोग करना शुरू किया। इन्हीं प्रयोगो का फल एक्सरेज जैसे चमत्कारिक आविष्कार के रूप में आप को मिला। अंग्रेजी भाषा में किसी अज्ञात परिणाम (quantity) को बतलाने के लिये "X" काम में लाया जाता है। राजेन की इस नई किरण की मूल प्रकृति के विषय में कुछ न जाना गया। अतएव इसका नाम एक्सरेज अर्थात् एक्स किरण रखा गया।

एक्स किरण की उत्पत्ति केथाड किरण से हुई है। जब केथाड किरण किसी पदार्थ स टकराती है तब वह एक्स किरण को उत्पन्न करती है। जब प्राय वायु रहित किये हुए ट्यूब केथाड किरण से प्रकाशित किया जाता है तब वहा एक्स किरण भी मौजूद रहती है। पर अडचन इस बात की

है कि जहा केथाड किरण की प्रकाशित आभा हमें खाली आंखों से दीख पडती है, वेम्से एक्स किरण नहीं दीख पडते। जब काच के ट्यूब से अधिक तर हवा बाहर निकाल दी जाती है और उसमें विद्युत प्रवाह चलाया जाता है तब केथाड किरण अच्छी तरह पहचानी जा सकती है। यह पहले हरे प्रकाश को लेकर निकलती है और जैसे २ ट्यूब से ज्यादा ज्यादा हवा बाहर निकाली जाती है वैसे २ उसका यह नील प्रकाश पीले रंग के प्रकाश में परिणत हो जाता है। इस ट्यूब में एल्यूमिनियम तथा सोने के पत्तरों की खिडकी लगाकर उसके द्वारा ट्यूब के बाहर भी खुली हवा में यह प्रकाश उत्पन्न किया जा सकता है। हम ऊपर कह चुके हैं कि एक्स किरण आंखों से नहीं दीख पडती। यद्यपि केथाड किरण के द्वारा वैज्ञानिकों ने कई वक्त एक्स किरण को उत्पन्न किया पर अब तक वे यह न जान सके कि यह किन तत्वों से बनी है।

प्रोफेसर रांजेन ने सन १८९५ के अन्त में अपनी प्रयोग-शाला की टेबल पर रखे हुए एक खास किस्म के (Fluorescent) पडदे पर प्रयोग करना शुरू किया। यह पडदा अक्सर सूर्य प्रकाश के अदृश्य अत्यन्त सूक्ष्म (ultra-violet) तत्वों का परीक्षण करने के लिये काम में लाया जाता था। यह पडदा कार्ड बोर्ड पर बेरियम प्लेटिनो सिनाइड के कण (crystals) चिपकाकर (coating) तैयार किया गया था, इन कणों में यह शक्ति थी कि ये अदृश्य किरणों को जो मनुष्य की आंखों से न दीख सके वही और दृश्य किरणों में परिणत कर सकते थे। जब केथाड का प्रकाश ट्यूब में उत्पन्न किया जाता था, तब उसमें लगा हुआ (Fluorescent) पडदा दिव्य प्रकाश से प्रकाशित हो उठता था। यह प्रकाश दृश्य केथाड

किरण से उत्पन्न हुआ है या इसका कोई और भी कारण है। इस बात का फैसला करने के लिये राजेन प्रवृत हुआ। उसने उस वायु निकाले हुये ट्यूब (vacuum tube) को ढक दिया जिससे केथाड का उजाला (glow) दीखना बन्द हो गया पर वह (Fluorescent) पडदा अंधेरे में एक नये और अज्ञात प्रकाश से प्रकाशित होता रहा। इसके बाद उक्त प्रोफेसर ने उस ढके हुए ट्यूब और उस पडदे के बीच दूसरी अनेक प्रकार की चीजें रखी और इस तरह इस आश्चर्यकारक और अद्भुत आविष्कार का जन्म उसके हाथों से हुआ। उसने इस ट्यूब के और पडदे के बीच अपना हाथ का पंजा रखा तो उसने देखा कि इस किरण के कारण उसके पंजे की हड्डियां साफ साफ दीखने लगी अर्थात् ये किरणें पंजे को चमडी और मांस के भीतर होकर हड्डियों तक पहुंच जाती हैं और मनुष्य को उन्हे प्रत्यक्ष दिखला देती हैं। वर्झबर्ग विश्व-विद्यालय की प्रयोगशाला विज्ञान के इतिहास में सदा अमर रहेगी क्योंकि महामति राजेन ने यहा उस चमत्कारिक आविष्कार को आविष्कृत किया था जिससे मानव जाति का असीम उपकार हुआ। इस अपूर्व किरण के द्वारा डाक्टर लोग विनाचीडफाड किये शरीर के भीतर की हालत जान सकते हैं॥

अध्याय छठवां

रेडियम

आधुनिक विज्ञान संसार में रेडियम के आविष्कार से जैसी अजीब क्रान्ति हुई है; वैसी पहले किसी से नहीं हुई। रेडियम के आविष्कार ने आधुनिक वैज्ञानिक संसार में जैसा

अद्भुत और दिव्य प्रकाश डाला है, उसे देखकर सारा सभ्य संसार आश्चर्य से दङ्ग रह गया है। इस अद्भुत धातु की परम आश्चर्यकारक और अद्भुत शक्ति देखकर हृदय एकदम ही आश्चर्य और विस्मय के समुद्र मे लहरें खाने लगता है। इस धातु ने वैज्ञानिक संसार को जिस तरह हिला दिया है—जैसी उसमें अद्भुत क्रान्ति कर दी है—उसे देखकर मानवी हृदय में ये भावनाएं आपो-आप उदय होने लगती हैं कि सर्व शक्तिमान् परमात्मा ने इस धातु में इतनी गजब की शक्ति कहां से भर दी ? इस वक्त मनुष्य को उन अनन्त शक्तियों पर विश्वास होने लगता है, जो सृष्टि के कई पदार्थों में रही हुई है। इस वक्त मनुष्य को उस अनन्त की अनन्तलीला का कुछ कुछ भान होने लगता है। प्रिय और जिज्ञासु पाठको अब मैं आप का विशेष समय न ले रेडियम धातु के विषय में दो शब्द कहना चाहता हूं।

इस पुस्तक के पूर्व अध्यायों में आपने यह पढ़ा होगा कि सृष्टि के गूढ रहस्यों का पता लगाना—सृष्टि की छिपी हुई शक्तियों का प्रकाश करना—नये नये पदार्थों को ढूंढ निकालना—येही वैज्ञानिक के जीवन के मुख्य लक्षण हैं। इनके लिये वैज्ञानिक दिन रात परिश्रम और निरीक्षण करते रहते हैं। तब जाकर उन्हें सृष्टि की कोई नई बात मालूम होती है, तब जाकर उनके हाथ से कोई नया आविष्कार निकलता है। जिस आविष्कार का हाल आज हम अपने पाठकों को सुनाना चाहते हैं, वह आविष्कार भी एकाएक न निकला है। यह बहुकालव्यापी निरीक्षण और परिश्रम का फल है। वैज्ञानिकों ने देखा कि कुछ पदार्थ ऐसे हैं, जो सूर्य के प्रकाश में रखने के बाद अन्धेरे में लाये जावें, तो वे उस अन्धेरे में कुछ समय

नष्ट प्रकाश देते रहते हैं, और जिनके पास ऋणविद्युतयुक्त (negatively electrified bodies) पदार्थ रखने से उस पदार्थ की विद्युतशक्ति चली जाती है। यह प्रयोग सन् १८८९ में एलिस्टर और गेटल नाम के वैज्ञानिकों ने सब से पहले कर देखा था। दूसरी बात यह कि सन् १८९५ में रांजेन नामक वैज्ञानिक ने ऐसी किरणों का पता लगा लिया था, जो दृष्टिगोचर न होते हुए भी उन पदार्थों के अन्दर प्रविष्ट हो जाती हैं, जिनके अन्दर की मामूली प्रकाश-किरण प्रविष्ट नहीं हो पाती। इस किस्म की किरणों का नाम रांजेन ने क्ष-किरण (x-rays) रखा। इसके बाद सन् १८९६ में एम० हेनरी नाम के वैज्ञानिक ने यह जानना चाहा कि झिंक सल्फाईड में भी यह शक्ति है कि उसे सूर्य प्रकाश में रखने के बाद अन्धेरे में लाया जावे तो उसमें से भी एक किस्म की ऐसी किरणें निकलती हैं, जो आंखों से नहीं देखी जा सकतीं, पर जो रांजेन की एक्सरेज की तरह उन पदार्थों के अन्दर प्रविष्ट हो सकती हैं, जिन में कि मामूली किरणें प्रवेश नहीं पा सकतीं और जिनका असर फोटोग्राफिक प्लेटपर साफ साफ होता है इस प्रकार के शोध हो ही रहे थे कि प्रोफेसर हेनरी बेकरल ने अपने प्रयोग द्वारा जाना कि पोटेशिया सल्फेट आफ यूरेनियम में भी ऐसी ही शक्ति मौजूद है। अकस्मात् प्रोफेसर महाशय को अपने अनुसन्धान में यह बात मालूम हुई कि युरेनियम लवण में ऐसी किरणें पैदा करने के लिये यह आवश्यक नहीं कि उसे उपरोक्त पदार्थों की तरह सूर्य प्रकाश में रखा जावे। इसमें से तो इस प्रकार की अन्धेरी किरणें (dark rays) इसे सूर्य का प्रकाश दिये विनाही निकलती रहती है। इनका असर भी फोटोग्राफिक प्लेट पर होता है।

ये किरणें हलकी धातुओं और लकड़ी तक में प्रविष्ट हो उनके उस पार निकल जाती हैं। बेकरल ने यह भी देखा कि इनके पास भी अगर कोई ऋणविद्युत युक्त पदार्थ जावे तो वह पदार्थ अपनी विद्युतशक्ति खो देता है। ये किरणें बेकरल की किरणों के नाम से मशहूर हैं।

इस उपरोक्त युरेनियम लवण की सर विलियम क्रूक्स नाम के वैज्ञानिक ने बड़ी सूक्ष्मता से परीक्षा की। इस परीक्षा में आपको मालूम हुआ कि ये किरणें शुद्ध युरेनियम लवण से नहीं निकलती हैं, वरना युरेनियम लवण के अन्दर रहे हुए किसी ऐसे पदार्थ से निकलती हैं, जो शुद्ध युरेनियम न होकर उसमें मिला हुआ कोई दूसरा ही पदार्थ है। सर विलियम क्रूक्स महाशय ने रासायनिक प्रयोग के द्वारा युरेनियम से इस पदार्थ को अलग निकाल लिया, तब आपने देखा कि युरेनियम से निकाले हुए पदार्थ में ही ये किरणें निकालने की शक्ति है, शुद्ध युरेनियम में नहीं। इसके बाद मेडम क्यूरी ने अपने पति प्रो० क्यूरी के सहयोग में इस विषय की विशेष जाच करना शुरू की। मेडम क्यूरी का जन्म पोलेंड के वार्सा नगर में सन् १८६७ में हुआ था। श्रीमती की प्रारम्भिक शिक्षा यहीं हुई थी। सन् १८६१ में श्रीमती पेरिस गई और वहा आपने अपना अध्ययन करना शुरू किया। आप पेरिस विश्वविद्यालय से एम०ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गईं। सन् १८६५ में श्रीमती का विवाह प्रो० पीरी क्यूरी से हुआ। आप पेरिस विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र के अध्यापक थे। सन् १९०० में मेडम क्यूरी सेवरस (Severes) के "स्टेट नार्मल स्कूल" में भौतिक विज्ञान की प्रोफेसर नियुक्त हुईं। थोड़े दिनों के बाद आपको डाक्टर की उच्च उपाधि मिली।

श्रीमती को (radio activity) के रहस्यो को जानने की उत्कृष्ट उत्कण्ठा थी। आस्ट्रियन सरकारने श्रीमती के पास कुछ ऐसी मिट्टी भेजी, जिसमें से युरेनियम निकाल लिया गया था और इस कारण जिसमें विद्युत किरणों को निकालने की शक्ति ज्यादा थी (हम पहले कह चुके हैं कि शुद्ध युरेनियम में किरणें निकालने की शक्ति नही, पर उस में मिले हुए किसी दूसरे पदार्थ में है। इस वास्ते युरेनियम निकाल लेने से बाकी जो अवशेष बच रहता है, उसमें यह शक्ति विशेष रूप से होनी ही चाहिये) इसी मिट्टी से उक्त दम्पति ने तीन नये पदार्थों का आविष्कार किया। उनके नाम रेडियम पोलोनियम, और एक्टिनियम हैं। ये सब स्वयं प्रकाशित हैं। इन सब मे रेडियम मुख्य है। उसके गुण और चमत्कार आश्चर्यकारक और अद्भुत हैं।

रेडियम के गुण

हम ऊपर रेडियम के आविष्कार का संक्षिप्त वृत्तान्त लिख चुके है, उससे पाठको को इस चमत्कारिक धातु के आविष्कार का हाल अवश्य ही मालूम हुआ होगा। अब हम भिन्न भिन्न वैज्ञानिको की दृष्टि के प्रकाश मे इसके गुणों की— इसके अद्भुत चमत्कारों की—कुछ विवेचना करना चाहते है। यहा इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि रेडियम अमिश्रित दशा (uncombind state) में अभी तक न मिला। क्लोराइड, ब्रोमाइड और नाइट्रेट के संयुक्त अंश की दशा ही मे वह मिलता है? वह भी इतना कम मिलता है कि कुछ पूछिये मत। सारे संसार मे कोई डेढ दो तोले से ज्यादा रेडियम न मिलेगा। इसका मूल्य सुनकर भी पाठकों को होगा। एक ग्रेन रेडियम का मूल्य कोई २५॥ पैाण्ड

के लगभग है। अर्थात स्वर्ण से कोई २००० गुना अधिक इसका मूल्य है। इसका वजन भी भारी होता है। प्रो० क्यूरी के प्रयोग से मालूम हुआ कि इसके परमाणु का वजन हायड्रोजन के परमाणु स २२५ गुणा अधिक होता है। पाठको क्या आप को मालूम है कि हायड्रोजन परमाणु का वजन कितना है? उसका वजन है।

रेडियम लवण में यह एक बडाही अद्भुत् अपूर्व और आश्चर्यकारक गुण है कि इससे निरन्तर मन्द प्रकाश की किरणें निकला करती हैं, जो अन्धेरे में दिखाई दे सकती है। इतना ही नहीं पर रेडियम लवण में यह भी शक्ति है कि इसकी निकलती किरणों से पास रखे हुए पदार्थ भी फासफरस की नांई चमकने लगते हैं। तिसपर भी सल्फाइड आफ झिंक तो बहुत ही शीघ्र और ज्यादा चमकने लगता है। इसके सिवा रेडियम लवण से उष्णता की किरणें भी निरन्तर निकला करती है। यही कारण है कि रेडियम का उष्णतामान अन्य पदार्थों से १०५ सेन्टिग्रेड अधिक रहता है। पहले ऐसा ख्याल था कि इस प्रकार की उष्णता की किरणें निरन्तर निकलते रहने से उसमे किसी तरह की कमी होती होगी।

हम ऊपर कह चुके हैं कि आजतक जितने स्वय प्रकाशित द्रव्य (radio active bodies) मिले हैं, उन सब में इस प्रकार की अदृश्य किरणें निकालने की शक्ति है, जो उन अपारदर्शक पदार्थों (opaque bodies) के आरपार निकल सकती है, जिनमें मामूली प्रकाश की किरणें नहीं निकल सकती और इन किरणों की क्रिया तथा असर फोटोग्राफिक प्लेट पर भी होता है। रेडियम लवण में इस प्रकार की किरणों को निकालने की सब से ज्यादा शक्ति है। इन किरणों

का प्रभाव मानवी शरीर पर भी बहुत पडता है। प्रोफेसर वेकरल महाशय लंडन को व्याख्यान देने के लिये जा रहे थे। उस वक्त रास्ते में मुसाफरी के वक्त आपकी जेब में सील लगी हुई ट्यूब में कुछ मिलिग्राम रेडियम लवण रखा था। उस वक्त तो कुछ न हुआ पर कोई पन्द्रह दिन के बाद आपने देखा कि उनकी जेब के नीचे का शरीर का हिस्सा (लाल) सुर्ख पड गया है और इसके कुछ ही दिन बाद उस हिस्से का चमडा निकल गया और वहां गहरा घाव हो गया, जो कई दिन के इलाज के बाद आराम हुआ। अब यही दशा सर विलियम क्रूक की भी हुई। आप अपनी विस्कुट की जेब में रेडियम की शीशी को रखकर उसे प्रयोग करने के स्थान पर ले जाया करते थे, इससे उनके भी उस स्थान में वैसा ही फोडा (boil) हो गया, जैसा प्रो० वेकरल महाशय को हुआ था। इससे धातु को मजबूत ढकनवाले शीशे में रखना चाहिये क्योंकि शीशे में इस धातु की किरणों को रोकने की शक्ति है। रेडियम के प्रयोग करनेवाले हमेशा ऐसा नहीं कर सकते, यही कारण है कि उनके हाथों की अगुलियां छिली हुई या दाग पडी हुई होती हैं।

रेडियम में एक और अजब गुण है, वह यह है कि आप रेडियम को एक नली में रख और उसके चारो ओर एक कागज का टुकडा लपेट कर उसे एक अन्धेरे कमरे में ले जाइये और अपनो दोनों आखें बन्द कर आंख की पलक पर धीरे से उस नलो को लगाइये, तुरन्त आपको अपनी आख के बाहर एक प्रकार का अद्भुत प्रकाश पडता हुआ मालूम होगा। दर असल यह प्रकाश आख के बाहर का नहीं पर आख के भीतर ही का है। रेडियम में आख की पुतली को

स्वय प्रकाशित करने की शक्ति है। पर यहा यह याद रखना चाहिये की ज्यादा वक्त तक रेडियम को आंख के पास रखने से हानि होने की सम्भावना है, क्योंकि डर है कि शायद इससे आख की ज्योति नष्ट हो जाय। अगर रेडियम की नली को आखो के बदले कनपटी पर लगाई जावे और आखें बन्द करली जाय तो भी आखो को एक प्रकार का चमकता हुआ प्रकाश मालूम होगा। इस समय रेडियम के किरण सिर की हड्डी द्वारा पुतली में प्रवेश कर जाते है।

रेडियम के उपरोक्त आश्चर्यकारक और अद्‌भुत गुण के कारण आधुनिक डाक्टर आखों के दर्द पर इसका प्रयोग करने लगे है। सुप्रख्यात फ्रेन्च डाक्टर एमाइल जेव्हेल (जो खुद अन्धे है) का मत है कि जिस मनुष्य को मोतियाबिन्दु हो गया है, उसकी आखों का रेटीना नामक पडदा फटा है या नहीं और शस्त्र क्रिया से उसकी आखों को फायदा पहुच सकता है या नही, ये सब बातें रेडियम की सहायता से जानी जा सकती हैं। अगर ऊपर लिखी हुई रीति के अनुसार रेडियम की नली आखो पर लगाने से आखो में प्रकाश दीख पडे तो समझ लेना चाहिये कि मोतियाबिन्दु निकालने के बाद आखें दुरुस्त हो जायगी किन्तु प्रकाश न दीख पडे तो निश्चय कर लेना चाहिये कि अब आखो के अच्छे होने की बिलकुल आशा नहीं है। लुडे नाम के एक रशियन प्रोफेसर ने इस धातु द्वारा अन्धत्व नष्ट करने में बडी सफलता प्राप्त की है। उन्होंने तेरह तेरह वर्ष की उम्र के दो छोटे लडकों को, जो एक वर्ष से अन्धे हो गये थे, अन्धेरे कमरे में रखा और उनकी आखों और कपाल के पास रेडियम की नली रख आखों पर रेडियम के किरण डाल कर धीरे धीरे रोगग्रस्त पडदे को

अलग कर आखों में पुन प्रकाश लाने में सफलता प्राप्त की। जन्म के अन्धों के लिये रेडियम का कुछ उपयोग नहीं हो सकता, पर जो मनुष्य जन्मान्ध नहीं है, उसकी आंखों को प्रकाशित करने के लिये तो रेडियम एक रामवाण औषधि कही जा सकती है।

किसी रोग को अच्छा करने के लिये जब रेडियम का उपयोग किया जाता है तो उसके एक सिरे पर कांच लगाते ह और इसके किरण दर्दवाले भागपर डाले जाते हैं। ये किरण बडी ही शीघ्रगति से शरीर में प्रविष्ट हो रोग जन्तुओं को नष्ट कर देते हैं। इस धातु का उक्त रीति से रोग नष्ट करने के काम में प्रयोग करने से चमडी पर जख्म हो जाते है, जो औषधोपचार से अच्छे किये जा सकते है। रेडियम की सहायता से विप्ना, कॅसर, और न्यूरेल्जिया आदि कई रोग अच्छे किये जाते हैं। इनके सिवा मोतीभरा, हैजा और एन्थ्रेक्स नामक रोगो को पैदा करनेवाले जन्तु भी इससे नष्ट किये जा सकते है। कई तरह के बडे बडे असाध्य रोग रेडियम से आराम हो सकते हैं। जन्तु नाश करने की रेडियम में बडी ही अद्भुत् शक्ति है। छोटे छोटे जन्तुओ की तो बात ही क्या, पर १/१० ग्रेन रेडियम का टुकडा चूहे के पास रखने से वह मर जाता है। इससे अधिक परिमाण में अगर यह धातु किसी कमरे में खुली रखी जाय तो उसमें बैठे हुये मनुष्यो की दृष्टि चले जाने का भय रहता है।

लोह चुम्बक में अपनी शक्ति थोडे समय के लिये, दूसरे पदार्थों को देने का जो एक प्रकार का गुण है, वह रेडियम में भी है। यही कारण है कि जितने छोटे और बन्द स्थान में रेडियम भरी हुई कोई चीज रखी जायगी उस चीज में उतने

परिमाण से कुछ विशिष्ट समय के लिये कुछ कुछ रेडियम का गुण आ जायगा। रेडियम में नीचे लिखे हुए अद्भुत् गुण और शक्तिया भी हैं—

(१) रेडियम में से फास्फरस का पीला रग उडकर उसका लाल रग हो जाता है।

(२) रेडियम के किरण से कहीं कहीं ओझोन गैस उत्पन्न होता है।

रेडियम का थोडा सा भाग पानी में मिलाने से उस पानी का पृथक्करण हो जाता है। जिससे उसका आक्सीजन निर्मूल हो हायड्रोजन ऊपर उठ आता है।

पतली की हुई रेडियम को काच के बर्तन में रखने से उस बर्तन पर जामुनिया रग चढ जाता है। और अच्छी तरह गर्म किये बिना वह रग नही जाता। अतएव हीरे आदि बहु मूल्य पदार्थों पर रेडियम द्वारा पक्का रग चढाया जा सकता है।

रेडियम की सहायता से खरे और खोटे हीरे की परीक्षा की जा सकती है। अगर किसी अपारदर्शक डिब्बी में थोडा सा रेडियम रख उस डिब्बी को अधेरे में खरे हीरे के पास ले जायें, तो वह हीरा बडा हो उत्तम प्रकाश देने लगता है, परतु खोटा हीरा इस तरह प्रकाश नही देता। इस युक्ति से खोटे और खरे हीरे की उत्तम प्रकार से परीक्षा हो सकती है।

रेडियम का प्राणी के जीवनतत्व पर भी बहुत असर पडता है। रेडियम में प्राणनाशक शक्ति भी है और प्राणदायक भी है। रेडियम की प्राणनाशक शक्ति के प्रदेश में जितना प्रदेश आयेगा, उस प्रदेश में रहने वाले प्राणियो में से कोई भी नही बच पायेगा। क्योंकि रेडियम की प्राणनाशक शक्ति

का उनपर असर पडेगा। कितने ही समय तक तो प्राणियो को इसका असर मालूम न होगा, पर थोडे सप्ताह के बाद उन प्राणियों के शरीर की चमडी फटने लगेगी, शरीर सड जायगा और अन्त में अर्धाङ्ग वायु तथा पीठ की हड्डी का रोग होकर उनके प्राण पखेरु उड जायेंगे। यह तो हुई रेडियम की प्राणनाशक शक्ति की बात, अब उसकी प्राणप्रद शक्ति की बात भी सुन लीजिये। अनुभव से यह सिद्ध हुआ है कि प्राणियो को कम शक्ति वाले रेडियम के पास कुछ समय तक रखने से वे मरते नही पर जल्दी से बढने लगते है। रेडियम में यह भी एक अद्भुत गुण देखा गया है कि इसकी सहायता से अण्डों मे से उनकी मुद्दत के पहिले ही बच्चे निकाले जा सकते है। प्रो० जी० बोटर्न ने 'टाडपोल' नामक जल में रहने वाली मेंडक के अण्डों में से रेडियम के द्वारा बच्चे निकाले थे। इस पर भी आश्चर्य यह कि पूर्णवृद्धि प्राप्त होने पर इन बच्चो का कद अपने माता पिता के कद से बडा मालूम होता था।

पाश्चर इन्स्टिट्यूशन् मे एम० डेनिस नामक वैज्ञानिक ने प्रयोग कर यह बात सिद्ध की है कि जहा रेडियम की प्रबल किरणो से मनुष्य की दृष्टि शक्ति नष्ट हो जाती है—उसे लकवा हो जाता है, और छोटे २ जीव जन्तु इसके प्रभाव से मर जाते है, वहा रेडियम की सौम्य और निर्बल स्वरूप की किरणो से प्राणीजीवन बढता है। सन् १९०३ की फरवरी की ३ तारीख को उपरोक्त वैज्ञानिक ने अनाज के सौ कीडे प्रयोग के लिये इकट्ठा किये। उन में पचास तो एक बोतल में रखे, और ५० दूसरी में। पहिली बोतल के कीडों पर आप ने रेडियम के किरण डाले और दूसरी को योही रखा। इन दोनों

बोतलों में कीड़ों की खुराक के लिये काफी तादाद में आटा रख दिया था। दोनों बोतलों के कीडे उसी हालत में कुछ सप्ताह तक रखे रहे। इसके बाद देखा गया कि जिस बोतल में रेडियम के किरण छोडे गये थे उस बोतल के बहुत से कीडे मरे हुए मिले। थोडे से कीडो ने आटे में छिपकर रेडियम की प्राण-नाशक किरणों से अपने प्राण बचा लिये। ये कीडे उसी रूप मे मिले जिस रूप में बोतल में रखे गये थे। सामान्य नियमानुसार यह पतंग रूप में मिलने चाहिये थे, पर वैसा नहीं हुआ। दूसरी बोतल के कीडो का नियमानुसार रूपान्तर हो गया था। ये पतंगो के रूप में परिवर्तित होकर मर भी चुके थे। इन कीडो ने अण्डे भी दिये थे, जिससे उक्त बोतल में सैकडो नये कीडे पैदा हो गये थे। इस प्रयोग से यह बात स्पष्टतया मालूम होती है कि रेडियम की सौम्य और निर्बल किरणों से जीवो का वृद्धत्व रुकता है। आटे में छिप जाने के कारण पहिली बोतल के कीडों पर रेडियम की किरणों का सौम्य प्रभाव हुआ, इससे वे कीडे बच भी गये और उन्होंने तिगुनी उम्र पायी, और उन में किसी तरह का परिवर्तन नहीं देखा। इस प्रयोग से यह अनुमान हो सकता है कि अगर सोलह वर्ष की चन्द्र-मुखी युवती के मुख पर कुछ समय तक रेडियम के सौम्य किरण डाले जावें तो अस्सी वर्ष की उम्र में भी उस चन्द्रमुखी युवती का मुख वैसाही मनोहर और यौवन से खिला हुआ दीख पडेगा। जैसी जैसी शक्ति की किरणें डाली जायेंगी उसीके अनुसार प्राणियो के शरीर पर उनका प्रभाव पडेगा।

सुप्रख्यात् प्राणी शास्त्रज्ञ एम० ग्रान ने अपने प्रयोगो से दिखलाया है कि मेंडक आदि नीचे दर्जे के प्राणियो का रूपान्तर इस धातु से बडा शीघ्र होता है। मेंडक के पैदा होने के

चार चार दिन तक उसपर रेडियम के किरण छोड़े गये तो उसके रूप में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया। साधारण मेंडक की पूछ से इस मेंडक को छोटी पूछ निकली। इसकी चमड़ी पर अजब प्रकार की केंचुली चढ़ गई। इसी तरह मछली के अण्डे पर रेडियम के किरण छोड़ने से नियत समय के पहिले ही उन में से बच्चे निकलने लगते है। बात यह है कि यद्यपि सृष्टि के सामान्य नियमानुसार जहा प्राण उत्पन्न न हो, वहा प्राण उत्पन्न करने की शक्ति रेडियम में न होने पर भी जीव और बीज की शीघ्र वृद्धि तथा रूपान्तर करने की उसमे शक्ति है। इस पर से यह अनुमान किया जाता है कि कीट, पतग पक्षी मछली आदि प्राणियों के अण्डों पर या उनके छोटे बच्चो पर रेडियम का प्रयोग करने से सम्भव है कि उन में से बिलकुल नये प्रकार के प्राणी पैदा हो जावें, क्योंकि जब एक जाति के प्राणियो में रूपान्तर हो सकता है, तो दूसरी जाति के प्राणियो में होना भी सम्भव है।

हम पहले कह चुके है कि रेडियम से अनेक असाध्य रोग आराम हो जाते है। डाक्टर डन्लेने 'लूपस' नाम का रोग इस धातु की किरणों से आराम किया। साधारण प्रकार के व्रण तथा फोड़ों पर भी इस धातु के किरण अच्छा गुण दिखाते है। इस पर से कुछ वैज्ञानिको का कहना है कि हवा में के जहरीले कीडों के नाश करने का गुण रेडियम में विद्यमान है। कितने ही डाक्टरो का मत है कि फेफडे के रोगी को रेडियम की शक्ति भरा हुआ पानी अच्छा गुण दिखा सकता है।

इन अलभ्य लाभो के सिवाय क्या पाठक आप जानते हैं रेडियम में कितनी गजब की शक्ति भरी हुई है? आप

सुनकर दङ्ग रह जायँगे कि एक मासा रेडियम ३६०० घोड़ों का काम कर सकती है। कहिये कितनी प्रचण्ड शक्ति इस में अन्तर्भूत है !! इसे हम कुछ साफ तौर से यों कह सकते हैं कि एक मासा रेडियम ७० डिब्बों की (२५० मनुष्यों का एक डिब्बा) कु माल गाड़ियां चलाने की शक्ति रखता है। इस प्रचण्ड शक्ति का यान्त्रिक कार्य्यों में उपयोग करना वैज्ञानिकों का काम है। अहा ! जिस दिन इस शक्ति का व्यवहारिक उपयोग करने की कुञ्जी वैज्ञानिकों के हाथ में आयेगी, उस दिन संसार के उद्योग धन्धों की कितनी क्रान्ति हो जायगी, इसका अनुमान बाधना भी अभी हमारी शक्ति के बाहर है। जिस दिन रेडियम प्रचुर प्रमाण में मिलने लगेगा और उसकी शक्ति को काम में लाने की कुञ्जी मनुष्य को प्राप्त हो जायेगी, उस दिन हमारी रेलगाड़ियां, ट्राम, मोटर कल कारखाने सब इसकी सहायता से चलने लगेंगे।

यह शक्ति कहां से पैदा होती है। उन्होंने निश्चय समझ लिया कि यह अत्याधिक शक्ति रेडियम ही के भीतर छिपी रहती है। रेडियम विगलित होकर जिस समय लघुपदार्थ में परिणत होता है उस समय उसकी यह शक्ति ताप उत्पन्न करने लगती है। रैमजे साहब को विश्वास हो गया कि ब्रह्माण्ड के सभी पदार्थों में इसी प्रकार अत्याधिक शक्ति सञ्चित है। यत्नपूर्वक सञ्चित उस शक्ति के खजाने का द्वार खोलकर ही प्रकृति देवी संसार में उथल पुथल के नये नये तमाशे दिखाती है। रेडियम जैसी गुरु वस्तु जब अपनी अन्तर्निहित शक्ति को त्यागकर नाइट्रन और हेलियम आदि लघु वस्तुओं में परिणत हो जाती है तब लघु वस्तुओं पर अधिक शक्ति डालकर क्या वह उन्हें वैसी ही गुरुतर नहीं बना सकती ? यह प्रश्न रैमजे

साहब के चित्त में उदित हुआ। यदि ऐसी रासायनिक प्रक्रिया का आविष्कार हो जाय तो लोहे से सोना बनाना सहज हो जायगा। सभी विज्ञानवेत्ता रैमज़े साहब की इस बात से सहमत हो गये।

रेडियम से आविष्कार से आधुनिक वैज्ञानिकों को विश्व की सङ्गठना के विषय में कई अपूर्व और बिलकुल नयी बातें मालूम हुई हैं। इस धातु ने वैज्ञानिकों के लिये विश्व की अन्तर्रचना जानने का मार्ग खोल दिया। इस धातुही के आविष्कार से हम लोग परमाणु के परे जाने में समर्थ हुए हैं। इस धातु के आविष्कार ने हमारे मस्तिष्क को विश्व सम्बधी सच्चे विचारों से प्रकाशमान् कर दिया है। इस धातु के आविष्कार से हमे यह महान् तत्त्व मालूम हुआ है कि दो परमाणुओं की रगड से शक्ति (power and energy) पैदा होती है।

रेडियम वायु से शक्ति ग्रहण करती है

जिस महान् रसायनशास्त्रज्ञ ने पहले पहल इस अपूर्व और अलौकिक धातु का आविष्कार किया, उन्होंने यह साबित करने का प्रयत्न किया कि रेडियम एक तत्त्व (element) है और वह उसी तरह रेडियम परमाणुओं से बना हुआ है, जैसे कार्बन के परमाणुओं से कार्बन बनता है। पर विचार करने की बात यह है कि कार्बन का टुकडा अकेला रखने से उस में से कोई पदार्थ नहीं निकलता। जब यह जलाया जाता है, तब ही इससे ताप और प्रकाश उत्पन्न होता है। पर रेडियम की यह बात नहीं। रेडियम को अकेला छोड देने से भी उसमें से भिन्न भिन्न प्रकार की इतनी गजब की शक्ति सतत निकला करती है कि जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

कितने ही लोगों का ऐसा मत है कि रेडियम अपने आसपास की हमेशा बहनेवाली हवा से शक्ति ग्रहण कर उसे अपने द्वारा प्रकाशित करती होगी। उनका कहना है कि हवा हमें चाहे स्थिर भी दीखे, पर उसके परमाणु प्रचण्ड गति के साथ चारों तरफ उड़ते रहते हैं, और शायद रेडियम में वह शक्ति रखी गई हो कि हवा के जो परमाणु उससे टक्कर खावें, वह उनकी शक्ति खिंचकर और उस शक्ति को प्रकाश और ताप में परिणत कर अपने द्वारा प्रकाशित करे। वास्तव में उक्त कथन दीखने में अच्छा मालूम होता है, पर प्रयोगों ने इस कथन को असत्य साबित किया। इस कथन की सत्यता जाचने के लिये वैज्ञानिकों ने किसी खास क्रिया से हवा का दबाव बढ़ाना शुरू किया और उसके उष्णतामान में परिवर्तन कर यह देखना चाहा कि हवा के बढ़े हुए दबाव की तथा उष्णतामान के परिवर्तन का प्रभाव रेडियम से निकलने वाली उष्णता और प्रकाश पर पड़ता है या नहीं। क्योंकि अगर वायु के तत्त्वों से शक्ति ग्रहण कर उसे रेडियम अपने द्वारा प्रकाशित करती होती तो इस समय बढ़े हुए हवा के कृत्रिम दबाव के कारण रेडियम कुछ अधिक गर्मी और प्रकाश निकालती। पर ऐसा नहीं हुआ। उनका कार्य्य पहलेसाही चलता रहा। इससे यह अनुमान निकाला गया कि रेडियम वायु आदि बाह्य पदार्थों से शक्ति ग्रहण नहीं करती, पर यह शक्ति,उसीके अन्दर मोजूद है। जैसे कोई प्रतिभाशाली मनुष्य कहीं दूसरी जगह से प्रतिभाशक्ति को ग्रहण नहीं करता, यह उसके अन्दर स्वयही मौजूद रहती है। उसी प्रकार रेडियम से अन्दर भी उस शक्ति का खजाना भरा हुआ है, जो इससे निकला करती है।

क्या परमाणु शक्ति के खजाने हैं

हम पहले कह चुके हैं कि रेडियम के आविष्कार से परमाणवाद में अद्भुत् परिवर्तन हो गया है। इसके सिवा और भी अनेक बातें मालूम हुई हैं। क्या कहें वैज्ञानिक संसार में इस धातु के आविष्कार से बडाही अलौकिक और अपूर्व प्रकाश पडा है, जिसके सहारे से वैज्ञानिक सृष्टि के अनेक गूढाति गूढ रहस्य जानने में समर्थ हुए हैं। इस बात का थोडा सा विवेचन भी अपने प्रिय पाठकों के मनोरञ्जन के लिये यहां किये देते हैं। हम ऊपर बतला चुके हैं कि सृष्टि में परमाणुही सब से सूक्ष्म पदार्थ नहीं हैं। रेडियम के आविष्कारके बाद वैज्ञानिकों ने यह मालूम कर लिया है कि परमाणु भी इलेक्ट्रान नाम के अतिपरमाणुओं के संयोग से बने हुए हैं। पहले परमाणु को वैज्ञानिक लोग अविभाज्य मानते थे, पर अब ये सिद्धान्त गलत साबित हो गया। अब तो प्रयोगो के द्वारा परमाणु तोडे जाकर इलेक्ट्रान में विभक्त किये जासकते हैं। इन परमाणुओं का सङ्गठन प्रबल शक्तियों की किसी खास क्रिया द्वारा हुआ है। और ये शक्तियां (forces) सब परमाणुओं में मौजूद रहती हैं। इन परमाणुओं का वजन भी वैज्ञानिक निकाल सकता है और यह वजन ठीक ठीक तरह निकलता है। इसके सिवा अब तक सृष्टि की जितनी शक्तियों का पता चला था, उन सब से परमाणु में भरी हुई शक्ति का परिमाण बहुत ही अधिक है। परमाणु रेती के कण से भी छोटा होता है, पर उसमें जो शक्तियां भरी हुई रहती हैं, व सारा विश्व की शक्ति से कहीं अधिक है। जितनी शक्तियां अभी तक हमें मालूम हुई हैं, उन सब शक्तियों को अगर मिलाई जायें तो उन

सब मिली हुई शक्तियो से भी इस परमाणु के अन्दर रही हुई शक्ति अधिक निकलेगी। पर दुख है कि इस शक्ति के उपयोग करने की कुजी अभी वैज्ञानिको के हाथ में नही आयी है। जिस दिन इस शक्ति के उपयोग करने की कुजी वैज्ञानिकों को मिल जायगी, उस दिन ससार की कैसी सुख-मय और आनन्दपूर्ण दशा हो जायगी, इसकी कल्पना लगाना भी साधारण मस्तिश्क का काम नहीं। आज कोयला, गैस वायु, जलप्रपात आदि की शक्तियो से जो काम हो रहा है, वह सब इन परमाणुओं के अन्दर रही हुई शक्ति से होने लगेगा हमारी मोटरगाडिया परमाणुओं की शक्ति से दोडने लगेंगी। आकाशविमान भी इसी शक्ति से चलने लगेंगे–रेलवे गाडिया भी इसी से चलने लगेंगी। कारखाने भी इसी की शक्ति से अपना काम करने लगेंगे। मतलब यह कि दुनिया के सब काम इसी शक्ति के सहारे से होने लगगे। आज कामों के लिये तरह तरह के जो खटराग करने पडते है, फिर वे नहीं करना पडेगे आज कही कोयलो की कमी की, कहीं जलप्रपात के कमी की, कहीं किस वात की कमी का, जो शिकायतें सुनी जारही है, फिर वे नही सुनी जायँगी। उस वक्त हमारी मुट्ठी मे सचमुच वह प्रचण्ड शक्ति आजायगी कि जिसका कुछ पार नहीं। इलेक्ट्रान् नामके अति परमाणुओं के परमाणु की जो रचना हुई है, उसमें बडी ही अद्भुत कारीगरी और कर्त्ता का कौशल्य दीपता है। वैज्ञानिको ने अनुमान लगाया है कि इलेक्ट्रान और इलेक्ट्रान से बनी हुई परमाणु रुपी इमारत में इतना फर्क है, जितना विलायत के सेन्टपाल कथड्रेल नामक गिर्जे में और पूर्णविराम के एक छोटे से बिन्दु में होता है। दूसरे शब्दो में यों कह लीजिये कि एक बडी भारी

सुविशाल इमारत में और एक सूक्ष्म विन्दु में जितना अन्तर है, उतनाही परमाणु और इलेक्ट्रान में है। इसके सिवा परमाणु यह एक घूमती फिरती इमारत (dynomic building) है। यह इमारत जिन सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्वों से-इलेक्ट्रान से-बनी है वे एक जगह कायम न रहकर आश्चर्यकारक शीघ्रगति से सतत उसमें घूमते रहते हैं।

पाठक कितने आश्चर्य की बात है? जरा सोचिये, अगर आप आस्तिक हैं तो विश्वेश्वर की लीला को देखिये अगर आपका ईश्वर पर विश्वास नहीं है तो प्रकृति-माता के अद्भुत और आश्चर्यकारक रहस्यों का अवलोकन कीजिये, कितना चमत्कार है। पहले तो परमाणु ही इतना सूक्ष्म है कि सर्वोत्कृष्ट शक्तिशाली यन्त्रों से भी हम उसे नहीं देख सकते और फिर इन परमाणु का मूल अति परमाणु का विचार कर आत्मा परम आश्चर्य सागर में गोते लगाती हुई दङ्ग हो जाती है। लार्ड केलव्हिन ने अनुमान लगाया है कि अगर हमारे पास इतना शक्तिशाली यन्त्र हो, जिसके द्वारा एक जलका बून्द पृथ्वी जितना बडा दीख पडे तो उस हालत में इस जलके बून्द के परमाणु गेंद या बन्दूक की गोली से दीख पडेंगे अर्थात् जलके छोटे से विन्दु को पृथ्वी मानली जावे तो इसके परमाणुओं को आकार में गेंद या बन्दूक की गोली के समान मानना होगा। पाठक जरा स्थिर चित्त होकर विचार कीजिये और सोचिये कि परमाणु कितना सूक्ष्म पदार्थ है। लार्ड केलव्हिन और इनके पहले के वैज्ञानिकों ने इसी पदार्थ को सब से अधिक सूक्ष्म माना था और कहा था कि विश्व में इससे विशेष सूक्ष्म पदार्थ कोई नहीं है। पर इस विज्ञान-मयी बीसवीं सदी ने हमें और भी नया प्रकाश बतलाया। इस सदी

में हमें यह मालूम हुआ कि परमाणु ही अन्तिम पदार्थ (Ultimates) नहीं है। इनसे भी अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व है। उन तत्त्वों के मिश्रण से परमाणुओं की सङ्गठना हुई है। परमाणुओं और इन अन्तिम तत्त्वों में पहाड और राई सा फर्क है॥

अध्याय सातवां

आधुनिक भूपृष्ठ-शास्त्र

अंग्रेजी में जिसे (Geology) कहते है उसके लिये हिन्दी भाषा में प्राय 'भूगर्भ-शास्त्र' शब्द का प्रयोग किया जाता है। परन्तु हमारे इस लेख का सम्बन्ध केवल भूपृष्ठ (Crust) से है, और यह शास्त्र आधुनिक काल ही में प्रादुर्भूत हुआ है। इसीलिये हमने इस का शीर्षक 'आधुनिक भूपृष्ठ शास्त्र' रखा है।

हमारा यह लेख उन सब वैज्ञानिकों के परिश्रम का फल है कि जिन्होंने इस पृथ्वी के अनेक भागों में स्वय अनुसन्धान कर ससार के सन्मुख उसके ज्ञान को प्रकट किया है। लगभग सौ सवासौ वर्ष के अन्दर वैज्ञानिकों ने इस विषय में जो अनुसन्धान किये है वे सब इस ससार के सभ्य राष्ट्रों की अनेक भाषाओं में प्रकाशित होचुके है। भूपृष्ठ शास्त्र का वैज्ञानिक साहित्य इतनी प्रचुरता से भर गया है कि वह सब केवल एक ही व्यक्ति देखना चाहे तो नहीं देख सकता। लण्डन की 'भूपृष्ठ शास्त्र समिति (The Geological Society of London) प्रति वर्ष इस विषय पर प्रकाशित होने वाली पुस्तकों की एक सूची निकालती है। उसके देखने से ज्ञात होता है कि सन् १६११ में लगभग ५८२ मासिक पत्रों में इसके सम्बन्ध के नये २

आविष्कारो का जिक्र आया है, और इस विषय की २५०० नूतन पुस्तकें समिति के पुस्तकालय में आई हैं। इस प्रचण्ड ग्रन्थ समूह को सर्वांश में अवलोकन कर नूतन ज्ञान सम्पादन करना किसी एक वैज्ञानिक के लिये असम्भव है और ऐसा करना ठीक भी नहीं है। इस सूचीपत्र से प्रत्येक मनुष्य इस विषय की उस शाखा के ग्रन्थों का पता लगा सकता है जिनकी उसे आवश्यकता हो। इस शास्त्र की कौन सी शाखाओं में कौन कौन से आविष्कार हुए हैं इस बात का पता भी उस सूची से लग सकता है। इस श्रम विभाग की पद्धति से प्रत्येक शाखा के वैज्ञानिक अपनी अपनी शाखा में आशातीत उन्नति करलेते हैं और इसी कारण से वहां पर विज्ञान की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होती जाती है। तो भी सर्वसाधारण बहुजन समाज को वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों से भय सा लगता है और इसी कारण उनका ध्यान इस ओर बहुत कम आकर्षित होता है। और इसी कारण से भारतीय वैज्ञानिक इस विषय पर भारतीय भाषाओं में बहुत कम लिखते और बोलते हैं।

यह एक सन्तोष की बात है कि शनैः २ यह अवस्था बदलती जा रही है और योग्य लेखकगण इस विषय पर लिखने लगे हैं। यह भी भावी उन्नति के शुभ चिन्ह हैं। क्योंकि लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक को भी "Arctic home in the Vedas" नामक सर्वमान्य ग्रन्थ लिखते समय भूपृष्ठ-शास्त्र का थोडा बहुत परिचय अवश्यही प्राप्त करना पडा था। तदनुसार राव बहादुर चिंतामणराव वैद्य तथा राव बहादुर सरदार माधवराव किबे को भी 'रावण की लंका कौनसी थी' इसका निर्णय करने के लिये भूपृष्ठ शास्त्र का अध्ययन करना

पडा था। साराश यह है कि मानवीय-इतिहास तथा उसकी उन्नति का हाल जानने के लिये भूपृष्ठ-शास्त्र का अध्ययन एक अनिवार्य्य बात होगई है। परन्तु हम यहा एक बात का उल्लेख करदेना आवश्यक समझते हैं कि जिस प्रकार भूपृष्ठ-शास्त्र के केवल अनुमान पढलेने से कभी कभी लाभ होने की सम्भावना है वैसेही केवल ऊपरी ऊपरी ज्ञान सम्पादन करलेने मात्र से कभी २ पूने के सुप्रसिद्ध लेखक नानासाहेब पावगी के समान असम्बद्ध सिद्धान्तों का स्थापित होजाना भी सम्भव है।

जिस प्रकार भूपृष्ठ शास्त्र का विस्तार महान् है और उसकी उपयुक्तता भी महान् है वैसेही उसका ठीक ज्ञान सम्पादन करलेना भी एक कठिन पहेली है। अतएव जहा तक हो सकेगा वहा तक सुबोध भाषा में इस शास्त्र के विषय में कुछ उपयुक्त बातो का सग्रह पाठकों के सन्मुख पेश करने का प्रयत्न करूंगा।

यदि मि० पावगी के लेखानुसार यह बात मानलें कि वेद कालीन ऋषियो को भूपृष्ठ शास्त्र का पूर्ण ज्ञान था, तो भी आधुनिक इतिहास की दृष्टि से तो यह प्रतीत होता है कि पाश्चिमात्य राष्ट्रों में 'Geology' शब्द का प्रचार सन् १७७८ में जिनोव्हा नगर में प्रथम ही प्रथम धल्युक नामक व्यक्ति ने किया था। यद्यपि आधुनिक वैज्ञानिकों के पूर्व कितने ही तत्त्ववेत्ताओं ने सृष्टिउत्पत्ति के विषय में अनेक तर्कवितर्क कर रक्खे थे एव आर्थिकभूपृष्ठ शास्त्र (Economic geology) से अर्थात् खनिज पदार्थो को खोदकर निकालने में अनेक मनुष्यो ने प्रत्यक्ष रूप से कार्य्य किया था, तथापि वैज्ञानिक दृष्टि से भूपृष्ठ-शास्त्र से उनका कहातक परिचय था, इस बात जानने के लिये हमारे पास कोई भी साधन नहीं है।

सुप्रसिद्ध इटालियन इञ्जीनिअर 'लिओनार्डो डाविंची' को यह विदित हो गया था कि पत्थर की चट्टानों में समुद्र के शङ्ख रहते हैं और उसको यह भी अनुभव हो गया था कि इन शङ्ख सीप आदि वस्तुओं के जरिये से पृथ्वी के अनेक तहों का इतिहास जानने में बहुत ही सहायता मिल सकती है।

पृथ्वी के पृष्ठ पर सर्वदा अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। कभी तो समुद्र का जल स्थल भाग के बहुत बडे हिस्से में फैल जाता है, और कभी २ द्वीप के द्वीप समुद्र जल में से ऊपर निकल आते हैं और समुद्र के गर्भ में हजारों वर्षों तक पडा हुआ भूमि भाग ऊपर आने लगता है, भूकम्प के कारण बडे बडे पहाड़ दो भागो में विभक्त हो जाते हैं। कभी ज्वालामुखी का स्फोट होकर प्रलय होता है तो कभी सब दूर बर्फ ही बर्फ होजाता है इत्यादि घटनाओं को प्राचीन मनुष्यों ने अवलोकन तो अवश्यही की होंगी परन्तु इन घटनाओं का सम्बन्ध पृथ्वी के गर्भ से है या नही ? अथवा इनका सम्बन्ध केवल भूपृष्ठ से ही है, इत्यादि बातो की ओर उनका ध्यान आकर्षित कदापि भी नहीं हुआ था (There were indeed many speculations regarding change in the earth's crust but no scientific study nor any scientific conclusions were possible in these days)

अध्याय आठवां

सृष्टि के इतिहास विषयक प्राचीन विचार

आधुनिक दृष्टि से भूपृष्ठ-विद्या में सृष्टि की रचना, Structure) उसकी उत्पत्ति, भूपृष्ठ पर अनेक समयो में होने वाले परिवर्तन, और अनेक जीव जन्तुओं की उत्पत्ति, स्थिति

और लय आदि विपयो का मुख्य कर समावेश होता है और इनही विपयो पर इस शास्त्र में मुख्यता से विचार किया गया है। हमारी इस पृथ्वी पर जो एक जाडा तट (crust) है जिस तट को पृथ्वी ने कवच रूप से धारण कर रखा है उसके चट्टानों, खनिज पदार्थों और अश्मीभूतो (fossils) में पृथ्वी का सारा का सारा इतिहास लिखा हुआ पडा है। उसका वैज्ञानिक रीति से अभ्यास किये बिना सृष्टि-उत्पत्ति की कठिन पहेली कदापि भी हल न हो सकेगी।

वैज्ञानिक दृष्टि से भूपृष्ठ शास्त्र का जन्म अठारहवीं शताब्दि के पिछले भाग में हुआ। अन्य शास्त्रों के अनुसार इस शास्त्र में भी अनेक शताब्दियो से धीरे २ ज्ञान की वृद्धि होती आई है। कभी कभी इमारतें आदि बाधने के लिये जो खड्डे खोदे जाते थे, उनमें प्राचीन काल के प्रचण्ड जन्तुओं की हड्डिया और ठठरिया मिलने के कारण जन समाज में सहज ही राक्षसो की कल्पना रूढ होगई होगी, और उसी समय लोगो का खयाल होने लगा होगा कि ये हड्डिया महान् देहधारी मनुष्यो की होंगी।

ग्रीक व रोमन तत्ववेत्ताओ को यह बात अवश्यही मालूम थी कि पृथ्वी के तहो म अध क्षेप (Depression) और उत्क्षेप होता है, और ईसा के ५०० वर्प पूर्व पिथागोरस ने भी इस विपय की ओर मनुप्यो का ध्यान आकर्पित किया था। इसी प्रकार झेनोफेनस और हिरोडोटस तत्ववेत्ताओं को यह बात विदित होगई थी कि बडी बडी मच्छियो और सीपो के अश्मीभूत एव अवशेप पर्वतो के ऊचे २ हिस्सो पर मिलते है। परन्तु उनकी कल्पना इन अश्मीभूतो (fossils) के विपय में इतनी ही थी कि ये वस्तुए कोई ईश्वरीय चमत्कार हैं। हमारे

भारत में भी हिमालय पहाड में से बहती हुई सालिगराम की मूर्तियां गण्डकी नदी में पाई जाती हैं, और लोग उन्हें विष्णु के चक्र समझते हैं, परन्तु ये सब प्राचीन काल के प्राणियों की अस्थियां (fossils) हैं, यह बात अब पूर्ण रूप से सिद्ध हो चुकी है।

जिस समय रोमन लोगों को इङ्गलैंड में राज्य करते समय सोना, लोहा, झिंक और पत्थर का कोयला इत्यादि धातुओं का पता ही लगा था, पर हिन्दुस्तान के लोगों को तो प्राचीन काल में सोना, हीरा, माणिक, और लोहा आदि धातुओं का पूर्ण ज्ञान था। इतनाही नहीं प्रत्युत आर्य्यावर्त धातु गलाने के काम में संसार के सब राष्ट्रों से अधिक बढ़ा चढ़ा था परन्तु उस समय भी वैज्ञानिक दृष्टि से इस शास्त्र का अभ्यास करने के लिये अन्य वैज्ञानिक सामग्री के न होने से इस शास्त्र की पूर्ण उन्नति न हो पाई। उस समय भूपृष्ठ-शास्त्र के विषय में मनुष्यों की कल्पनायें इतनी विलक्षण थीं कि अनेक शताब्दियों तक यूरोप के वैज्ञानिकों में इस विषय पर बड़ा तीव्र मतभेद रहा। कोई कहता था कि पृथ्वी का बाह्य कवच लाव्हा' नामक तप्त रस से उत्पन्न हुआ है, और कोई कहता था कि नहीं, वह केवल जल से उत्पन्न हुआ है। अस्तु। यद्यपि यह विषय बड़ा मनोरञ्जक है तथापि यहांपर देने से वह अनुपयुक्त होगा। इसलिये अब हम अपने मुख्य विषय की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं।

सृष्टि उत्पत्ति

यदि वास्तविक रीति से देखा जाय तो सृष्टि उत्पत्ति के

करना चाहिये। ज्योतिष-शास्त्र के विद्वानों की ओर से आजतक अनेक विचार (theory) स्थापित किये गये हैं। आधुनिक समय में तेजोमेघविचार (Nebular hypothesis) को ही सर्वोच्च पद दिया जाता है। केन्ट और लाप्लास के मतानुसार किसी समय यह सारा विश्व तप्त वायुरूप में था। उस समय यह वायुरूप विश्व अपने ही चहुं ओर चक्री के समान फिरता था, और इसी गति के कारण वह मध्य भाग में शनै शनै घनरूप होने लगा। उसी समय बाहिरी हिस्से का बन्धन टूट जाने के कारण उसमें से अनेक ज्योतिर्गोल बन गये। इसी प्रकार उन ज्योतिर्गोलों का भी बाह्य बन्धन (ring) टूट जाने से उसके चन्द्र बने। ये गोले जैसे जैसे ठण्ढे होते चले, वैसे वैसे वे प्रथम पिघलते गये (became first-molten) और पश्चात् कठिन घनरूप हो गये। उनका बाह्य तह (crust) तो ठण्डा हो गया और अन्दर का गर्भ उष्णावस्था में ही रहा। इस प्रकार से अन्तरिक्ष में अनेक भूगोलों की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार का आधुनिक ज्योतिषियों का मत है।

सृष्टि की उत्पत्ति चाहे किसी भी प्रकार से क्यों न हुई हो, परन्तु भूगर्भ के वैज्ञानिक को तो इतनी ही बात पर्याप्त है कि भूपृष्ठ तो ठण्ढा है और पृथ्वी का भीतरी भाग तप्त रस के रूप में है। इन्हीं बातों को सन्मुख रख कर उसको पृथ्वी के पृष्ठ पर होने वाले अनेक परिवर्तन और घटनाओं के विषय में पूर्णरूप से उत्तर दिया जाता है।

भूपृष्ठ से भूमध्य (centre of the earth) लगभग ४००० चार हजार मील के अन्तर पर है। संसार की बड़ी बड़ी खदानें अधिक से अधिक केवल ५००० पांच हजार फुट भूमि के अन्दर गहरी खोदी गई हैं वे bore-holes इससे

भी है कि जो प्राथमिक चट्टानो से निकले हुए है अर्थात् जो, स्फटिक मय-काच-मय या जिनमें दोनों मिले हुए हों। ये चट्टानें पिघले हुए पदार्थ से बनी हुई होने के कारण इनमें नैसर्गिक कांच अथवा स्फटिक ही बनता है, इस बात को हमारे पाठक गण अवश्य ही समझ गये होंगे।

कभी २ दुय्यम प्रति की चट्टानों में से प्राथमिक अवस्था की चट्टानो के टुकडे भी मिलजाने हैं। और कभी कभी ये चट्टानें केवल प्राणियों या वनस्पत्तियों के शेष बचे भाग से बनती हैं। उसी प्रकार कभी २ समुद्र की तह में कोई विशेष रासायनिक क्रिया होकर एक निरालेही प्रकार की चट्टानें बन जाती हैं। इन विशिष्ट तहो के अन्दर मुख्यता से तीन प्रकार की चट्टानें मिलती है उनके नाम ये है। (१) अनेक प्रकार के टुकडों से उत्पन्न होने वाली भग्नाश्मजन्य (cl.-tic), (२) प्राणियो की अस्थियो से उत्पन्न होने वाली प्राणिजन्य (organic) और (3) रासायनिक (chemically formed rocks)

प्राथमिक चट्टानें तप्तावस्था में उत्पन्न होने के कारण उनमें प्राणियों का शेष भाग मिलही नही सकता क्योंकि पृथ्वी की तप्तावस्था में प्राणियों तथा वनस्पत्तियो का शेष भाग मिलही नहीं सकता, क्योंकि पृथ्वी की तप्तावस्था में प्राणियों तथा वनस्पतियो की उत्पत्ति हुई होगी, यह बात असम्भव है। अतएव प्राथमिक चट्टानें प्राणावशेष रहित है, और दुय्यम प्रति की चट्टानो में ये ठठरिया (fossils) मिलने के कारण उनको प्राणावशेष सहित चट्टानें कहने की चाल पड गई है।

चट्टानें अनेक प्रकार की होती है, उन सब का यहां पर " करना इष्ट नहीं है, परन्तु उनमें से दो तीन प्रकार की

चट्टानो का नाम दिया जाता है [Sand stone कुरुद, (lime-stone) चूने का पत्थर और clay मृत्तिकामय] कभी २ अधिक उष्णता या दबाव से प्राथमिक चट्टानें तथा विशिष्ट प्रकार की तहवाली चट्टानें भी मूलरूप में परिवर्तित होजाती हैं। जैसे कि चूनेवाले पत्थर से सगमरमर का (marble from lime-stones) पत्थर बन जाता है। अच्छा अब हमें यह देखना चाहिये कि भूपृष्ठ पर उष्णता,वायु और वर्षा के कारण कौन २ से फेरबदल या परिवर्तन हो जाते हैं। इस विषय को भूपृष्ठ-शास्त्र में भौतिक भूपृष्ठ शास्त्र(Physical geology) कहते हैं॥

भौतिक भूपृष्ठ-शास्त्र

Physical Geology

सब दिन की धूप में गरम होजाने के कारण चट्टानो में वृद्धिहोती है, अर्थात् उनके परमाणु विस्तलित होने के कारण वे मूल स्वरूप से कुछ बढजाती हैं और रात्रि की सर्दी पाकर उनका कुछ सकोच होता है। इन दोनो का अर्थात् उष्णता और सर्दी का उनपर यह परिणाम होता है कि उनके परमाणु अलग अलग होते जाते हैं, और जब उनके ऊपर वर्षा का जल गिरता है तब वे बारीक बारीक कण अपने मूल स्थान से पृथक होकर पानी की धार जिधर उन्हें ले जावे, उधरही वे बहते हुए चले जाते हैं। इसी तरह कभी २ पृथ्वी के गर्भ में अथवा भूपृष्ठ के कुछ ही नीचे कुछ परिवर्तन होने के कारण कडरों की बडी २ चट्टानें टूट कर गिर पडती हैं। जब ये टूटी हुई चट्टानें वायु और पानी के तडाके में फसती हैं। तब वे अपने स्थान से च्युत हो जाती हैं। इसी प्रकार जब इन चट्टानो के छिद्रों में पानी गिरकर रुक जाता है, तब उसकी वृद्धि होने लगती

सृष्टि उत्पत्ति के विषय में एक अपूर्व रीति का अनुसरण करते हे। कोई कहते हैं कि सृष्टि को उत्पन्न हुए ३०,००,००० तीस लाख वर्ष व्यतीत हो चुके, और कोई कहते हैं कि ८०,००,००,००० अस्सी करोड वर्ष। इसके सिवाय एक ओर से यह कहा जाता है कि सृष्टि को पेदा हुए १,३२,००,००,००० एक अरब बत्तीस करोड वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। सृष्टि की उत्पत्ति का समय निरूपण करना, जैसा कि कहा जाता है उतना सहल नहीं है। वैज्ञानिकों और गणितज्ञों के निकाले हुए अनुमान इतने भिन्न २ और विलक्षण हैं कि वे देखकर स्वयम् उनको ही आश्चर्य करना पडता है, और इसीलिये भूपृष्ठ शास्त्र का ज्ञाता सृष्टि उत्पत्ति का समय वर्षों से निकालने के झगडे में पडता ही नहीं है। सृष्टि को उत्पन्न हुए इतने वर्ष व्यतीत हुए, ऐसा न कहते वह वैज्ञानिक ऐसा कहता है कि पृथ्वी के इतिहास में अमुक अमुक ' युग ' होगये हैं।

अब हमें यह देखना है कि इन युगो को किस प्रकार से निश्चित किया गया है। यदि वास्तविक रीति से देखा जाय तो पृथ्वी के इतिहास की सामग्री भूपृष्ठ के नीचे दबे हुए तहों में स्पष्ट रूप से लिखी हुई पडी है। उसको ठीक तरह से जानने के लिये अभी कुछ अधिक समय की आवश्यकता है। इसीलिये प्रथम उस सब सामग्री को एकत्रित की जाती है, और जब उस सामग्री की पूर्व परिमाण ठीक तरह से बैठ जाता है, तब इतिहास लिखना कोई कठिन बात नहीं है। प्राय तहों में के अश्मावशेषों fossils पर से उसकी वय जानी जाती है, क्योंकि किसी समय पृथ्वी पर सब जगह एक खास तरह के प्राणी थे, और आजकल पृथ्वी की जिन जिन चट्टानो में विशिष्ट प्रकार के fossils मिलते हैं, वे सब एक ही समय में उत्पन्न होना चाहिये।

फासिल्स के विशेष स्वरूप पर से सब विशिष्ट तहो की चट्टानो के मुख्य चार विभाग किये गये है। उन विभागों की और भी शाखा प्रशाखाए की गई हैं, और इस समय यह बात निश्चित रूप से मानी जाती है कि इन मुख्य विभागो की रचना किसी खास एकही समय में हुई है।

इस प्रकार से पृथ्वी के तमाम तहो का वर्गीकरण किया गया है।

पृष्ठवशी प्राणियो (Vertebrate) का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है। मच्छिया मेण्डक, सुसरी और स्तनपान करने वाले प्राणी उपरोक्त विभाग मे प्रविष्ट किये गये हैं। बहुत ही प्राचीन समय में अर्थात् सत्ययुग में प्रथम ही प्रथम मच्छियो का होना दृष्टि आया है, और इसके पश्चात् वाले युग में उनकी बडी तेजी से उन्नति होना स्पष्ट रीति से पाया जाता है। इनके बाद (Carboniferous) युग में मेण्डक जाति के प्राणी मिलने लगे। इसी समय वनस्पति की उन्नति भी पूर्ण रूप से हो चुकी थी, और इसीलिये भूपृष्ठ पर रहने वाले प्राणियो को यथेच्छ खाद्य द्रव्य मिलने लगा था तथा उनके निवास के लिये पर्याप्त स्थान तैयार हो लिया था। अतएव इस युग में उन प्राणियो की प्रचुरता से उन्नति होना एक स्वाभाविक बात थी।

प्रथम युग में सर्प, सुसरी आदि उरोगामी प्राणियो की उत्पत्ति हुई। इन प्राणियो की अस्थिया इतनी बडी है कि उन को देखकर आश्चर्य होता है, और उन अस्थियो के सन्मुख मनुष्य एक क्षुद्र कीट समान दृष्टि आता है। इस युग

में एक (Gigantosaurus) नामक प्राणी का पता लगा है। उसके जङ्घा की अस्थि २० फुट ऊँची हे [ये अस्थि पूर्व आफ्रिका में मिली थी]।

इस के पश्चात् वाले युग में का 'इग्वानोडोन्' नामक एक १५ फुट ऊँचे उरोगामी प्राणी की ठठरी मिली है। इस के बाद पक्षियों की उत्पत्ति हुई। बव्हेरिया में एक किस्म का ऐसा प्राणी मिला है कि जिसकी उत्पत्ति पक्षी और उरोगामी प्राणियों के मध्य काल में हुई है। इस प्रकार प्राणियों की उन्नति होते २ हम स्तनपान करने वाले प्राणियो के युग में आते हैं।

दूसरे युग के अन्त में ज्वालामुखी पर्वतों में भयङ्कर स्फोट हुए, और इसी समय भू-मध्य समुद्र की उत्पत्ति हुई। आल्प्स काकेशस, हिमालय आदि पर्वतो की उत्पत्ति हुई और उत्तर अमेरिका, दक्षिण अमेरिका, आफ्रिका और हिन्दुस्तान आदि महाद्वीपो पर पिघले हुए 'लाव्हा' रस के तह के तह जम गये। पृथ्वी के जिस हिस्से पर हम वर्तमान समय में रहते हैं, वह हिस्सा इसी समय उत्पन्न हुआ, ऐसा दृढ अनुमान है।

उपरोक्त विषय को यहीं छोड़कर हम मानवी उत्पत्ति के इतिहास की ओर दृष्टि देते हैं, क्योंकि यह भाग भूपृष्ठ शास्त्र में बडा मनोरञ्जक तथा महत्व का है। इस विषय में ऐतिहासिक सामग्री का मिलना इतना कठिन और दुस्तर हो रहा है कि मानवी उत्पत्ति के विषय पर निश्चयात्मक रूप से कुछ भी नहीं कह सकते। मनुष्यो की अस्थियां इतनी क्षणभंगुर और पोची हैं कि भूमि में गाडने के कुछ ही दिन बाद बिलकुल मिट्टी में मिल जाती हैं। लगभग बीस पच्चीस वर्ष से मनुष्यों की ठठरियां (fossils) खोजने में वैज्ञानिकगण बडा अन्वेषण

कर रहे हैं और उनके भाग्य से किसी २ जगह मनुष्य के कपाल की खोपरिया और पसली की कुछ खास हड्डिया मिली हैं। ये प्राचीन मनुष्यो के शेष चिन्ह जावा द्वीप, हायडलवर्ग के समीपवर्ती मावर जात्र की जालू में, व ड्युस्सलडोफ के समीप नियाएडर्टाल Neanderthal में तथा दक्षिणी आफ्रिका में मिले हैं। इन सब में से बहुत ही पुरानी खोपडी सन् १९०७ में हायडलवर्ग में मिली थी। खोपडी वर्तमान समय की मनुष्य खोपडी से इतनी भिन्न व विलक्षण है कि उसका नाम 'हायडलवर्ग का एक खास मनुष्य' रक्खा गया है। उसका जबडा तो बडा है परन्तु दन्तपक्ति बहुत ही बारीक है। बहुत से वैज्ञानिकों का कथन है कि जावा द्वीप में मिली हुई वानर-मनुष्य Monkey-man जाति की खोपरी और हायडलवर्ग में निकली खोपरी में बहुत कुछ साम्य है और सम्भव है कि वे दोनो किसी खास एक ही युग की हो। अनेक वैज्ञानिक इस बात को निश्चय रूप से मानते हैं कि हायडलवर्ग की खोपरी अवश्यही मानवखोपरी है। आज तक मनुष्य की अस्थिया Pleistocene के उस ओर मिली हो ऐसा पता नही है। इसके सिवाय यह बात भी सिद्ध हो चुकी है कि उस समय के मनुष्यों में वाक्शक्ति भी नहीं थी।

इस के बाद जैसे जैसे अधिक उन्नति होती गई वैसे वैसे इन मनुष्यो को पत्थर के हथियारो की आवश्यकता हुई होगी, और इसके पश्चात् लोहे के हथियारों की, क्योंकि गुहाओं में तथा नदियो की दरी में इस प्रकार के मानवीय हथियार अब तक मिलते हैं।

इस विषय में अभी हमारा ज्ञान बहुत ही कोना है। ज्यों ज्यो अधिक साधन उपलब्ध होते जायेंगे, त्यो त्यो मानवइतिहस के सच्चे रहस्य प्रकाश में आते जावेंगे॥

८

जब पूर्ण विचार के पश्चात् न्यूटन यह जान सका कि हमारा सूर्यमण्डल भी इसी नियम से बद्ध है तब वह कुछ आगे बढ़ा और उसने यह सिद्धान्त प्रस्थापित किया कि संसार का हर एक पदार्थ एक दूसरे को आकर्षण कर रहा है। न्यूटन को इस बात के मानने के लिये केवल एकही कारण के अतिरिक्त अन्य कुछ भी आधार न था, और वह कारण यही था कि उसका जगत की ऐक्यता पर पूर्ण विश्वास था।

न्यूटन के पश्चात् अनेक वर्षों बाद यह गुरुत्वाकर्षण का नियम पूर्णरूपेण प्रस्थापित हो गया। आगस्ट कान्ट ने तो यहा तक कह दिया था कि लाखों माइल दूर स्थित तारों पर इस गुरुत्वाकर्षण का परिणाम होता है इस बात को जानने के लिये किसी साधन का मिलना अतीव दुष्कर है। परन्तु वर्तमान में इसकी साक्ष पूर्ण रूप से मिल गई है। इतनाही नहीं ज्योतिष-शास्त्र के विद्वानों ने उसके द्वारा एक प्रकाशमान तारे की गति में होनेवाले फेरफार पर से एक नूतन और अदृश्य काले तारे का भी पता लगा लिया है।

उदाहरण के लिये हम 'अलगोल' तारे को ही लेते हैं। अलगोल शब्द अरबी का है, और उस भाषा में इस का अर्थ 'राक्षस' होता है। इस तारे की आकृति ही ऐसी कुछ विचित्र है कि उस पर से अरबी वालो ने उसका ऐसा नाम रख दिया है। 'स्पेक्ट्रास्कोप' (आलोक विश्लेषण यन्त्र) की सहायता से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि इसके आसपास हमारे सूर्य के समान एक दूसरा कृष्णतारा घूमा करता है और इस अलगोल तारे में ठीक दो दिन बीस घण्टे, और पैंतालीस मिनिट पर ग्रहण लगता रहता है। अलगोल तारे की मध्य रेषा ११२०००० मील अर्थात् हमारे सूर्य से कोई तिगुनी है। और

उसके उपग्रह की मध्यरेषा कोई ८४०००० मील अर्थात् हामरे सूर्य के बराबर की है। यह तारा किसी के भी दृष्टि में नही आता है, परन्तु हजारों मैल दूर होते हुए भी गुरुत्वाकर्षण की सहायता से उसका आस्तीव सिद्ध हो चुका है।

इस बीसवीं शताब्दि में एक और नूतन आविष्कार हुआ है। यह बात तो सब कोई जानते ही होगे कि जिन तारों को हम स्थिर समझते है, उन सब म गति है, और वह गति भी नियमानुसार व्यवस्थित रूप से होती है। प्रत्येक तारे की गति भिन्न भिन्न है, परन्तु आम तौर पर देखा जावे तो इन तारों के एक दूसरे के विरुद्ध दिशा में गति करने वाले केवल दो सब है। गाटेनजन के जे० सी० केप्टन और ग्रीनविच के एडिङ्गटन साहब ने इन तारों के परस्पर एक दूसरे के विरुद्ध दिशा के प्रवाह का पता लगाया। यदि वे एक दूसरे से भिन्न दिशा में गति करते है तो यह सम्भव है कि उनकी आपस में टक्कर भी हो जावे, और इन टक्करों का परिणाम भी बड़ा महत्वदायक हो। इसके कारण तारों की स्थिति में बड़ा भारी परिवर्तन हो जाता है। जैसे नये तारों का उत्पन्न होना, उनके प्रकाश और गति म न्यूनाधिकता आ जाना, और उन का नाश हो जाना आदि। इसका विचार आगे किया जायगा, व अभी तो हमें केवल गुरुत्वाकर्षण का महत्व देखना है।

गणितज्ञ इन तारों की टक्करों का भविष्य कथन करते हैं, परन्तु गुरुत्वाकर्षण के कारण उन्हें भी समय समय पर अपने भविष्य कथनो में फेरबदल करना पडता है। जब कि बम्बई के समान शहरों में गाडियो की परस्पर टक्कर न होने पावे, इसके लिये अनेक प्रकार के नियम और प्रयत्न काम में लाये है, जातेपरन्तु तो भी टक्करें हो ही जाती है। जबकि इस

पृथ्वी पर गाडियो की यह दशा है, तो तारों की जबकि वे एक दूसरे को परस्पर आकर्षण कर रहे हैं, अधिक टक्करें होना चाहिये। इस प्रकार की तारों की टक्कर द्वारा अनेक तारों का उत्पन्न होना पाया गया इसी लिये गुरुत्वाकर्षण शक्ति को विशेष महत्व देना चाहिये, क्योंकि इसके द्वारा तारों की टक्करें अधिक प्रमाण में होना सम्भव है।

इस पर से हमको यह न समझ लेना चाहिये कि गुरुत्वाकर्षण के द्वारा ही हमें यह ज्ञान होता है कि एक तारा इस अनन्त विश्व का एक अवयव है। यदि हम प्रकाश और उष्णता के विषय में ठीक तरह से विचार करें तो हमें यह स्पष्ट बोध हो जावेगा कि गुरुत्वाकर्षण के ही समान प्रत्येक तारे में दृष्टिगत होनेवाले सर्वसाधारण नियम यहा पर भी दृष्टि आते है। कुछ थोडे ही वर्षों पूर्व ऐसा अनुसन्धान किया गया है कि एक 'रेडिएशन प्रेशर' नाम की शक्ति इस विश्व के तमाम पदार्थों पर अपना प्रभाव जमाये हुए है। वही शक्ति जगत् के भिन्न भिन्न पदार्थों को एक दूसरे से संयोजित करती है। संसार एक रूप है' इस बात को सिद्ध करने के लिये केवल उपरोक्त प्रमाण ही नहीं है, परन्तु इनके अतिरिक्त भी अनेक महत्वदायक प्रमाण प्रस्तुत हैं।

जब हम अपनी शक्यानुसार प्रत्येक पदार्थ का अन्तरङ्ग अन्वेषण कर चुके तो हमें 'परमाणु' नामक वस्तु का पता लगा। इसके सिवाय हमने यह भी जान लिया कि इस वस्तु के लगभग अस्सी प्रकार हैं और प्रत्येक के द्वारा कार्बन व हायड्रोजन के समान तत्त्वों का निर्माण हुआ है। इसके सिवाय इन परमाणुओं के भी अन्दर ग्रह-माला के समान 'इलेक्ट्रान्स' परमाणु निरन्तर भ्रमर करते रहते हैं।

अनुसन्धान के पश्चात् यह बात भी पायी गई है कि इन पदार्थों को तपाने से वे एक विशिष्ट प्रकार का प्रकाश भी देते हैं, यह प्रकाश उसी तत्त्व का रहता है। यदि इस प्रकार से हमें वह प्रकाश कहीं भी दृष्टि आवे, चाहे वह प्रकाश कितनी ही दूर से क्यों न आया हो परन्तु वह उस मूलतत्त्व का उसमें होना सिद्ध करता है। हर एक मूल तत्त्व से मिलनेवाला यह प्रकाश उसमें फिरनेवाले इलेक्ट्रान्स की संख्या व गति पर अवलम्बित है।

आप एक तार के टुकड़े की नोक पर कुछ नमक लगाकर उसे दिये की लौ पर रखिये, तो आप को उस में से एक पीत रङ्ग का प्रकाश उठता हुआ दिखाई देगा। यह प्रकाश नमक में के 'सोडियम' नामक तत्त्व का होता है। यदि हम सूर्य-प्रकाश का विश्लेषण करते हैं तो हमें इन्द्र धनुष में के सप्त रङ्ग उसमें मिलते हैं, और उसी के अन्तर्गत हमें सोडियम तत्त्व का प्रकाश भी दृष्टि आता है। अब हम इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाण क्या दे सकते हैं कि सूर्य पर सोडियम तत्त्व विद्यमान है?

इसी प्रकाश से हमको जो तत्त्व इस पृथ्वी पर ज्ञात हुए हैं, वही तत्त्व न्यूनाधिक प्रमाण में इस विश्व के अन्य ग्रहों में पाये गये। दृष्टान्त के लिये हम 'हेलियम' तत्त्व को ही लेते हैं। पहले पहल उसका अस्तित्व सूर्य पर होना ज्ञात हुआ, और उसके कुछ ही दिन पश्चात् वही तत्त्व इस पृथ्वी पर क्लीव्हाइट नामक धातु में मिला। इसके बाद यह बात भी सिद्ध हो चुकी कि यह तत्त्व 'रेडियम' धातु में भी है और रेडियम

का नाश होकर (रासायनिक दृष्टि से रूपान्तर होकर) हेलियम बन जाता है।

उपरोक्त वर्णित बातों में परस्पर विरोधी बातों का भी समावेश हो गया हो, ऐसा विदित होता है, परन्तु वास्तव में यह बात सत्य नहीं है। हम यह जानते हैं कि परमाणु के भी अति सूक्ष्म विभाग रहते हैं, और इसी लिये जिस तत्त्व के ये घटकावयव रहते हैं, तत्त्व को हम सर्वांश में यह नाम नहीं दे सकते। इस परमाणु के आन्तरिक हिस्से में हमारी सूर्य मालिका के ही समान एक ग्रहमाला निरन्तर भ्रमण करती रहती हैं, और हमारे इस सूर्य के समान ही उसमें भी मध्य वर्ती शक्ति है। आप उसमें किसी भी इलेक्ट्रान की परीक्षा कीजिये, तो आपको मालूम हो जावेगा कि उनके अन्दर किसी भी प्रकाश का भेद या वैधर्म्य नहीं है, सब एकही समान हैं।

अब इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाण क्या मिल सकता है? आज मिती तक अनेक मनुष्यो ने इस बात को कही होगी, और वे कहते भी हैं कि आजतक संसार की तमाम वस्तुओं में एक ही मूल तत्त्व का होना नही पाया गया है, इतना ही नही परन्तु एक की जगह हमको अस्सी तत्त्व मिलते हैं। इन तत्त्वों का परस्पर परिवर्तन भी नहीं हो सकेगा। लोहे को सोना बनाने की इच्छा रखने वाले कीमयागिर लोगों को मूर्ख समझ कर हम उनकी हँसी किया करते थे। हमारे सिद्धान्त हमको सत्य मालूम देते थे, परन्तु उनसे इस विश्व की एकता का कोई दृढ प्रमाण नही मिलता था, क्योंकि विश्व की एकता सिद्ध करने के लिये सब से जबरदस्त प्रमाण यह मिलना चाहिये था कि वह एकही तत्त्व का बना हुआ है।

वर्तमान समय में रेडियम धातु के आविष्कार ने इस बात को सिद्ध कर दी है कि उपरोक्त अस्सी तत्त्व एक ही तत्त्व से

बने हुए है और उस तत्त्व का नाम इलेक्ट्रान (विद्युत पर-माणु) है। यह तत्त्व सब जगह एकसा भरा है अनेक शताब्दियो के पदार्थ विद्या रसायन शास्त्र, तत्त्व ज्ञान आदि भौतिक विद्याए इसी तत्त्व का अन्वेषण कर रही थीं। इस तत्त्व के आविष्कार से हमको ससार की एकता का एक प्रत्यक्ष प्रमाण मिला है। यह तत्त्व जड नहीं है, प्रत्युत विद्युत्शक्ति का एक प्रकार है। हम लोग जड पदार्थों का पृथक्करण करते करते इस जडातीत तत्त्व तक आ पहुचे हैं, और इस प्रकार से मानवजाति ने इस ससार के मूल तत्त्व का शोध लगा लिया है क्या यह कुछ कम प्रगति है ?

हमारी प्रगति यहां तक आकर ही नही रह गई है, परन्तु हमने इस ससार के और भी दो विश्वव्यापी तत्त्वों का पता लगाया है। यद्यपि उनका वर्णन करना कठिन है, तथापि उनकी सत्यता में अणुमात्र सन्देह नही है। इन उपरोक्त प्रमाणों के द्वारा हम इस बातको कह सकते है कि 'सर्वमेक-किद जगत्' इन दो तत्त्वों के विषय में अधिक कहने के पहिले उनके नाम व अर्थ की कुछ कल्पना होने के लिये कुछ प्रथम बतला देना इष्ट है। उनके बिना ससार की उत्क्रान्ति ही नहीं, परन्तु इस विश्व का एक भी पदार्थ चल नही सकता है।

इन दो तत्वों में से एक का नाम 'ईथर' है, और इसको विज्ञान शास्त्र म 'विश्वव्यापी' ईथर (ether of space) नाम दिया गया है। इस तत्त्व के अस्तित्व में अनेक विद्वानों का बहुत सा मत भेद है, और मार्किस आफ साल्सबरी के समान विद्वान ने भी एक समय इसके अस्तित्व से इनकार कर दिया था। परन्तु यह बात उन्नीसवीं सदी की थी, इस बीसवीं सदी में इसके अस्तित्व से इनकार करनेवाला एक भी वैज्ञानिक

न होगा। यह बात हो सकती है कि उसके गुणों के विषय में मत भेद हो, परन्तु उसके विश्वव्यापित्व के विषय में तो सब का एकही मत है। ईथर देवी चपला, अग्नि नारायण और सूर्य-नारायण का वाहन है। विज्ञान शास्त्र ने यह बात मुक्त कण्ठ से स्वीकार करली है कि ईथर अग्नि, विद्युत् और सूर्य का वाहन है। ईथर क्या है? इस प्रश्न को न करिये, क्योंकि यह प्रश्न बड़ा गूढ है प्रश्न चाहे जितना गूढ व गहन हो, परन्तु यह बात सत्य है कि उसका अस्तित्व जड पदार्थों की अपेक्षा भी अधिक प्रकाशमान है। यदि उसके बिना विद्युत् और गुरुत्वाकर्षण शक्ति कुछ भी नहीं कर सकती है। (आजकल के वैज्ञानिकों का कथन है कि गुरुत्वाकर्षण भी एक विद्युत-प्रेरित शक्ति है, तथा जबकि गुरुत्वाकर्षण शक्ति ससार के यच्चयावत् पदार्थों पर अपना प्रभाव जमा कर आकर्षण कर रही है, तब वे जड पदार्थ स्वय विद्युत-रूप होने से सब विश्व ही विद्युत्मय हो गया) अतएव ईथर के बिना हमारा कोई भी काम नहीं चल सकता। विश्व की एकता में ईथर का अस्तित्व दूसरा प्रमाण है। यह बात सत्य है कि ईथर के अस्तित्व से हमारे सन्मुख कुछ परस्पर विरोधी गहन प्रश्न उपस्थित हो गये हैं और होते जाते हैं, परन्तु उनके हल करने में ही हमारी इति कर्तव्यता है॥

'एनर्जी' अर्थात् शक्ति

दूसरे तत्त्व का नाम 'एनर्जी' (शक्ति) है। यह शक्ति भी सर्वव्यापी है। शक्ति शब्द आधुनिक विज्ञान-शास्त्र में एक नया ही शब्द है और आङ्गल-वैज्ञानिको ने उसकी व्याख्या करके ससार के ज्ञान में व विचार में एक महत्वदायक वृद्धि की।

है। यह शक्ति भी उसी अदृश्य और अप्राप्त तत्वों में से एक है। इसका नामही उसकी व्याख्या का बोध करा रहा है तथा उसके गुण और कार्य्यों पर से हम उसकी कल्पना कर सकते हैं। यह कार्य्यकारिणी शक्ति ही उसकी उत्पन्न करने वाली है। एक बडे भारी वैज्ञानिक ने यह कहा कि 'इस बीसवीं सदी ने सच्चे वैज्ञानिक खजाने में 'शक्ति' नामक एक बहुमूल्य रत्न की वृद्धि की है।' इस शक्ति के सर्व व्यापित्व का शोध तथा उसके आश्चर्यकारक व अद्भुत् गुणो का शोध, आखिरकार यहां तक आ पहुचा है कि यह अविनाशी और नित्य मानी जाने लगी है। बीसवी सदी का यह सबसे बडा और अपूर्व आविष्कार है।

अब हमको यहा पर केवल यही विचार करना है कि 'शक्ति' तत्व ससार की एकता किस प्रकार प्रतिपादन करता है। हमारे पाठको में से कई महाशयो को विद्युत शक्ति को नापने के परिमाण अवश्य ही विदित होगे, उन महाशयो को यह बात भी मालूम हो जायगी कि वे प्रतिदिन इसी शक्ति का प्रकाश और उष्णता मे रूपान्तर करते हैं। इसी प्रकार से इसके द्वारा रेलगाडिया भी चलती है। सूर्य से आई हुई उष्णता जिस सरलता से हमारे गालो पर चोट लाती है उसी प्रकार की सरलता से पानी म की शक्ति भी लिफ्ट उठाती है, तथा पेट्रोल की शक्ति वायुयान और मोटर गाडियो को चलाती है।

सूर्य की शक्ति द्वारा ही हम सूर्य को देखते हैं। यह एक अदृश्य परन्तु सत्य शक्ति है कि जो ये सब काम करती रहती है। अधिक अनुसन्धान से यह पता भी लग जावेगा कि इस के भी सब काम नियमबद्ध रीति से होते रहते हैं। इन नियमो को रेडियम भी नहीं तोडती है। किसी समय रेडियम के विषय में भी ऐसी ही धारणा थी, परन्तु वह अब असत्य

प्रमाणित हो चुकी है। इस शक्ति के सब कार्य्य नियमबद्ध तथा विश्वव्यापी है। यदि इस शक्ति का हमारे नेत्रों के एक पदार्थ पर परिणाम होकर उसके प्रकाश का ज्ञान न होता तो हम को तारा कदापि भी नहीं दिख सकता था। यद्यपि वह शक्ति लाखों माइल से चल कर आती है और उसको हमारी पृथ्वी पर पहुंचने में सैकड़ों वर्ष व्यतीत हो जाते हैं, तथापि वह शक्ति और माचिस की काड़ी खींचने से जो प्रकाश शक्ति उत्पन्न होती है, एकही है।

इसी प्रकार से प्रकाश उष्णता आदि की भी बात है। प्रकाश, उष्णता और विद्युत ये सब उसी शक्ति के दृश्य रूप है। तथा यही बात गति और पेट्रोल में की शक्ति की है। ये और संसार की अनेक, नहीं नहीं सबही बातों में वह शक्ति खेल रही है, और सब शक्ति एक ही है। विश्व की एकता में इससे भी अधिक दृढ़ प्रमाण यह है कि यह शक्ति अविनाशी है।

इस प्रश्न का विचार हमने कुछ थोड़े ही शब्दों में किया है, परन्तु इस प्रश्न ने संसार को अनेक शताब्दियों से भुला रक्खा है। क्षेत्र अमर्यादित है और उसकी अपेक्षा बुद्धि बहुत ही अल्प है, अतएव हमारे विचार से संसार की एकता दिखलाने के अर्थ उस बुद्धि को इतनी ही बातें प्राप्त होंगी। यह वृद्ध भारतवर्ष अनेक शताब्दियों से यही कहता आया है कि 'सर्वंब्रह्ममिदं जगत्' और नवयुवा यूरोप अब कहने लगा है कि "पितामह, मैंने आज तक आपके वचन पर विश्वास न किया, परन्तु वास्तव में आपका ही कहना सत्य है।" प्रिय पाठकगण! हमारी बात यहीं पर समाप्त हुई। टेनिसन की उक्ति का सच्चा मर्म अब तो आप समझ गये न?

अध्याय नवा

टेलिफोन में सुधार

जैसे जैसे विज्ञान की उन्नति होती जारही है वैसे वैसे परमात्मा की अनेक अघटित लीलाए हमको दृष्टिगोचर होती जाती है। परमेश्वर ने सृष्टि उत्पन्न कर उसपर वनस्पतियां उत्पन्न कीं, अनेक जीव जन्तु पैदा किये और सब के पश्चात् मनुष्य को उत्पन्न किया। इसपर से सम्भवत यह कल्पना हो सकती है कि मनुष्य की इन्द्रिया इस ससार के सब प्राणियो की इन्द्रियो से अधिक सरस एवम् तीक्ष्ण होगी, परन्तु अन्वेषण के पश्चात् यह सिद्ध हुआ है कि मनुष्यो की इन्द्रियो में कुछ न कुछ न्यूनता अवश्य ही रह गई है। कुछ पक्षियो की अपेक्षा उसकी दृष्टि कम है, कुछ प्राणियो की अपेक्षा उसमें स्पर्शज्ञान न्यून है, कुछ प्राणियो के बनिस्बत उसकी घ्राणशक्ति बहुत कोती है सारांश यह है कि किसी भी इन्द्रिय के विषय में विचारा जाय तो यही मालूम होगा कि उसकी इन्द्रियो में कुछ न कुछ न्यूनता अवश्यही है।

परमेश्वर ने मनुष्य को बुद्धिमान कर उपरोक्त सब न्यूनताओं को भर दिया है। इन सब न्यूनताओं पर से ही परमात्मा यह बात ध्वनित कर रहे हैं कि "यद्यपि तुझे अल्प ज्ञान क कारण यह दीखता हो कि मेरी शक्तिया क्षीण हैं, तथापि तू जरा भी अधिक गहरी दृष्टि से अन्वेषण करेगा तो तुझे पता लग जावेगा कि मुझमें सब शक्तियो से अधिक और सिरमोर शक्ति विद्यमान है, और उस शक्ति का जहां मैंने किंचित् भी उपयोग किया कि यह सब ससार मेरा दास बन जावेगा।" यह बात अनुभव से ज्ञात हो गई है कि मनुष्य की दृष्टि ज्यो २

आभ्यान्तरिक होती जाती है, त्यों त्यों इस बात पर उस अधिक विश्वास होता जाता है। मनुष्य प्राणी प्रथम जिन वस्तुओं को देव मानकर स्तुति करता था, आज उनही वस्तुओं पर वह एक राजा के समान अधिकार करने लगा है। आज एक आविष्कार हुआ है तो कल दूसरा, आज फलाना तत्व हस्तगत हुआ है तो कल अन्यही, इस प्रकार से वह एकके बाद एक एसे अनेक विजय सम्पादन कर रहा है। इसी प्रकार के विजयों में से हमें एक के विषय में आज विचार करना है।

विद्युत शक्ति की सहायता से समाचार भेजने को अर्थात् तार यन्त्र का आविष्कार होने को, लगभग एक शताब्दि होने आई है। इसके पश्चात् साङ्केतिक शब्दों की जगह मनुष्य अपने निजके शब्द पहुचाने लगा। इसके बाद बेतार के तार यन्त्र का आविष्कार हुआ, और इन सब से अधिक महत्व का और आश्चर्यकारक यन्त्र बेतार का टेलिफोन निकला। इस प्रकार से इन तमाम विजयों की पूर्वपरम्परा है।

तार द्वारा समाचार भेजने के यन्त्र का आविष्कार हुए पश्चात् प्राय अडतालीस वर्ष पोछे डा० ग्रहमबेल अपने मित्र मि० वाटसन् से बोले "मि० वाटसन् यहा आइये, आप से मुझे कुछ काम है।" उस समय मि० वाटसन् बोस्टन शहर की एक बडी तंग गली की एक दूकान के नीचेवाले कमरे में काम कर रहे थे। उपरोक्त शब्द सुनतेही वे एक दम दौडते हुए ऊपर चढ गये और कमरे में घुसते घुसते ही वे आश्चर्य से कहने लगे, 'ओ हो! मैंने आपका कथन सुन लिया!! मैंने आपका कथन स्पष्ट सुना!!!" इस प्रकार की इस टेलिफोन की जन्म कथा है मनुष्य प्राणी के लिये विद्युत् की सहायता से अपने शब्द अन्य स्थान पर पहुचाने का यह प्रथमही मोका था। इस टेलिफोन के उत्पन्नकर्त्ता मि० बेल थे। इन्होंने सन्

१८७२ से इसके प्रयोग करने शुरू किये। उस समय उनकी प्रसिद्धी केवल इतनी ही थी कि वे गूगे और बहिरे मनुष्यों को शिक्षा देने में एक प्रवीण अध्यापक समझे जाते थे। वे इसीलिये प्रयोग कर रहे थे कि उनका कथन वे दृश्यस्वरूप में लिख सकें, क्योंकि यदि इस प्रकार से ध्वनि दृश्यस्वरूप में लिखी गई तो वह लिखा हुआ मजमून बहिरे लोगों की दृष्टि में आसकेगा और जो कुछ भी हम उनसे बोलना चाहेंगे वह सब वे समझ सकेंगे। इस का एक साधारण यन्त्र तैयार करने में उनको लगभग दो वर्ष लग गये। उन्होने विद्युत् चुम्बक के दो टुकडे कुछ थोडे थोडे अन्तर पर रखे, और उनको तार द्वारा जोड दिये। एक के सन्मुख एक बहुत बारीक लोहे की पत्ती रख दी और दूसरे के सन्मुख भी उसी प्रकार की एक लोहे की पत्ती रखी। यदि उस पत्ती के सन्मुख कोई बोलता था तो प्रथम वायु में ध्वनि की लहर उत्पन्न होकर उसके जरिये वह पत्ती हिलने लगती थी। उस पत्ती के हिलने का परिणाम उस चुम्बक पर होता था और उस चुम्बक के द्वारा तार में एक प्रकार का विद्युत् प्रवाह बहने लगता था। जिस तरह पत्ती पर शब्दों का न्यूनाधिक आघात होता था, उसी तरह ये प्रवाह भी न्यूनाधिक प्रमाण से बहता था। इस प्रकार से जब यह अस्थिर प्रवाह उस दूसरे चुम्बक के टुकडे तक पहुचता था, तब उसके द्वारा चुम्बक की आकर्षण शक्ति में फरक पडता था। जब शक्ति की वृद्धि होती थी उसी समय वह दूसरी लोह पत्ती आकर्षित होकर कुछ तिरछी हो जाती थी। इसी प्रकार से वह दूसरी पत्ती भी पहिले के समान ही प्रत्युत्तर रूप से हलचल करती थी। इसी बात को यदि दूसरे शब्दों में कहें तो यह होगा कि

मनुष्यों के शब्दों की हवा में लहर उत्पन्न होती है, और यह लहर पानी के लहर के समान होती है केवल इन दोनों में अन्तर यही है कि हवा की लहरें अदृश्य रहती हैं और पानी की दृश्य। इसके बाद वह लोह पत्ती इन लहरों के आघात से इस प्रकार हिलने लगती है कि जैसे हवा के कारण कोई पत्ती हिलती है। जब वह विद्युत् चुम्बक के पास आती है, तब वह चुम्बक की शक्ति में परिवर्तन करती है और इस परिवर्तन के कारण उस चुम्बक के आस पास लगे हुए तार में एक प्रकार का विद्युत् प्रवाह शुरू होता है और इस तरह इस ध्वनि लहर का विद्युत् प्रवाह में परिवर्तन हो जाता है। डा० वेल ने अपना यन्त्र इतनी ही शक्ति का बनाया था कि ध्वनि-लहर का उस लोह पत्ती में दृश्यरूप दिया जा सके। परन्तु यह आन्दोलन इतनी सूक्ष्म गति से होता था कि उनको इस लोह-पत्ती में इस प्रकार का सुधार करना था जिस से उसकी गति दृश्यरूप में लिखी जा सके, जिससे कि जहा उस आन्दोलन की भाषा निश्चित करके वह भाषा बहिरे लोगों को समझा दी कि अपना काम हो गया। इस प्रकार से हम जो कुछ भी उनसे बोलेंगे वह सब वे लोग सहज ही देख सकेंगे। इस समय उन दोनो समान पत्तियो का एक दूसरे के साथ सम्बन्ध, तथा अवलम्बन देखकर डा० वेल के मस्तिश्क में एक दूसरी ही कल्पना का उदय हुआ। बस इसी कल्पना से टेलिफोन का गर्भाधान-सस्कार हो गया। डा० वेल को यह बात मालूम थी कि हमारे कान में एक नगारे के समान परदा है। ध्वनि-लहर इस परदे पर आकर आघात करती हैं और जिस प्रकार उपरोक्त प्रयोग के समय लोह-पत्ती में आन्दोलन होता है, उसी प्रकार कान के परदें पर भी होता है।

पहला प्रयोग एक मृत मनुष्य के कान पर किया गया। डा० बेल ने उस मृत मनुष्य के कान के परदे की दूसरी ओर एक घास की काडी लगाई और उसका दूसरा सिरा एक काजल लगाये हुए आइने पर लगा दिया। जब डा० बेल उस कान में बोलने लगे तब उस परदे पर आघात होने से वह हिलने लगा, और उसके साथ ही साथ वह घास की काडी भी हिलने लगी और उसी समय उस काजल लगाये हुए आइने पर वाकी तिरछी आकृतियां बन गईं। इस प्रकार से इस साधारण प्रयोग द्वारा टेलिफोन का जन्म हुआ। डा० बेल इस बात को जानते थे कि यद्यपि यह कान के भीतर का नगारा आकृति में छोटा है, तथापि ध्वनि लहर के कारण होने वाले आन्दोलन को मज्जा, हड्डियां आदि के अन्दर से मेंदू तक वह पहुचा सकता है। डा० बेल ने एक दिन अपने मित्र से यह कहा कि "जिस प्रकार यह परदा हड्डियो तक में आन्दोलन उत्पन्न कर सकता है उसी प्रकार यदि कोई लोहे का परदा बनाया जावे तो उसके द्वारा उसमें जोडी हुई काडी अथवा तार में भी यह आन्दोलन उत्पन्न हो सकता है।" इस पर डा० बेल के मित्र उनपर हसने लगे। उनके कई धनवान मित्रों ने उनको ऐसी सूचना दी कि अगर तुम इस टेलिफोन के खप्त को छोड कर अपना पूर्व का धन्धा न पकडोगे तो हम तुम्हें द्रव्य की मदद न देंगे। इतनी ही नहीं प्रत्युत जिस स्त्री के साथ इनका वाग्निश्चय हो चुका था, उसके पिता ने भी इनको धमकी दी कि जो आप इस टेलिफोन की विक्षिप्तता को न छोड देगे तो हम आपको अपनी लडकी न देंगे।

इतने पर भी यह दृढनिश्चयी, और स्वभाववाला नव युवक किंचित् भी न घबराया। उसकी साम्पत्तिक स्थिति बहुत ही खराब थी। उसने अपनी कल्पना पर विश्वास करके बोस्टन शहर की प्रोफेसरी की नोकरी छोड़ कर अपना सारा पैसा इस कार्य्य में लगा दिया था। इतना होते हुए भी उसने अपने टेलिफोन बनाने का कार्य्य दस महीने तक और भी ज्यों त्यो कर चलाया।

इतना परिश्रम करने पर भी वह यन्त्र केवल गुनगुन शब्द करने के सिवा कुछ भी उन्नति नहीं कर सका। आखिरकार एक दिन वह कुछ बोलने लगा। सन् १८७६ के मार्च महीने की दस तारीख को उसमें से ये शब्द स्पष्टता से निकले कि "मि० वाटसन् यहां आइये, मुझे आप से कुछ काम है।" शनै शनै इस यन्त्र से अधिकाधिक स्पष्टशब्द निकलने लगे। डा० बेल ने अपनी २६ वी जन्मतिथि के रोज इस यन्त्र को पेटएट करवा लिया। आज दिन तक संसार में जितनी वस्तुएँ पेटएट की गई थीं, उन सब में यही यन्त्र श्रेष्ठ और आश्चर्योत्पादक था। यह यन्त्र इतना अद्भुत और नवीन था कि डा० बेल को इसके अर्थ सदृश्य कोई शब्दही न मिला। "इसका नाम उस समय तार यन्त्र में सुधार" रखा गया। दरअसल देखा जाय तो इसकी नामकरण विधि और इस तार यन्त्र में बहुत ही अधिक अन्तर था। हम कह सकते हैं कि उसमें इतना अन्तर था कि जितना अन्तर एक अच्छे वक्ता के अस्खलित भाषण और एक गूंगे बहिरे के सङ्केत करने में होता है।

पेटएट कराने के दो महीने पश्चात् ही यह यन्त्र फिलाडेल्फिया शहर की एक प्रदर्शनी में रखा गया। वहां पर वह

कोई डेढ महीने तक पडा रहा, परन्तु उसकी ओर किसी का भी ध्यान आकर्षित न हुआ। कुछ प्रेक्षक तो तब तक जिस समय कि ब्राझिल का सम्राट उस कमरे में आया, उस यन्त्र का उपहास कर रहे थे। सम्राट अपने योग्य कर्मचारियों सहित कमरे के अन्दर आया, और हाथ मिलाने के लिये अपना हाथ आगे कर डा० वेल को कहने लगा "डा० वेल, आपकी पुन. भेट के लिये मुझे बडा आनन्द होता है।" तब कहीं जाकर उन प्रेक्षकों का उस म्लानमुखवाले नवयुवक की ओर ध्यान आकर्षित हुआ। अब उन्होंने उस यन्त्र को खूब गौर से देखना निश्चित किया।

ब्राझिल के सम्राट को सर्वसाधारण के हित की बातों की ओर बडी प्रीति थी। वे कुछ वर्षों के पूर्व डा० वेल की गूगे और बहिरों की पाठशाला देखने भी आये थे। उनकी भी यह इच्छा थी कि इस प्रकार की पाठशाला अपने रायोडिजेनिरा में स्थापन की जावे। डा० वेल ने सम्राट से यह प्रार्थना की कि आप इस सुनने के यन्त्र को कान से लगाइये। बादशाह ने ऐसा ही किया और डा० वेल उस यन्त्र को हाथ में लेकर एक दूसरे कमरे में चले गये। अब आगे क्या होनेवाला है, इसकी किसी को भी कल्पना न थी। परीक्षक और बादशाह के साथ में आये हुए चालीस पचास वैज्ञानिक स्तम्भित हो कर खडे थे। बादशाह ने एकदम उस यन्त्र को कान के समीप से दूर किया और बडे ही आश्चर्य के साथ कहने लगा, "अरे बापरे, यह तो बोलता है?" इसके पश्चात् लार्ड केलव्हिन नामक वैज्ञानिक ने उस यन्त्र द्वारा शब्द सुने, और वह कहने लगा कि "अमेरिका में मैंने जितनी वस्तुएं देखी हैं, उन सब में इसके समान अद्‌भुत और आश्चर्यकारक वस्तु एक

एक भी न देखी। सचमुच ही यह तो एक के पश्चात् दूसरे ने इस प्रकार से उन तमाम वैज्ञानिकों ने, उस यन्त्र को देखा और ज्यों ज्यों डा० बेल उनको उस यन्त्र का तत्व समझाने लगे, त्यों त्यों उनको यह भ्रम होने लगा कि कहीं हमारे कान तो हमें धोखा न दे रहे हैं। कहना होगा कि उस गूंगे बहिरे के अध्यापक ने संसार को वाणी और श्रवण की एक नूतन इन्द्रिय तैयार करके दी। इस समय डा० बेल के एक बडे धनवान व्यक्ति हो गये हैं। उनके इस आविष्कार द्वारा न्यूयार्क में बैठा हुआ मनुष्य डोव्हर के मनुष्य से बात चीत कर सकता है।

टेलिफोन की रचना दो साधारण तत्वों पर की गई है। पहले ध्वनि हवा में लहर उत्पन्न करती है, और वह लहर हमारे कान के परदे पर गिरकर उसमें आन्दोलन उत्पन्न करती है, तब हमको ध्वनि का बोध होता है। डा० बेल ने कान के परदे के ही समान आसानी से हिलने वाला एक लोहे का परदा तैयार किया, और उसे एक विद्युत् चुम्बक के समीप रख दिया। उस चुम्बक के आस पास एक ताम्बे का तार लपेटकर उसे एक दूसरे चुम्बक से जोड दिया यह दूसरा भी विद्युत चुम्बक ही था। इसके सन्मुख भी वैसा ही एक लोहे का पतलासा परदा था। ध्वनि-लहर द्वारा यह पतला परदा आन्दोलित होता था और इसी कारण से चुम्बक के चहुओर उत्पन्न होने वाला विद्युत प्रवाह दूसरे चुम्बक को हिलाने लगता फिर उसके आकर्षण द्वारा दूसरा परदा हिलने लगता और हवा में लहर उत्पन्न करता। इस प्रकार से ध्वनि-लहर का विद्युत् में, और फिर विद्युल्लहर का ध्वनि-लहर में रूपान्तर हो जाता है।

यह बात सत्य है कि जिस समय हम उस प्रेरक (Transmitter) यन्त्र में बोलते हैं, उस समय बोलने के कारण उत्पन्न होनेवाली सब शक्ति काम में नहीं आती है। उसमें की कुछ शक्ति का ह्रास हो जाता है। इसी प्रकार जब वह प्रवाहक-तार के अन्दर से जाती है तब वह कुछ क्षीण हो जाती है और इसीलिये शब्द बहुत धीरे सुना जाता है।

उस यन्त्र की यह कमी 'प्रो० एच० डी० ह्यूजी के ध्यान में आई। ये महाशय भी स्वयं आविष्कारक थे। इन्होंने बहुत सा धन कमाकर उसे अपने देशवासियों के कल्याणार्थ अपने ही शहर के एक रुग्णालय को दान कर दिया। ह्यूजी साहेब के ध्यान में यह आया कि जो कुछ भी कमी है सो उस बोलने के यन्त्र में ही है। अतएव उन्होंने उस यन्त्र में कुछ नया सुधार किया, वह 'मायक्रोफोन' के नाम से विख्यात् है। वर्तमान समय के टेलिफोनो में बोलने के यन्त्र मायक्रोफोन ही हैं। इसमें भी डा० बेल के यन्त्र के अनुसार एक पतला परदा रहता है, परन्तु इसमें विद्युत चुम्बक की जगह एक प्रवाह वाहक तार रहता है, और उसमें मुख्य केन्द्र से विद्युत् प्रवाह बहता रहता है। परन्तु अभी तक वह पूर्ण उपयोगी न बन सका है। प्रवाह-वाहक तार के दोनो सिरों के मध्य में कोयलों के महीन कणो से भरी हुई एक पेटी रहती है। इसमें के कण कुछ भिन्न भिन्न रहते हैं, इसलिये उस तार में से प्रवाह वह नहीं सकता। जब कि हम बोलते हैं तब उसका दबाव हवा में से उस परदे तक पहुचता है। वहा से वह कोयलों के कणों में जाता है और इसीलिये वे कण एक दूसरे के समीप चले जाते हैं। उसमें से प्रवाह बहने लगता है। यह दबाव उतना ही कम ज्यादा रहता है जितनी शक्ति से शब्दोच्चारण किया

जाता है। और उसी परिमाण से जाने वाला प्रवाह भी न्यूनाधिक शक्तिवाला रहता है। वहां से वह प्रवाह तार द्वारा 'एक्सचेञ्ज' आफिस में जाता है, और फिर वहां से हम जिससे बोलना चाहते हैं, उसके घर पर पहुंचता है। वहां पर जाकर वह प्रवाह एक चुम्बक पर अपना प्रभाव डालता है और वह चुम्बक एक परदे पर लहरें उत्पन्न करता है, और वे लहरे ध्वनि को जन्म देती हैं। अब इस समय बोलने के और सुनने के यन्त्रों में बहुत कुछ सुधार हो गया है तो भी विद्युत् प्रवाह के कम होने की जो कमी थी वह तो अभी तक भी वैसी रही। जैसे जैसे तार की लम्बाई बढती जाती है, वैसे वैसे इस विद्युत् प्रवाह की शक्ति कम होती जाती है। इसीलिये इसकी शक्ति तार-यन्त्र के कोई तृतीयांश के बराबर है। तार को ६००० माइल पर पहुचा सकते हैं, परन्तु टेलीफोन द्वारा बडी कठिनता से कोई २००० माइल तक बात की जा सकती है। आजकल ससार में सब से अधिक लम्बा टेलिफोन न्यूयार्क से चिकागो तक का समझा जाता है। इसकी लम्बाई केवल १००० माइल की है। जिस समय समुद्र में से यह तार ले जाया जाता है, उस समय तो वह न्यूनता बहुत ही बाधा देती है। अभी अभी कहीं जाकर इङ्गलैण्ड से फ्रान्स मे केवल २१ माइल पर बात चीत हो सकी है। तार के प्रवाह को केवल 'टिक, टिक' शब्द ही ले जाने पडते हैं, परन्तु टेलिफोन को मनुष्य के आवाज की छोटी मोटी सब शक्तिया बहाकर ले जानी पडती हैं। इसके सिवाय यद्यपि तार को अधिक लम्बाई की यात्रा में होने वाली बाधाओं के कारण उसका विद्युत् प्रवाह कम हो जाता है, तथापि केवल 'टिक, टिक' शब्द ही ले जाने के कारण उसके कार्य्य में कोई विशेष बाधा

न पहुंचती है। परन्तु टेलिफोन का कार्य्य स्वभावतः नाजुक होने के कारण उसका कार्य्य बिगड़ जाता है। कभी कभी तो ऐसा हो जाता है कि प्रवाह जाते समय उसमें एक प्रकार की शिथिलता आ जाती है। यह शिथिलता स्थल पर के तार की अपेक्षा जल के तार में अधिक पाई जाती है। इस शिथिलता को हाल ही में लण्डन से पेरिस तक के तार में, उसके मध्य में कुछ अन्तर से एक विशेष प्रकार से तार की गिडुलिया लपेटकर दूर की गई है।

इन विशेष प्रकार की गिडुलियों को (Puppin coils) पपिन गिडुली' कहते हैं। क्योंकि इनका आविष्कार 'पपिन' नामक एक महाशय ने कर संसार के सन्मुख रखा था। इन पपिन गिडुलियों के कारण ही अमेरिका में सुदूरवर्ती स्थानों में टेलिफोनी सम्भव हो सकी है। इसके कारण इञ्जिनियर लोगों को मोटे तारों का उपयोग हो सका है। यदि वास्तविक रीति से देखा जाय तो मोटे तार का उपयोग बहुत अच्छा होता है, क्योंकि प्रवाह के लिये बारीक तार की अपेक्षा मोटे तार में से जाना बहुत सुलभ होता है परन्तु इस मोटे तार में भी एक न्यूनता है। वह यह कि इस मोटे तार में से प्रवाह जाते समय इतना शिथिल हो जाता है, और शब्द इतने धीरे व अस्पष्ट उठते हैं कि उनका समझना ही कठिन हो जाता है। पपिन घुण्डियों के कारण यह शिथिलता तो दूर हो ही गई, परन्तु टेलिफोन की लम्बाई भी कुछ बढ़ी है। इस प्रकार से एक के बाद एक न्यूनताएं दूर होती जाती हैं और शीघ्र ही टेलिफोन की लम्बाई चार हजार माइल तक बढ़ जावेगी, ऐसी आशा है।

कुछ समय हुआ कि टेलिफोन यन्त्र को एक और जोड़ीदार मिल गया है। उसका नाम 'टेलिफोनोग्राफ' है। इस यन्त्र

का आविष्कार प्रो० पिअर लुइजिथिरोटी ने किया था। इसके द्वारा केवल शब्द सुने ही नहीं जाते, परन्तु वे लिखे भी जा सकते हैं। टेलिफोन में एक न्यूनता है, और वह यह कि हमारी अनुपस्थिति में उसका कुछ भी उपयोग नहीं हो सकता। हमारे गैरमौजूदगी में यदि कोई हमसे बोलना चाहता है, तो वह हमें बिल्कुल मालूम नहीं पडता है। परन्तु अब यह न्यूनता कभी को पूरी होगई, अर्थात् हमारी अनुप स्थिति में यदि कोई बोला, या बोलना चाहा तो यह यन्त्र उसको लिख रखेगा और आप के आते ही आपको सादर समर्पित करेगा। इसकी बनावट इस प्रकार की है :—

जिस प्रकार ध्वनि को सङ्गठित करने वाली पेटी रहती है, ठीक उसी प्रकार की एक पेटी होती है, उस पेटी में एक नली इस प्रकार से लगी रहती है कि उसमें वायु प्रवेश न कर सके। इस नली का एक सिरा समाचार लेने वाले यन्त्र से जुडा रहता है। उक्त पेटी धातु के एक चौकोन पतरे पर भोडल का बहुत ही महीन परदा बिठाकर बनाई जाती है। जिस समय टेलिफोन का परदा आये हुये समाचार के द्वारा हिलता है तब यह परदा भी हिलने लगता है। जिस प्रकार फोनोग्राफ की सुई रहती है उसी प्रकार एक सुई इस परदे में लगी रहती है। इसके सिर पर हीरकणी लगी रहती है। वह सुई अपने नीचे लगी हुई एक मोम की फिरती हुई चुडी पर चलने लगती है। इसी चुडी पर आया हुआ समाचार 'ध्वनि लहर' की भाषा में लिखा जाता है। सुनने का एक दूसरा यन्त्र होता है। इसके द्वारा सुनने और लिखने का कार्य्य पृथक पृथक, अथवा एक ही समय में कर सकते हैं। यदि हम कहीं बाहर चले गये, और इस

यन्त्र को चलता ही रक्खा तो हमारे वापिस आने पर हमको आया हुआ सन्देशा मिल जावेगा। इटली में इसके अनेक प्रयोग किये गये और उसमें सफलता भी प्राप्त हुई है।

इससे भी अधिक और अच्छा सुधार जार्ज विलियम, एगवर्ट और हाइड लेरिमर नामक तीनों कनेडियन भ्राताओं ने मिलकर किया है। इन तीनों भाइयों को टेलिफोन का ज्ञान बिलकुल ही नहीं था, इतना ही नहीं परन्तु उन्होंने कभी टेलिफोन आफिस में पैर भी नहीं रखा था। परन्तु आश्चर्य है कि उन्होंने 'टेलिफोन एक्सचेन्ज' के एक नूतन यन्त्र का आविष्कार किया है। अब टेलिफोन को जोडने के लिये मनुष्यों की आवश्यकता न रही, क्योंकि यह यन्त्र उस काम को स्वयं कर लेता है। बोलने वाले को अपने पास के नोटिस पर से अपने मित्र का केवल नम्बर ही बतला दिया कि उसका सब काम हो गया। उस यन्त्र से विद्युत्-प्रवाह निकल कर एक्सचेन्ज आफिस की ओर बहने लगता है। वहां पर भी एक दूसरा यन्त्र चलता रहता है जो कि इस प्रवाह का रास्ता ही देखा करता है। वह यन्त्र इस प्रवाह को उस नम्बर में जोड देता है जिसकी कि उसे आवश्यकता है। यदि वह नम्बर खुला हुआ है तो वह उसे उससे जोड देगा और यदि खुला न हुआ तो केवल 'खट खट' शब्द करके वह इस बात की सूचना दे देता है कि वह नम्बर अभी खाली नहीं है। ये स्वय चलने वाली टेलिफोन की पद्धति इस समय कनेडा म प्रचलित है। उसी प्रकार की एक पद्धति अमेरिका में भी जारी है। यह स्वय प्रेरित टेलिफोन की पद्धति यद्यपि मनुष्य शक्ति से परे दीखती है तो भी मनुष्य की कल्पनाशक्ति ने यहीं पर विश्राम नहीं लिया है। इस बात को हम स्वीकार

करते हैं कि इस टेलिफोन की रचना बडी अद्भुत और आश्चर्यजनक है व उसने मानवीय कर्णो और वाणी को एक नूतन शक्ति प्रदान की है, तथापि कुछ वैज्ञानिकों ने इससे भी अधिक मजल मारी है। उनको इससे भी अधिक आश्चर्यजनक और अपूर्व यन्त्रों के सुख-स्वप्न दीखने लगे हैं।

मि० अर्नष्ट रूहमर ने 'वेतार का टेलिफोन' शीर्षक लेख में निम्न लिखित शब्दों का प्रयोग किया है, और यही शब्द मि० आयर्टन नामक एक इङ्गलैण्ड की युवती ने 'इलेक्ट्रिक आर्क' नामक निबन्ध में भी लिखे हैं कि "संसार में एक दिन वह आने वाला है, जबकि ताम्बे के तार आदि वस्तुएं केवल अद्भुतालय में ही रखने के काम की हो जावेंगी। अगर किसी को अपने मित्र से बात चीत करना होगा, फिर चाहे उसे यह मालूम हो, न हो कि मेरा मित्र कहां है तो भी वह अपने विद्युन्मुख से उससे बोलने लगेगा, और उसका बोलना उसका मित्र विद्युत् कर्ण द्वारा सुन सकेगा चाहे वह संसार के किसी भी हिस्से में क्यों न हो। "इस समय आप कहां हैं?" उत्तर मिलेगा कि 'मैं चीन में कोयलों की खदान में हीरे ढूंढ रहा हूं।' फिर वह पूछेगा कि 'आप कहां हैं?' तो इधर से उत्तर मिलेगा कि 'मैं पन्डिज पहाड पर अपनी छुट्टी के दिन व्यतीत कर रहा हूं।' अथवा प्रश्नकर्त्ता को बिलकुल भी उत्तर न मिलेगा, तब वह समझ जायगा कि मेरा मित्र इस संसार से प्रयाण कर गया है।"

हमारे पाठकों में से अनेक महाशय बिजली के 'आर्क लम्प' को अवश्य ही जानते होंगे। पेन्सिल के समान कोयले की दो बत्तियां एक कांच के मध्य में लाकर उनका विद्युद्ग्राहक तार से सम्बन्ध जोड दिया जाता है। यदि उन दोनों बत्तियों के

दो सिरे एक दूसरे के समीप लाकर मिला दिये कि उनमें से विद्युत्प्रवाह वहने लगता है। परन्तु जहां उनको एक दूसरी से पृथक किये कि एकदम उष्णता उत्पन्न होकर उन दोनों के मध्य में प्रकाश की एक कमान सी बन जाती है। इसी को आर्क लेम्प कहते हैं। ये ही बत्तियां सड़कों पर लगाई जाती हैं। वैज्ञानिक गण इसका प्रयोगशाला में भी उपयोग करते हैं, क्योंकि इनकी उष्णता बहुत ही तेज रहती है। उबलते हुये पानी की उष्णता १०० अंश होती है, परन्तु इन दियों की उष्णता ४००० अंश होती है। इन दियो से मिलने वाली उष्णता अथवा प्रकाश उसके महत्वदायक अङ्ग नहीं हैं। परन्तु उन दो सिरों से उत्पन्न होनेवाली विद्युल्लहर ही महत्त्वदायक होती है। इसी लहर के द्वारा लगभग ३२५ माइल तक शब्द पहुंचाने में आये हैं। इस बेतार से भेजी हुई ध्वनि टेलिफोन की अपेक्षा अधिक स्पष्ट सुनने म आती है। प्रवाह की शिथिलता के कारण होने वाले फरक उसमें नहीं होते और टेलिफोन की अपेक्षा अधिक जोरदार शब्द उठते हैं। इसी कारण से निकोल्हा टेस्ला ने कहा ह कि जिस प्रकार हम एक टेबल के आसपास बैठकर परस्पर वार्त्तालाप करते हैं, तदनुसार ही हम समुद्र के उस पार से भी बोल सकेंगे।

यह आर्क लेम्प से सिद्ध होने वाली बातो का आविष्कार एक इङ्गलिश विद्वान् ने जिसका नाम डब्ल्यु डडेल है, किया। उसने सन् १६०० में एक गानेवाले लेम्प का आविष्कार किया। जिस तरह वायु के दबाव से किसी बासरी से मधुर स्वर निकलता है, उसी प्रकार इस यन्त्र से विद्युत्-प्रवाह के कारण मीठे स्वर निकलते हैं। इस बासरी से ही जुड़ा हुआ एक आन्दोलन पानेवाला यन्त्र रहता है, उसमें वायु का झोंक

जाता है। इससे वायु में आन्दोलन होकर उसमें से मधुर स्वर निकलने लगते हैं। उडेल साहब ने केवल इतना ही किया इस धीरे धीरे बहनेवाले प्रवाह में 'कन्डेन्सर' नामक एक यन्त्र लगाया इससे प्रवाह आन्दोलन होने लगा। और इसी कारण से दिये की ज्योति इधर से उधर और उधर से इधर इस प्रकार वे फरफर करके हिलने लगी। इस प्रकार हिलने से ही उसमें से मीठे और मधुर स्वर निकलने लगे। ज्योति के आन्दोलनों की सख्या पर स्वरों का न्यूनाधिक होना अवलम्बित है अथवा खुद कन्डेन्सर की शक्ति बढाकर या घटाकर भी वह लगाया जाता है।

परन्तु मुख्य बात तो यह है कि इस लेम्प से निकलने वाली लहरें ईथर में से सहस्रों माइल दूर तक चली जाती है। इन्हीं लहरों के सहायता से टेलिफोन की अपेक्षा अधिक सुगम रीति से हम ध्वनि को पहुचा सकते है, परन्तु इन लहरों की सारी शक्ति उपयोग में नहीं आती है। इस 'स्पार्क-मेथड' के द्वारा गाने का पहिला स्वर भेजा जा सका, परन्तु शब्द की सब की सब पहिचान नष्ट हो गई। अतएव इस स्पार्क की लम्बाई कुछ कमी की गई तो शब्द ही न जा सका।

डा० उडेल का गानेवाला चिराग ईथर में से सर्वदा विद्युल्लहर भेजता रहता है। हमारे शब्दों से वायु में उत्पन्न होने वाली लहरों की अपेक्षा इसकी लहरें कुछ अधिक सूक्ष्म होती है। वे एक दूसरी के इतने समीप रहती है कि मानो हमारे शब्दों को लेजाने के लिये वे एक मार्ग बनाती हैं। यह क्रिया बडे ही आश्चर्यजनक रीति से होती है। बोलनेवाला टेलिफोन के समान ही एक बोलनेके यन्त्र में बोलता है। उसके

द्वारा उत्पन्न होने वाली लहरें एक तार के प्रवाह में विद्युल्लहरें उत्पन्न करती है। इस कारण दिये की ओर जाने वाले प्रवाह में कुछ फरक हो जाता है, और वह फरक दिये में से उत्पन्न होने वाली लहरों पर भी अपना प्रभाव पहुचाता है, और उस प्रवाह का पुन शब्दों में परिवर्तन हो जाता है। गाने की अपेक्षा विद्युल्लहर का कार्य विशेष महत्व का है। उन लहरों में भी एक प्रकार की अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है, और वही फिर अपने खुदके शब्दोच्चार करने लगती है। यह बहुत ही कमजोर अर्थात् दिये की शक्ति के कोई $\frac{1}{20}$ हिस्से के बराबर रहती है तो भी समाचार ग्रहण करने वाले यन्त्र की सहायता से तीनसौ से कुछ अधिक माइल तक वे शब्द सुने जा सकते हैं। इस कार्य्य में भी बेल टेलिफोन का 'रिसीव्हर' उपयोग में लिया जाता है। समाचार भेजनेवाले स्टेशन पर और समाचार ग्रहण करने वाले स्टेशन पर सब कार्य्य विद्युत् की सहायता से होता है। बोलने के शब्दों द्वारा जो कुछ भी आन्दोलन होता है, उससे रिसीव्हर में का परदा हिलने लगता है और वायु में ध्वनि लहर को जन्म देता है, उसका ही फिर शब्दों में परिवर्तन हो जाता है।

आधुनिक समय में तार की सहायता न लेते बोलने के अनेक यन्त्रों का आविष्कार हुआ है। कुछ दिनो के पहिले ही ए० डब्ल्यू० शारमन् नामक महाशय ने एक बेतार के टेलिफोन का आविष्कार किया। उसका वजन केवल छ पौण्ड का होने के कारण उसको जहा चाहो, ले जा सकते हो। कल्पना कीजिये कि हम किसी खदान में काम कर रहे हैं, और अचानक उसमें स्फोट होकर हम उसमें दब गये तो समय तत्काल 'शारमन्' को भूमि में लगा देने से सब काम

है। यद्यपि मेंडिलीफ का यह मत उस समय के अन्य वैज्ञानिकों ने स्वीकार नहीं किया और अब भी वे स्वीकार नहीं करते हैं, तथापि मेंडिलीफ के समान महान् वैज्ञानिक का यह मत होने के कारण इसे ऐतिहासिक महत्व प्राप्त हो गया है, और इसीलिये उसका उल्लेख कर दिया है।

ईथर या आकाशतत्व के स्वीकार कर लेने मात्र से सर्व शकाएं निवृत्त हो गईं, या सब अडचनें दूर हो गईं यह बात नहीं है। और भी अनेक नूतन शकाओं का उद्भव होता है। जिस समय पृथ्वी आदि ग्रह आकाश मडल में भ्रमण करते हैं, तब क्या वे उस आकाशतत्व में से जाते समय उसको हटाकर जाते हैं? जिस समय रेलगाडी चलती है, तो वह हवाको हटाकर अपना मार्ग करती हुई चली जाती है? क्या वैसे ही ग्रह भी करते हे? यदि करते हैं तो ईथर से उनका सघर्षण होता है या नहीं? यदि होता भी हो, और मानलिया कि वह बडे सूक्ष्म परिमाण में होता है, तो फिर हजारों अथवा यों कहिये कि लाखों वर्षों के सघर्षणका परिणाम इन ग्रहों पर न होना असभव है? यदि मेंडिलीफ के कथनानुसार ईथर कोई जड वस्तुही हो, तो वह अकल्पित परिमाण में सूक्ष्म और हलकी होना चाहिये।

चौथी सीढी—विश्व में ईथर का अस्तित्व है और वह सृष्टिके दो कारणों में से एक है, इतनी बात स्वीकार कर लेने के पश्चात् यह प्रश्न उपस्थित होता है कि शक्तितत्व (energy) का और उसका क्या सबध है? प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर आलिव्हर लाजने इस प्रश्न का उत्तर दिया है कि ईथर में अमर्यादित शक्ति भरी हुई है। सारे ससारकी प्रगति होना

केवल ईथर और शक्ति पर अवलंबित है। इन दोनों शक्तियों में होनेवाला संघर्ष और तज्जन्य रुपान्तर भावी उन्नति के प्रथम चिन्ह हैं। यही सिद्धांत हर्बर्ट स्पेन्सर साहब का था। भिन्नता इतनी ही है कि स्पेन्सर साहब ईथर की जगह (matter) शब्द का प्रयोग करते हैं। अब हमें सृष्टि नियम का आदि कारण ईथर और शक्ति के संयोग में खोजना चाहिये।

अब यह प्रश्न होता है कि सृष्टि नियम किसे कहते हैं? वे नियम अनंत कालतक चिरस्थायी रहते हैं या कोई दूसरी ही बातें हैं? जिन नियमों को वैज्ञानिक लोग सृष्टि नियम कहते हैं, वे वास्तव में सृष्टि नियमही हैं या उनके कल्पना का खेल है? इस प्रकार अनेक वादग्रस्त प्रश्नों का उदय होता है। परन्तु यहा पर यही उत्तम होगा, इन सब प्रश्नों पर विचार न कर के हम अपने मुख्य विषय की ओर मनको एकत्र करके विचार करें।

पांचवीं सीढ़ी—जिसने इस अनंत सृष्टि का थोड़ा भी अवलोकन किया है उसको यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मानव दृष्टि सृष्टि की महत्ताकी अपेक्षा बहुत ही संकीर्ण है। तिस पर भी सृष्टि के स्वरूप की भिन्नता और क्षण क्षण में होनेवाले रूपान्तर के कारण सृष्टि के विषय में कोई अटल और त्रिकालबाधित नियम बना लेना मनुष्य के लिये केवल असंभव बात है। मानव बुद्धिका अनुभव अल्पकाल व्यापी है और इस अल्प मर्यादित अनुभव के द्वारा हम अनंत और महान सृष्टि की छानबीन करने लग जावें, यह भी एक साहस की बात है। अतएव सृष्टि नियम के विषय में मनुष्यों द्वारा की हुई कल्पनाएं सर्वांश में सत्य नहीं हो सकतीं।

इन सब बातों का विचार करते हुए कोई कैसा भी सूक्ष्मदर्शी और अनुभवी वैज्ञानिक क्यों न हो परंतु अन्त में उसे भी न्यूटन के समान यह अनुभव हो जायगा कि "इस विशाल विश्व के अनत महासागर में मेरा ज्ञान एक बूंदके समान भी नही है"।

फिर इन तमाम वैज्ञानिक आविष्कारोंका व कल्पनाओं का क्या अर्थ करोगे ? इसका अर्थ यही है कि जिस प्रकार पक्षीगण इस अनंत आकाश का अंत नहीं पाते हुए भी अपनी शक्ति भर उसमें स्वच्छन्द विचरते हैं वैसेही मनुष्य को भी गुरुत्वाकर्षण के समान भौतिक सृष्टि के नियम, आत्मा और मृत्यु का सबध, आरोग्य सुख और शाति आदि विषयो पर निरतर विचार करते रहना चाहिये, और जिन तत्वो और नियमों को उसने स्वय खोजकर सत्य जान लिया है, उनका सर्वदा समर्थन करते रहना चाहिये। यदि उसमें कहीं शका उत्पन्न हुई कि तत्काल दुराग्रह का त्याग कर सत्य ग्रहण के लिये तत्पर रहना चाहिये और वह अपने सन्मुख इस तत्वको सर्वदा रखे कि अभी मै सत्यकी अन्तिम सीढी तक नही पहुचा हू, और इस तक कब पहुच सकूगा इसका कोई नियम नहीं।

अठारहवी और उन्नीसवी सदी के वैज्ञानिकगण परमाणु के स्वरूप, जड वस्तुओं के अनादि होने के नियम, शक्ति संबंधी कल्पनाए, जीव सृष्टि प्रारभ कैसे हुई इत्यादि विषयो पर परस्पर झगड़ा करते थे, और हर वैज्ञानिक अपने ही सिद्धांत को सत्य कह अपना सिद्धांत प्रतिपादन करता था। परन्तु इस समय उनके सिद्धांतों और आविष्कारों की

क्या हालत हो गई है, यह हमको स्पष्ट दीख रहा है। इस विश्व में जो कुछ सत्य है वह केवल एक जडवाद में ही भरा हुआ है, ऐसा प्रतिपादन करनेवाले वैज्ञानिक लोग आज हसी के पात्र बनरहे हैं। इनके अतिरिक्त भावुकता और अंध-श्रद्धा के कारण फजूल बातो को धर्म समझकर उस पर प्रेम करनेवाले धर्मभक्त, नास्तिक और जडवादियों का अनेक प्रकार से सता करके उनके रक्त से अपने धर्मग्रथो को लीपने वाले लोग भी महाघृणा की दृष्टि से देखे जाते हैं। उस समय वैज्ञानिक वातावरण अज्ञान और दुराग्रह के आवरण से किस प्रकार आच्छादित था, यह बात उस समय के लोगो की दृष्टि में नहीं आई, परतु दूरदर्शी वर्तमान समय के लोगो को यह साफ तौर से दीख रही है। सृष्टि में जड व चेतन ये दो शक्तियां भरी हुई हैं, या इस सब सृष्टि में एक ही शक्ति भरी हुई है, इसके समझने योग्य निर्मल दृष्टि अब कहीं जाकर हम लोगो की होने लगी है। जड के सबध मे तो कुछ न कुछ विचार हो ही रहा है, परतु हमने चेतन के लिये अभी तक श्री-गणेश भी नहीं किया है। मानस शास्त्र और आध्यात्मिक शास्त्रों के विशाल क्षेत्र अभीतक अन्वेपण के बिना खाली ही पडे हुए हैं। केवल जड वस्तुओ का अन्वेपण कर खुद को कृतकृत्य समझने वाले जडवादी अब अपने अज्ञान को जानकर स्वय लज्जित हो रहे हैं। जिस प्रकार किसी हाथी की केवल सडही हाथ में लगजाने से अधा मनुष्य समझता है कि मुझे हाथी का सपूर्ण ज्ञान हो लिया है, वैसे ही बीसवीं सदी तक के सब वैज्ञानिको की हालत थी, परतु अब पाश्चात्य वैज्ञानिक समझने लगे हैं कि आध्यात्मिक ज्ञान का महत्व भी भौतिक ज्ञान के समान अथवा यों कहिये कि उससे भी कुछ

चढ चढ़ कर है। अब वे वैज्ञानिक अपनी गलतियां को सुधार रहे है। हमारे प्राचीन ऋषि मुनियों ने आध्यात्मिक ज्ञान का महत्व पूर्ण रीति से समझ लिया था, परन्तु उसके साथ ही साथ भौतिक जड वस्तुओं के ज्ञान की जितनी उन्नति होना चाहिये थी, उतनी हो न पाई थी। इसलिये हमारे राष्ट्र का आधा शरीर विकल होकर उसे अच्छाई की बीमारी हो गई थी। आत्मा और जड प्रकृति का सबध क्या है, और उनमें परस्पर क्या वास्ता है ये दोनों बातें एक ही वस्तु के भिन्न भिन्न अग है या उनमें स्वभावत विभिन्नता है आदि महत्व पूर्ण और गहन प्रश्नों को हल करने के लिये हमारा मन निर्मल होना चाहिये। जिसका मन पक्षपात पूर्ण है उस मनुष्य में उपरोक्त प्रश्नों पर विचार करने की पात्रता ही नहीं है, यह बात इस बीसवी सदी के वैज्ञानिकों को भी मालूम होनी जा रही है और वे अब इसी प्रयत्न में लगते जा रहे हैं। साराश कहने का यह है कि अब उनका मुख जडवाद से आस्तिकवाद की ओर फिर गया है। अभी निर्दिष्ट स्थान पर पहुचना बहुत ही दूर है। तथापि वैज्ञानिको की मनो वृत्तियों और प्रवृत्तियों में इतना भारी परिवर्तन हो जाना, यह भी एक बडे आनद की बात है॥

अध्याय ग्यारहवां

वायुयानों का इतिहास

बहुत पुराने समय से मनुष्य के हृदय में आकाशमे घूमने की इच्छा चली आरही है, प्रत्येक जातिके इतिहासमें इसके

कई स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं, हिन्दुओं के महाकाव्य रामायण में लिखा है कि रामचंद्रजी पुष्पक विमान के द्वारा आकाश मार्ग से स्वदेश को लौटे थे। ग्रीक पुराणो में लिखा है-फ्रिक्साश और हेल अपनी सौतेली मा इनोरके दुःखोंसे छुटकारा पाने के लिये एक सोने के रोमोंवाले मेष (भेड) पर चढ़कर स्वर्ग लोक को भाग गये थे। जैनग्रथोमें जीवन्धर स्वामी की कथा बहुत प्रसिद्ध है। उन के पिता सत्यधरने अपने मन्त्री काष्ठांगार के द्वारा अपने वशोच्छेद होने के भयसे अपनी गर्भवती पत्नी को मयूरयन्त्र में बिठाकर आकाशमार्ग से उडा दिया था, जीवधर चरित से मालूम होता है कि यह यन्त्र मोर के आकार का होता था और शायद चाबी के बल से चलाया जाता था। अग्रेजी ग्रथोमें भी ऐसी बहुतेरी कहानिया पाई जाती है। जाटलैंट के राजा निडाग के आदेश से उनके नौकरो ने जब वयेलैंड नाम के एक अपराधी के दोनो पैरो के पजे काट डाले थे, तब वह राजा के अत्याचारो से रक्षा पाने के लिये एक प्रकार का जामा तैयार करके उसकी सहायता से अपने देश को उड गया था। आरब्य उपन्यासो में उडनेवाले गलीचे और पारस्य उपन्यासो के उडनेवाले सदूको की कहानिया सभी जानते हैं। इस तरह प्रत्येक जाति के पौराणिक ग्रथोमें आकाश भ्रमण की दो चार कहानिया अवश्य मिलती हैं। इन सब बातो से जाना जाता है कि मनुष्यो के आदिम कालसे पक्षियो के समान आकाश में भ्रमण करने की इच्छा चली आती है और वायुमडल पर प्रभुत्व जमाने के लिये बहुत से काल्पनिक उपायो की उद्भावना करते उन्होने बहुत कुछ परितृप्ति भी प्राप्त की है। एक समय का उक्त काल्पनिक विषय काल क्रम से आज सत्येक रूप में बदल गया है। मनुष्यो का बहुत दिनों का

वजन खींचकर ले जा सके हैं। किंतु इतने पतले गोलों का वायु के दबाव से एकदम फटजाना बहुत संभव था। मि० डाव ने अनेक युक्तियां देकर इस आपत्ति को दूरकरने की चेष्टा की परंतु लोगों को उसकी बात पर विश्वास नहीं हुआ।

सन् १७८३ ई० में लियन नगर के समीपवर्ती किसी गाव में रहनेवाले एक कागज के व्यापारी के दो पुत्र स्टीफन और योसफ मैंटगलफियेने इस बात की ओर लक्ष देकर अनुसधान करना प्रारंभ किया कि वायुमडल में मेघ किस तत्व की आधार पर रहते है। उन्होंने सोचा कि यदि एक थैली में किसी वायवीय पदार्थ को भर कर हवा में छोड दे तो वह मेघ के समान आकाश में तैरती रहेगी। पहले पहल उन्होंने भाफ की सहायता से परीक्षा करके देखा, परन्तु वे इसमें सफल मनोरथ न हुए। फिर उन्होंने एक थैली को अग्नी के मुख पर रखकर उठते हुए धुएँ और गैस से उसको भर कर हवा में छोड दिया और देखा कि वह वायुमडल में कुछ दूर तक गई फिर उन्होंने और भी प्रशस्त प्रणाली के अनुसार उक्त परीक्षा करना प्रारंभ किया और एक बार १०५ फुट परिधि वाली एक कपडे की थैली को घास के धुएँ से परिपूर्ण करके हवा में छोड दिया। थैली बहुत ऊँचे तक उडी, हवा में १० मिनिट तक स्थिर रही और फिर १॥ मील की दूरी पर जा गिरी। ज्योंही यह खबर चारो ओर फैली त्योंही भिन्न भिन्न लोगों ने भिन्न भिन्न रीतियो से परीक्षा करना प्रारंभ कर दिया। इसके कुछ समय पहले सन् १७७६ ई० में सबसे हलके गैस हैड्रोजन का आविष्कार हो चुका था। जब स्टीफेन और योसफकी परीक्षा का समाचार पारीस पहुचा, तब विज्ञानवेत्ता चारर्स साहब ने कि शीतल वायु की अपेक्षा गरम वायु

हलकी होती है और वह हमेशा ऊपर उठने की चेष्टा किया करती है इसलिये किसी व्योमयान में हैड्रोजन भरकर परीक्षा करने से पूर्ण सफलता प्राप्त होसकती है। अत १२ फुट व्यास-वाले एक वार्निश किये हुए रेशम के व्योमयान को उक्त गैस से परिपूर्ण करके हवा में छोडा वह ३००० फुट ऊपर तक गया और प्राय ४५ मिनिट तक वायुमडल में परिभ्रमण करके १५ मील दूरी पर जा गिरा। कहते हैं, जिस जगह यह वायुयान गिरा वहां के किसानो ने इस अनदेखी घटना को किसी शैतान के आगमन की सूचना समझा और इस कारण उन्होंने उसे डरते डरते उठाया और फिर एक हल से बाधकर चारों ओर घुमाया इस तरह जब तक वह फट फटा कर चिन्दी चिन्दी न हो गया तब तक उन लोगों ने चैन नहीं लिया।

इस घटना के कई महीने बाद योसफ माटगलफिये ने एक नवीन व्योमयान बनाकर और उसे उष्ण गैस से परिपूर्ण करके दर्शक मडली के सामने उडाया। वह बहुत ऊचाई तक गया और इस तरह उसने अपनी कृतकार्यता का अच्छा परिचय दिया।

सन् १७८३ ई० में योसिओ पिलाट्रे डीरोजिये नामक एक व्यक्ति ने पृथ्वी से रस्सी आदि के द्वारा कोई सबध न रखकर सब से पहले एक मुक्त व्योमयान आकाश में उडाया था। इस दु साहसिक विमान विहारी की मृत्यु इससे दो वर्ष बाद ३००० फुट की ऊचाई से विमान गिर पडने के कारण, हो गई। उसने मरने के पहले हैड्रोजन और ऊष्ण वायुकी सहायता से एक नये ढग का यान तैयार किया था। उस

यान में दो गोले एक हैड्रोजन से दूसरा उष्ण वायु से भरकर ऊपर लगाये गये थे। क्योंकि उसको विश्वास था कि हैड्रोजन गैस हलकी होने के कारण स्वभावत ऊपर उठने की चेष्टा करेगा और नीचे के गोले को गरम करने से उसकी हवा फैलने की चेष्टा करेगी। फलत यान ऊपर उठेगा और पीछे ज्यों ज्यों वह उष्ण वायु ठडी होती आवेगी, त्यों त्यों वह भारी होकर नीचे की ओर आने लगेगा। किन्तु ऐसे यंत्र में जो विपत्ति थी, उसकी ओर उसका ध्यान नहीं पहुंचा। इस यान में विपद यह थी कि वायु के साथ हैड्रोजन मिलते समय यदि अग्नि सयोग हो जाय तो वह आवाज करके एक दम फट जावेगा। आखिर यही हुआ। उसने इस यान को उडाया और वह आध घंटा आकाश में भ्रमण करने के बाद हैड्रोजन के फटने से नष्ट होकर जमीन पर गिर पडा और उसके साथ ही विमान विहारी की भी मृत्यु हो गई।

व्योमयान को इच्छानुसार चलाने के लिए जिन लोगों ने अपनी अपार शक्ति व्यय की थी उन लोगो में से जनरल मयेसनियका नाम विशेष उल्लेखनीय है। वह आज से प्राय डेढ सौ वर्ष पहले व्योमयान को स्वेच्छापूर्वक चलाने के लिए जिन सब उपायों का उल्लेख कर गया है, वर्तमान समय के व्योमयान उन्हीं सब उपायों के अवलबन से बनाये जाते हैं। उस के मत से बेलून को लबी आकृतिका बनाकर उसके ऊपरी भाग को आवरण से ढक देना चाहिये, फिर उसमें एक त्रिकोण पालको जोड़कर उसमें गरम वायु से भरी हुई थैलियां बांध देना चाहिये और बेलून के पिछले भाग

में स्टीमरके चाकके समान एक चाक लगाना चाहिये। मयेस्नियकी पद्धति पर बनाये हुए बेलून का चाक मनुष्य द्वारा घुमाया जाता था।

सन् १७८४ में पारी नगर के राबर्ट नाम के दो भाइयों ने एक बेलून बनाया। उसका आकार खभे के समान था, परन्तु उसके दोनो छोरअर्धगोल (Hemispherical) थे। उन्होने इस बेलून को डाडे (पतवार) की सहायता से चलाने की चेष्टा की थी। पहली साल तो उनकी मिहनत सफल न हुई, परन्तु दूसरी साल के उद्यम से उनका बेलून आकाश में गोलाकृति मार्ग से घूमने लगा।

वैज्ञानिक जगत में भाफ पैदा करनेवाले यत्र (Steam boiler) और जल पहुचाने वाले यत्र (Injector) का आविष्कार करने के कारण मि० गिफार्ड का नाम सर्वत्र परिचित है। वे बहुत दिनो से एक हल्के और बहुत शक्ति वाले एंजिन को बनाने में व्यस्त थे, और उसके फल स्वरूप उन्होंने १ मन दस सेर भारी और ५ घोडों की शक्तिवाला एक एंजिन तैयार किया था। उसने देखा कि ऐसे एंजिन की सहायता से व्योमयान स्वेच्छापूर्वक चलाया जा सका है। अतएव उसने सन् १८५२ ई० में पारी नगर में एक व्योमयान बनाया। यह व्योमयान जुलाहे के करघे के सिटलके आकारका था। इसकी लम्बाई १४४ फुट थी। इसके मध्य के फूले भाग की परिधि ४० फुट थी और भीतर ९००० घनफुट जगह थी। इसका ऊपरी भाग रस्सियों के जाल से आच्छादित था और नीचे भाग में ६० फुट लम्बी एक लकडी कई रस्सियो की सहायता से लटकती हुई ऊपरी जाल के दोनो छोरों से जुडी थी। कई रस्सियो की सहायता से इस

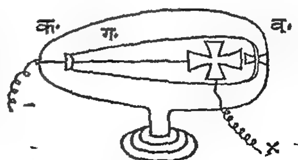
चमत्कारों का रहस्य बडी सुगमता से खुल जाता है और नये नये चमत्कारों का आविष्कार करना सुलभ हो जाता है। इन्हीं कारणों से वैज्ञानिकों ने माना है कि संसार में केवल दो बातें अविनाशी हैं। (१) वस्तु (२) शक्ति, संसार के यावत् चमत्कार इन्हीं दोनों पर निर्भर हैं। परतु यह एक दूसरे से अलग नहीं किये जासकते। इनका जोडा एकही साथ रहता है। जब वस्तुओं में बिल्कुल शक्ति न रहेगी तो वे पहिचानी भी नही जा सकेंगी। जहां वस्तु है वहां शक्ति है व जहां शक्ति वहां वस्तु है। उनकी नियत मात्रा कम अधिक नहीं हो सकती। वस्तु को उत्पन्न करना और उसका नाश करना मनुष्यकी शक्ति के बाहर है। तथापि हम आज पाठकों को यह बतलाना चाहते हैं कि वास्तव में कुछ न कुछ नाश अवश्य हुआ करता है।

यह कहने का कि परमाणु (Atom) अभेद्य हैं इतना ही अर्थ है कि हमको उस परमाणु के विभाग करने की शक्ति नहीं मिली। किन्तु आज कल के नये नये शोधो से हमें कैथोड किरण (Cathode rays) और रांट्जेन् साहब के (X rays) एक्स् किरण का पता लगा है। आजकल चिकित्सा शास्त्रमें एक्स किरणों का उपयोग कितना होने लगा है यह पाठकगण जानते ही हैं। वर्तमान समय में होलेंड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक जीमनने (Dr Zeeman) प्रकाश किरण (Light rays) व लोह चुंबकत्व (Magnetism) का निकट संबध सिद्ध किया है। सूक्ष्म प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया है कि प्रकाश, विद्युत् व लोह चुंबकत्व के विशिष्ट संबध के कारण ही पैदा होता है।

"अ" यह एक कांच की नली है जिसमें 'ब" व "क" जगह में प्लेटीनम (Platinum) धातु के तार कांच को गरम करके घुसाये हैं। नली का खुला मुंह "प" एक वायुविष्कासन

सन यत्र से (Exhaust pump) लगाया जाय तो कुछ देर तक यत्र चलाने से "अ" में की हवा निकल जायगी। इसके अनतर "प" स्थान के कांच को आंच देकर पिघलाने से उसका मुह बद हो जायगा। अब एक विद्युत् यत्र (Electric machine) लेकर उसके धन ऋण भाग (Positive and Negative poles) "व" व "क" से तांबे के तार से जोड दो, यत्र चलाने से नली में "क" से ऋण विद्युत्कण (Negative charged corpuscles) बडे वेगसे "व" को जाने लगेंगे, जैसे किसी बदूक से छुर्रे निकल रहे हो। इस बात का प्रमाण यो दिया जा सकता है—यदि हम पहले के समान ही एक ऐसी नली लें जिसमें "क" और "व" के बीच में एक महीन परदा हो, अब अधेरे में विद्युत यत्र से बिजली नली में ले जायें तो "व" की ओर उस परदे का छाया पडेगा। इससे

चित्र नं० १



चित्र नं० २

मालूम होता है कि बिजली के प्रकाशमान कण "क" से जाते हैं और ये कण ऋण विद्युत् वाहक हैं। यदि हम यंत्र का ऋण भाग "ब" से जोड दें तो छाया "क" की ओर पडेगी यहांपर यह शका की जा सकती है कि छाया तो केवल प्रकाश के सहारे ही पड सकती है। यहां पर भी नली में प्रकाश है ही, उसीस छाया पडती होगी। इस शका निवारण के लिए निम्न लिखित प्रयोग किया जा सकता है :—

ब, क एक काच की नली है जिसमें, काच की दो पतली सींके लगा दी गई हैं। इन पटलियो पर एक अत्यत ही हलके पहिये की धुर लुढकती है। पहिये में केवल भोडर के (अबरक) पत्र लगा दिये गये हैं।



चित्र नं० ३

यह पहिया बडा हलका है, इसी कारण धक्का लगने से चलने लगता है। अब इस नलिका के दोनों सिरे "ब" व "क" किसी विद्युत्यत्र के धन व ऋण छोरो से तार द्वारा जोड दें, तो पहिया "क" से ढुलकता हुआ "ब" की ओर जायगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि कोई वस्तु "क" से निकलती है और पहिये को धक्का लगाती है यदि अब यह सबध उलटे कर दिये जाय अर्थात 'क" से विद्युत्यत्र के धन भाग को जोड दें तो

पहिया "व" की ओर से "क" की ओर लौटेगा। अब कण "व" से निकल रहे हैं। इन दो प्रयोगों से सिद्ध हुआ कि जो छोर विद्युत् यत्र के ऋण भाग से जुडा होगा उसीसे कण निकलते हैं।

प्रयोगो से यह सिद्ध हो चुका है कि ये विद्युत्कण परमाणुओं से (Atoms) भी छोटे हैं। पाठको को मालूम ही है कि किसी बडे मेले में बहुत लोगो के इकट्ठा हो जाने से आदमी को आगे चढने की बहुत कम जगह मिलती है। परतु छोटे छोटे जानवरो को उस समूह में बिल्कुल अडचन नही पडेगी। जब मनुष्यो के इधर उधर फिरने की सरलता या कठिनता विचार करना हो तो मनुष्यो का ही समूह लेना पडेगा इसी तरह उज्जन वायु के परमाणुओं का विचार कीजिये। उज्जन के परमाणु, सर्व प्रकारके परमाणुओं से अधिक छोटे है। कांचकी नली में यदि उज्जन भर दिया जाय और वायु निष्कासन यत्र (Exhaust pump) से धीरे धीरे उसकी मात्रा कम करने लगें तो कुछ समय में उज्जन के परमाणुओं की सख्या बहुत ही कम हो जायगी, और उनको इधर उधर फिरने के लिये अधिक सुगमता हो जायगी। परतु गणित से ऐसा मालूम हुआ है कि इतनी सुगमता करने पर भी परमाणुको केवल एक इच के बराबर जगह मिलती है। साधारण स्थिति में कितनी जगह मिलती होगी इसका अनुमान सहज में हो सकता है। कमरे के एक कोने में पैदा हुए थोडे से धुएं को (smoke) दूसरे कोने तक पहुचने में बहुत देर लगती है इसका कारण भी परमाणुओं की भीड ही है। विद्युत्कणो की स्थिति इन परमाणुओं से बहुत भिन्न है। वे एक बाजू से दूसरे बाजू को बडी शीघ्रता से जा सकते हैं। यदि नली लबी भी हुई तो भी

जाती है। विद्युत्किरणों से हवा विद्युत्वाहक हो जाती है। इस बात की जांच करने से इसका पता लग जाता है कि कोई वस्तु विद्युत्किरण देती है या नहीं। इस प्रकार के प्रयोगों से पता लगा है कि बहुत सी वस्तुओं में थोडी बहुत विद्युत्किरण देने की शक्ति वर्तमान है जैसे नदी या कूए का पानी, बालू चिकनी मट्टी इत्यादि। "ले बान" व इतर बहुत विज्ञानिक तो सर्व जड पदार्थों से यह विद्युत्किरण निकलते हैं, ऐसा अनुमान करने लगे हैं। परंतु आश्चर्य कारक व विशिष्ट बात यह है कि विद्युत्किरणों से निकलनेवाली वस्तु का (Emanation) साधारण स्वभाव अपने जनक मूल पदार्थ से भिन्न होता है। रदरफोर्ड साहब कहते हैं कि इस तरह बाहर निकलनेवाले वस्तुओं के परमाणु का भार अपने पदार्थ के परमाणु के भार से बहुत कम होता है। रेडियम के परमाणु का भार २२५ है। यह परमाणु रेडियम से टूट कर धीरे धीरे सीसा बनता है जिससे परमाणु का भार २०६ हो जाता है इसी प्रकार श्रेणी श्रेणी से उससे हीलीयम (Helium) है बाहर निकलता है जिसके परमाणु का भार केवल ४ है। इस प्रकार की क्रियाओं के निरीक्षण से यह कहना पडता है कि एक तत्व से दूसरा तत्व, दूसरे से तीसरा और इसी क्रम से अन्य तत्व बनते चले जाते हैं। पुराने कीमियागरों की एक पदार्थ से दूसरा पदार्थ बनाने की कल्पना अब प्रत्यक्ष अनुभव में आ रही है।

इस विवेचन से यह निर्णय होता है कि पुराने मतानुसार परमाणु अभेद्य नहीं है, किन्तु उससे धीरे धीरे नये परमाणु निकलते जाते हैं, और इनके निकलने के साथ नये प्रकार की चमत्कारपूर्ण शक्ति दिखायी देती है। कोई कोई सज्जन

ऐसा भी प्रतिपादन करते हैं कि वस्तु का रूपांतर एक प्रकार की शक्ति में होता है । जिसको हम लोग पदार्थ कहते हैं वह केवल एक स्थिर शक्ति ही है—ताप प्रकाश इत्यादि अस्थिर शक्ति है जो एक परमाणु से दूसरे परमाणु के निकलने के समय उत्पन्न होती है। इन सब विवेचनाओं से अनुमान यह हुआ कि पदार्थ केवल अशाश्वत है। वह स्वयं कम होता जाता है। इससे यह प्रश्न निकलता है कि जो वस्तु हम आज देखते हैं वह थोड़े ही दिनों के पहले उत्पन्न हुई होगी। यदि वह बहुत दिन से बनी होती तो आज तक अवश्य नष्ट हो जाती। वस्तु उत्पन्न कैसे हुई कब हुई, परमाणु कैसे उत्पन्न हुए इत्यादि प्रश्नों का उत्तर देना बहुत कठिन है। जिधर देखो उधर अपने को सावधिक विचार करना पड़ता है और मनुष्य प्राणियों का ज्ञान भी सीमाबद्ध होने से, मूल उत्पत्ति कैसी हुई इस बात का विचार करना एक प्रकार से वृथा ही है। परन्तु हम यह निश्चय से कह सकते हैं कि रसायनशास्त्र का साधारण परमाणु खरा परमाणु नहीं है; क्योंकि इस परमाणु में दूसरे अनेक विद्युतअणु (Electrons) समाये हुए हैं। जैसे और जगत् के सर्व ग्रह (Planets) अपने सूर्य के आस पास घूमते हैं वैसे ही विद्युत्अणु की यह माला (system) एक केंद्र के आसपास घूमती रहती है। परन्तु अपनी ग्रहमाला एक बड़े भारी माला का केवल एक विभाग है उसी तरह यह भी संभव है कि विद्युत्अणु (Electron) अपने से भी छोटे छोटे अणुओं से बनी हो। यदि यह माना जाय कि विद्युत्अणु अभेद्य है तो विश्व में जितने दृश्य दिखाई देते हैं उन सबका सम्यक स्पष्टिकरण इसी मूल तत्व से हो जाना चाहिये। परन्तु

अभी बहुत सी ऐसी अनजान बातें पड़ी हैं जो इस तत्व से नहीं स्पष्ट हो सकतीं। सर्व वैज्ञानिकों का अन्तिम हेतु यह है, कि संसार की इस दिखाऊ भिन्नता में एकता का पता लगायें। वे एक ऐसा मूलतत्व ढूढ़ना चाहते हैं जो स्वयं सर्वव्यापी हो और जिसका घटक दूसरा कोई भी न हो। ऐसे मूलतत्व का सहज में मिलना अत्यन्त कठिन है। इतना ही नहीं बल्कि मनुष्य के सीमाबद्ध ज्ञान और सांबंधिक विचार के कारण से हम यह कहने को बाध्य होते हैं कि उस तत्व का मिलना असंभव है। अन्त में हम इतना ही व्यनीत करते हैं कि ब्रह्म ईश्वर क्या वस्तु है यह जानने के लिये हमारे पुरातन विद्वान् ऋषिगण जो प्रयत्न करते थे और जो प्रयत्न वेदों और उपनिषदों में स्पष्ट दिखलाई देता है ठीक वह प्रयत्न आधुनिक वैज्ञानिक कर रहे हैं। दोनों प्रयत्न में केवल रीतिमात्र की भिन्नता है। आधुनिक रीति में सांबधिक विचार के अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग न होने से इष्टहेतु सिद्ध होने की संभावना बहुत ही कम है। प्रयोग (Experiments) और शोध (Researoh) चलते रहेंगे, नई नई बातें निकलती रहेंगी, उनसे बहुत प्रकार के ऐहिक लाभ दीखेंगे, परन्तु अन्तिम हेतु साध्य नहीं होगा। ऋषिगणों की विचार करने की रीति अधिक उदात्त दीखती है। वस्तुओं की शाश्वति नहीं है ऐसा वे पहले से ही कह रहे हैं, यह बात पाश्चात्य वैज्ञानिको को आज मालूम होती है। भारत वर्ष के संस्कृत ग्रथों का मनन करने का काम जर्मन पंडित बहुत परिश्रम से चलाते हैं। वे बनारस शहर से बहुत संस्कृत ग्रंथ बडी बडी कीमत दे देकर अपने देश ले गये। इस का कारण केवल यही है कि उनका पूर्ण विश्वास हो गया है कि उन ग्रथो में गूढ,

गभीर व अद्भुत ज्ञान भांडार भरा हुआ है। यह निर्विवाद है कि अपने पडितों का प्रवेश उन ग्रथों में सहज में हो सकेगा। सूक्ष्म अध्ययन करने पर वे जर्मन व इतर पाश्चात्य पडितो से अधिक लाभ उठा सकेंगे। परन्तु दुर्दैव है कि इस प्रकार का अध्ययन करने के लिए कुछ भी उत्तेजना नहीं दिखलाई पडती। हमारा यह मत है कि पाश्चात्य वैज्ञानिकों के लिखे हुए ग्रथ पढनेवाले हिन्दुस्थान के सज्जनों का व सस्कृत पडितो का एक प्रकार का समेलन होने की अत्यन्त आवश्यकता है। एक आध विशिष्ट प्रश्न लेकर यह देखना चाहिये कि उसका उत्तर व स्पष्टीकरण पाश्चात्य ग्रथ क्या देते है, और उसी प्रश्न स्पष्टीकरण सस्कृत सम्बधी ग्रथों में क्या है इस प्रकार के तुलनात्मक दृष्टि से शोध होना चाहिये, पश्चिम और पूर्व इनका इस तरह सबध होने से बहुत सी नई नई बातें निकलेंगी। सस्कृत भाषा को मृत भाषा कहना भूल है। सस्कृत भाषा का अध्ययन करने में मुख्य हेतु यह होना चाहिये कि बडे बडे ग्रथों का परिशीलन करने पर उसमें के गूढार्थ का सबध बाहर आजाय इस प्रकार के शोध करने के लिए क्षेत्र करें तो विपुल है परन्तु शोध करने की इच्छा होनी चाहिये। इस प्रश्न पर विचार करके सस्कृत पण्डित व विज्ञान सीखे हुए सज्जन सम्मेलन होने की व्यवस्था का कार्य अपने हाथों में शीघ्र लेंगे ऐसी इच्छा प्रदर्शित करके व अपने पुरातन विद्वान ऋषियों को पूज्यभाव से नमस्कार करके हम यह लेख पूर्ण करते है।*

*यह लेख इन्दौर के होलकर कालेज के प्रोफेसर देवधर ने "विज्ञान" में लिखा था। आपने कृपाकर इसे यहा प्रकाशित करने की अनुमति दी है।

अध्याय बारहवाँ

डार्विनवाद यानी विकाशवाद

डार्विन नामक अंग्रेज विज्ञानवेत्ता ने सृष्टि की उत्पत्ति व मनुष्य शरीर के विकाश सम्बंध में जो सिद्धान्त ६० वर्ष पूर्व यूरोपवालों के सामने रक्खा था, उस पर ढूंढ खोज होकर उसका प्रचार यूरोप में इतनी शीघ्रता से हो गया है कि इस समय उसका प्रभाव प्रत्येक विद्या के क्षेत्र में होगया है। उन्नीसवीं शताब्दी की सब से बड़ी खोज डार्विन के सिद्धान्त ही हैं। इस शोध के पीछे यूरोप की तत्व-विद्या में बहुत कुछ परिवर्तन होगया है। यूरोप के धार्मिक विचारों में भी इस सिद्धान्त से भारी क्रान्ति हो गई है। यूरोप की कितनी ही समाज शास्त्र की समस्यायें इस सिद्धान्त के प्रगट होने से अपने आप हल हो गई है। इस सिद्धान्त को प्रचलित हुए लगभग ६० वर्ष हो चुके हैं। परन्तु तो भी हमारे हिन्दुस्थान के लोगों को इस सिद्धान्त का पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ। हमारी समाज में विकाशवाद का जो कुछ थोड़ा सा ज्ञान है वह केवल इतना ही है कि मनुष्य बन्दरों से पैदा हुए हैं। पर यह अधूरा ज्ञान विकाशवाद के सम्बंध में बुरी भावनायें पैदा करता है और कितनेक स्थानों में तो इस विषय में बुरी भावनायें पैदा भी हो गई है। "हम बन्दरों से पैदा हुए हैं" यह विचार मनुष्यों को बुरा लगता है। इसी कारण वे इस सिद्धान्त को स्वीकार करने में आनाकानी करते हैं। यदि लोगों में इस बात की सत्यता कि "दिन प्रति दिन मनुष्यों की शक्ति का विकाश होता जाता है" उत्पन्न हो जाय, तो भावी प्रजा वर्तमान प्रजा की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान

होगी और हमें यह अनुमान करना पड़ेगा कि बाप दादाओं की अपेक्षा हमने अधिक विकाश का अनुभव किया है। प्रौढ़ावस्था के मनुष्यों को यह अनुमान अनुचित ही नहीं किन्तु अधोगति को पहुँचाने वाला भी जान पड़ेगा। इसी से वे विकाशवाद के विरुद्ध में ज़ोर से कहते हैं कि विकाशवाद को माननेवाले मनुष्य आधुनिक भयंकर लड़ाई में सम्मिलित होकर अपने मन रूपी जहाज को जर्जरित कर प्रजा सम्बधी क्या प्रकाश करेंगे, कहां तो रामायण और महाभारत के समय का जीवन और कहा बीसवीं शताब्दी का मनुष्य जीवन?

इसे विकाश कहा जाय कि अध पतन?

जिस स्थान पर लोगो के ऐसे विचार हैं उस स्थान पर विकाशवाद की ठीक वास्तविक दशा बताने की बड़ी भारी आवश्यकता है। भारतीय समाज में विकाशवाद के सम्बध में विरुद्ध विचार रखनेवाले जितने मनुष्य हैं उतने ही उसके सम्बध में ज्ञान पैदा करने की इच्छा रखनेवाले भी हैं। जब अंग्रेजी भाषा जाननेवाले मनुष्यों को भी विकाशवाद के सिद्धान्तों को समझना कठिन जान पड़ता है तब हमारे हिन्दी भाषा जाननेवालों को जो अंग्रेजी नहीं जानते हिन्दी भाषा में ही पूर्णतया इस विषय की जानकारी करा दी जाय तो क्यों न उन्हें रुचिकर होगा।

विकाशवाद का अर्थ

यह जगत और इस जगत परके सजीव व निर्जीव पदार्थ जिन भिन्न २ विकृतियोंके परिणामके कारण युग २ में नवीन २ रूप धारण कर अंतिम विकृति-परिवर्तन के प्रभाव से वर्तमान स्थिति को प्राप्त हुए हैं, उन सम्पूर्ण विकृतियों को

एक कोश से होता है। इस कोश अर्थात मेनेरा का विकाश हो कर गर्भ अण्डे का रूप धारण करता है। कितनेक परिवर्तन के पश्चात् उसमें से "बिना खोपरी के हड्डीवाला शरीर बनता है। आगे जाकर उस गर्भ का आकार मछलियों के शरीर के समान हो जाता है। इस समय मनुष्य, कुत्ता व घोडे के गर्भ की परीक्षा करें तो तीनों समान जान पड़ेंगे। सिर्फ कद के भेद से कुछ भिन्नता मालूम होगी। गर्भ की इस स्थिति को देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि इस में से मनुष्य शरीर का ही विकाश होगा, आगे चलकर वह गर्भ मेंढक के समान शरीर धारण करता है और इस प्रकार कई परिवर्तन होने के पश्चात् गर्भ मनुष्य का रूप धारण करता है।

ये परिवर्तन गर्भाशय स्थित गर्भ मे होते जाते हैं। येही सब परिवर्तन मनुष्य के जाति विकाश के इतिहास की पुस्तक हैं। संक्षिप्त में यों कहिये कि गर्भ विकाश जाति विकाश के इतिहास का सूक्ष्म सार है। जिस जाति विकाश के होने में करोड़ों वर्ष व्यतीत हुए हैं उस विकाश का दिग्दर्शन गर्भ विकाश से केवल दश महीने या ४० सप्ताह में अपने को हो सकता है। गर्भ के विकाश क्रम पर जाति-विकाश क्रम की छाप पडने का एक कारण यह है कि जीव मात्र जो उसके बाप दादाओं के चिन्ह उत्तराधिकार रूप में मिलते हुए चले जाते हैं। उत्तराधिकार का अधिकार प्राणी वश परंपरा मे भोगते हुए आते हैं। जिस प्रकार जन्तुवर्ग में से विकाश प्राप्त हुए प्राणियों के गर्भ में जन्तुवर्ग के चिन्ह उत्तराधिकार रीति से प्रगट होना चाहिये। बिना खोपरीवाले प्राणियों के चिन्ह बिना खोपरीवाले प्राणियों में उत्तराधिकार रूप में उतरना चाहिये, और मत्स्य वर्ग के गर्भ में भी उसके भूतकालीन

अधिकांश पीढ़ियों के लक्षण मिलना चाहिये उसी प्रकार मानवी गर्भ में भी प्रारम्भ से लेकर अन्त तक की पीढ़ियों के सम्पूर्ण लक्षण दृष्टिगोचर होना चाहिये । गर्भ-विकाश में जो कुछ परिवर्तन होते हैं वे केवल पूर्व पीढी के ही स्मारक चिन्ह नहीं है। उनमें से कितनेक परिवर्तन तो प्राणियों के अपने स्वभाव (स्थिति के अनुकूल रहना) के कारण होते हैं। उत्तराधिकार और परिस्थिति के अनुकूल बन जाने का स्वभाव, इन दो तत्वो को लिये हुए ही गर्भ-विकाश व जाति विकाश में परिवर्तन होता गया है।

जब से गर्भ विकाश व जाति विकाश का सबंध विज्ञान वेत्ताओं ने जाना है तब से विकाशवाद का विकाश पूर्णतया होता गया है, विकाशवाद एक सुव्यवस्थित शास्त्र जब से बना है तब से ही विकाशवाद के क्षेत्र में कार्य करने-वालो को ठीक दिशा दिखाई दी है और तब से ही नये नये आविष्कार प्रगट होते हुए दिखाई देते हैं और विकाशवाद की सांकल की प्रारंभिक कडी लगती हुई जाती है, विकाशवाद की सम्पूर्ण सांकल अभी तक गूथी नहीं गई है । इसका कारण गर्भ विकाश में जो जो कलाऐं-गुण अपने को दिखाई देते है उन अधिकाश कला-गुणधारी प्राणी अभी जगत में वर्तमान नहीं है और जो प्राणी उस कला-गुण के अधिष्ठाता ज्ञात होते है उन प्राणियों के शरीर में भी करोडो वर्ष के पश्चात् अनेक परिवर्तन हो जाने से हमारे गर्भ-विकाश का भाष्य बहुत ही अस्पष्ट रह जाता है । गर्भाशय में भी मनुष्यो के कृतिम जीवन और भिन्न भिन्न परिस्थिति के योग से इतने आगन्तुक परिवर्तन हो गये हैं उन परिवर्तनों को गर्भ विकाश का भाष्य लिखने में सावधानी से टालना

साम्राज्य में भी चरितार्थ होती है। इस विश्वकी अनन्त बातों का यथार्थ ज्ञान होने के लिये हमारी बुद्धि में एक महान् विकाश होना चाहिये। अनेक ग्रह मालाओं से युक्त, अनेक सूर्यमालाओं से प्रकाशित, अनेक उल्कापिण्डों से व्याप्त, मेघ राज और वायु देवता का क्रीडाङ्गण, इस आकाश को देखिये, वह कितना अमर्याद, कितना व्यापक और अनन्त है। क्या हम अपनी चक्षुओं से उसका शतांश भी देख सकते हैं? परन्तु क्या इसके लिये मनुष्य स्वस्थ होकर बैठ गया? नहीं, उसने एक के बाद एक उपनेत्रों पर उपनेत्र का आविष्कार करके अपनी दृष्टि को सहस्रों गुणा अधिक बढाली है। आज, अमुक तारे का शोध लगा है, तो कल दूसरे ही का, आज अमुक मनुष्य ने ऐसी दूरबीन का आविष्कार किया है तो कल दूसरे ने उससे भी अधिक दृष्टि वाली का, कहने का सारांश यह कि इस प्रकार से मनुष्य ने अपनी दृष्टि को कई गुणा अधिक बढाली है। इस दूरबीन का प्रथम आविष्कार बिलकुल एक साधारण बात पर से हुआ है। निनेव्हा शहर के निम्रूड नामक राजवाडे के खण्डहर में सूक्ष्म दर्शक यन्त्र का पहिला कांच मिला था। उसको हम ब्रिटिश म्यूझियम में देख सकते हैं। यह कांच एक इञ्च लम्बा और डेढ़ इञ्च चौडा व दोनों ओर से फ़ूला हुआ है। सहस्रों वर्ष तक यह बहुमूल्य वस्तु बिलकुल निरुपयोगी पडी रही। केवल उसका उपयोग तबही होता था कि जब किसी की दृष्टि कम हो जाती थी या जब हीरे आदि के टुकडे किये जाते थे। केवल प्राचीन समय में ही नहीं, किन्तु तेरहवी शताब्दि तक लोगों ने उसकी ओर ध्यान न दिया। राजर बेकर साहब ने सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र व ... के विषय में कुछ निबन्ध लिखे थे, परन्तु उनकी ओर

भी लोगों ने कुछ ध्यान न दिया। महाराणी एलिझावेथ के समय में लेनार्ड डिगिन नामक एक महाशय के उक्त निबन्ध दृष्टि आया व उसने तदनुसार एक दूरबीन तैयार किया, परन्तु वह भी उस समय केवल अद्भुतालय के सुपुर्द किया गया। सत्तरहवीं शताब्दि के प्रारम्भ में हालैण्ड देश के चश्मे बनाने वाले कुछ व्यापारियो ने दूरबीन बनाने की ओर ध्यान दिया। केवल चश्मे ही तैयार न करके उन्होंने अपने पास के काच पर कुछ प्रयोग करना आरम्भ किये। उसके फलस्वरूप में सन् १६०८ में वर्तमान सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र का जन्म हुआ। उसी साल एक दूसरे चश्मे वाले ने एक दूरबीन तैयार की और उसके एक वर्ष पश्चात् ही ग्यालिलियो इस प्रकार की एक नली द्वारा आकाश का अनुसन्धान करने में प्रवृत्त हुआ, और उसने गुरु ग्रह के चन्द्र का पता लगाया। ग्यलिलियो का यह छोटा सा यन्त्र ही वढते वढते वर्तमान दूरबीन की प्रौढ अवस्था को प्राप्त हुआ है। कलिफोर्निया के माउण्ट विलसन पर एक दूरबीन है, उसके गोल काच की मध्यरेषा साठ इञ्च लम्बी और उस का वजन कोई एक टन है। परन्तु यह दूरबीन भी छोटी समझकर अमेरिका के एक धनाढ्य व्यक्ति ने इससे भी अधिक बडी दूरबीन तैयार कराने के लिये वहुत सा द्रव्य दिया है। इस दूरबीन के गोल कांच की मध्यरेषा सौ इञ्च और मोटाई वारह इञ्च रहेगी, और उसका वजन साढे चार टन का होगा। पुराने ढङ्ग की दूरबीनों की लम्बाई बहुत अधिक होती थी। कितनी ही दूरबीनों की लम्बाई तो छ सौ फुट से भी अधिक होती थी परन्तु अब यह क्रम बदल कर दूरबीनो की लम्बाई कम करके उनकी चौडाई वढाने से काम निकल सकता है। उसमें एक वात यह होती है कि इस

किया। उक्त साहब ने उसके सन्मुख एक दूसरा चिराग़ रक्खा, और उसकी बत्ती पर थोडा सा नमक बुरका दिया, तो उसमें से पीतवर्ण का प्रकाश निकलने लगा। तब किरकाफ साहब ने इसपर से यह अनुमान निकाला कि हम उस प्रकाश किरण के पीत भाग को इसके द्वारा अधिक उज्वल कर सकेंगे, परन्तु उनका अनुमान गलत निकला और अधिक उज्व लता तो दूर रही परन्तु पीतरेषा के स्थान में उनको एक काली रेषा दृष्टि आई। यह कैसे हुआ ? यह क्या विलक्षण चमत्कार हो गया ! इसका कारण यह है कि उस पहिले चिराग का प्रकाश दूसरे की अपेक्षा कुछ ठण्डा था क्योंकि चूने को जलने के लिये नमक की अपेक्षा अधिक उष्णता की आवश्य कता होती है। जिस समय उस श्वेत प्रकाश की पीत लहरें इस चिराग की पीत लहर पर आकर गिरीं, उस समय उस ने अपनी सारी शक्ति, उसको अपने समान उष्णता देने में खर्च कर दी। अतएव उस पीत लहर का नाश होकर हमको उस स्थान पर प्रकाशाभाव-दर्शक काली रेषा दृष्टि आई। यही बात सूर्य और तारों में भी चलती है। आकाश के मध्य एक अति प्रखर ज्वलन्त गोला है, और उसके आसपास उसी की भाफ से बने हुए कुछ बादल हैं। ये बादल उस मध्यवर्ती ज्वलन्त गोले से कुछ कम प्रखर हैं, अतएव जब उस प्रकाश-गोल में से किरण चलती है, तब वह प्रथम इन बादलों में प्रवेश कर जाती है। और इसीलिये सूर्य व तारों के विश्लेषण-पट spectaum में कितनी ही श्याम-रेषा दृष्टि आती हैं। इन कृष्ण-रेषाओं का एक मानचित्र तैयार किया गया है। इसी के द्वारा वैज्ञानिकों ने यह निश्चय किया है कि कौन सी श्याम-रेषा किस तत्त्व का अभाव प्रदर्शित करती है।

अब प्रयोगकर्त्ता किसी तारका का प्रकाश लेकर उसका पृथक्करण करते हैं और गैसकी वर्ण विश्लेषण-पट में परीक्षा कर के उस तारका में के पदार्थों के अस्तित्व का निश्चय कर लेते हैं। रसायन शास्त्र के विद्वान भी केवल पृथकरण में ही इसी तत्व का उपयोग करते हैं। सन् १८६५ ई० में सर विलियम रेमजे क्लिव्हाइट नामक खनिज द्रव्य का पृथकरण किया। आपने प्रथम उस द्रव्य को एक अत्यन्त प्रज्वलित अग्नि की भट्टी में जलाकर उसको वायुरूप में परिवर्तित किया, इसके पश्चात उस वायुरूप गेस की विश्लेषण यन्त्र द्वारा परीक्षा की। तब उनको यह विदित हुआ कि विश्लेषण-यन्त्र के (D3) भाग में एक पीत-रेषा आती है। यह रेषा उस रेषा के समान थी कि जिसको किरकोफ साहब ने नमक जलाकर उत्पन्न की थी। और यही (D3) रेषा नारमन ला कियर साहब को सूर्य के उठावदार भाग की परीक्षा करते समय मिली थी। इस प्रकार से हेलियम तत्व का आविष्कार हुआ था। यही तत्व रेडियम से निकलने वाली किरणों का परीक्षण करते समय उनमें भी मिला था।

वर्तमान समय का विश्लेषण-यन्त्र आधुनिक विज्ञान-शास्त्र में एक बडी मार्के की व अद्भुत वस्तु है। आजकल अति सूक्ष्म प्रयोगों में पहिले के समान त्रिकोणकृति कांच का उपयोग नहीं किया जाता है। उसके स्थान में आजकल एक यस्परसी नामक धातु का खडबडा सा साधारण टुकडा उपयोग में लिया [illegible] या है मानो मनुष्य ने अपनी [illegible] कर दी है। यह खडबडा [illegible] ने रेषाएं [illegible] पनी [illegible] न-

कुल निरूपयोगी हो जाता है। इसके सिवाय रेषायें ठीक सम समानान्तर आनी चाहियें, और एक इञ्च में कमसे कम सत्तरह से लगाकर बीस हजार तक रेषाय होनी चाहियें। यह कितना कठिन काम है इसका पाठकगण स्वयं अनुमान कर सकेंगे। उपरोक्त अति सूक्ष्म और महत्वदायक काम एक यन्त्र द्वारा होता है, जिसको एच. ए रोलएड साहब ने अपने दीर्घ परिश्रम द्वारा तैयार किया है। यह यन्त्र उस स्थान पर रखा जाता है कि जहां सम उष्णता-मान हो। वर्तमान में यह यन्त्र जान्स हापकिंस विश्वविद्यालय के एक तलघर में रखा हुआ है। वह स्वयं चलता रहता है। इसके द्वारा विश्लेषण-यन्त्र तैयार करने में लगभग छ दिन रात लगते हैं। ये रेषायें एक ऐसे टुकडे पर निकालने से दूरबीन की आवश्यकता नहीं रहती है। वेधशाला के ऊपरी छत पर से प्रकाश-किरण अन्दर प्रवेश करती है और वह इस पञ्च धातु मिश्रित टुकडे पर आकर गिरता है व हमको उसका विश्लेषण-पट प्राप्त होता है। फिर चाहे आप उसका फोटो ले लीजिये, या केवल उसे नेत्रों ही देख लीजिये। विश्लेषण-यन्त्र एक और दृष्टि से महत्वदायक है। वह यह कि उसको हमारा अन्धत्व स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाता है। सूक्ष्म-दर्शक और दूर-दर्शक यन्त्र हमारे नेत्रों की शक्ति बढाता है, परन्तु विश्लेषण यन्त्र यह बतलाता है कि आप लोग बिलकुल अन्धे हैं। विश्लेषण पट की दोनों ओर हमारे नेत्रों को न दीख सकें, ऐसी वर्णावली है। इनमें से कुछ लहरें अति दूर होने के कारण हमें नहीं दीखती हैं, और अन्य लहरें अति सूक्ष्म होने के कारण हमारे दृष्टि-पथ में नहीं आती हैं। प्रकाश-किरणों का सबसे बडा भाग हमको दृष्टिगत होता है। हमारे दृष्टिगत होने वाली वर्णमाला में से एक इनफारे

दृष्टि नहीं आता है। सन् १८०० में सर विलियम हरशेल ने इस रङ्ग के भाग में उष्णता मापक यन्त्र रखा, तब उनको यह विदित हुआ कि शीशी का पारा ऊपर चढ गया है, और इस ...कार की परीक्षा से इस अदृश्य रङ्ग का शोध लगा था। इस ...सिवाय इस वर्णमाला के अन्त वाले व्हायोलेट रङ्ग के ... भी एक अल्ट्रा व्हायोलेट नामक वर्ण पट है। यह भी ...ी दृष्टि से अदृश्य रहता है। सन् १८०१ में जे० डब्ल्यू० ... साहब ने उस भाग के मध्य में फोटो का कागज ...र इस रङ्ग का अस्तित्व खोज निकाला था। उस समय ...गज पर इस रङ्ग की रासायनिक क्रिया का कुछ परि-... तरह से इस रङ्ग का ज्ञान प्राप्त हुआ।

...स बन्द न हुआ होगा तो एक दिन ...लोग इन इनफ्रारेड वर्ण-लहरों को ... भावी मानव सन्तान को ... होगा, क्योंकि सूर्य ... है। परन्तु उनमें ... लोगों को किसी ... उस कोठरी को ... तो उसमें भी ... पतले रबर ... प्रकाश मिल ... सूर्य का वेध ले ... प्राणी होवेंगे, ... से देख सकते ... बडे भाग्यवान ... कि इनफ्रारेड

कुल निरुपयोगी हो जाता है। इसके सिवाय रेखाएं ठीक सम समानान्तर आनी चाहियें, और एक इञ्च में कमसे कम सत्तरह से लगाकर वीस हजार तक रेखाए होनी चाहियें। यह कितना कठिन काम है इसका पाठकगण स्वयं अनुमान कर सकेंगे। उपरोक्त अति सूक्ष्म और महत्वदायक काम एक यन्त्र द्वारा होता है, जिसको एच ए रोलण्ड साहब ने अपने दीर्घ परिश्रम द्वारा तैयार किया है। यह यन्त्र उस स्थान पर रखा जाता है कि जहां सम उष्णता-मान हो। वर्तमान में यह यन्त्र जान्स हापकिंस विश्वविद्यालय के एक तलघर में रखा हुआ है। वह स्वय चलता रहता है। इसके द्वारा विश्लेपण-यन्त्र तैयार करने में लगभग छ दिन रात लगते है। ये रेखाए एक ऐसे टुकडे पर निकालने से दूरवीन की आवश्यकता नहीं रहती है। वेधशाला के ऊपरी छत पर से प्रकाश-किरण अन्दर प्रवेश करती है और वह इस पञ्च धातु मिश्रित टुकडे पर आकर गिरता है व हमको उसका विश्लेपण-पट प्राप्त होता है। फिर चाहे आप उसका फोटो ले लीजिये, या केवल उसे नेत्रों ही देख लीजिये। विश्लेपण-यन्त्र एक और दृष्टि से महत्वदायक है। वह यह कि उसको हमारा अन्धत्व स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाता है। सूक्ष्म-दर्शक और दूर-दर्शक यन्त्र हमारे नेत्रों की शक्ति वढाता है, परन्तु विश्लेपण यन्त्र यह वतलाता है कि आप लोग विलकुल अन्धे हैं। विश्लेपण पट की दोनो ओर हमारे नेत्रों को न दीख सकें, ऐसी वर्णावली है। इनमें से कुछ लहरें अति दूर होने के कारण हमें नही दीखती है, और अन्य लहरें अति सूक्ष्म होने के कारण हमारे दृष्टि-पथ में नहीं आती हैं। प्रकाश-किरणों का सबसे वडा भाग हमको दृष्टिगत होता है। हमारे दृष्टिगत वाली वर्णमाला में से एक इनफ्रारेड नामक वर्ण-पट हमको

दृष्टि नहीं आता है। सन् १८०० में सर विलियम हरशेल ने इस रङ्ग के भाग में उष्णता मापक यन्त्र रखा, तब उनको यह विदित हुआ कि शीशी का पारा ऊपर चढ गया है, और इस प्रकार की परीक्षा से इस अदृश्य रङ्ग का शोध लगा था। इस के सिवाय इस वर्णमाला के अन्त वाले व्हायोलेट रङ्ग के पहले भी एक अल्ट्रा व्हायोलेट नामक वर्ण-पट है। यह भी हमारी दृष्टि से अदृश्य रहता है। सन् १८०१ में जे० डब्ल्यू० रिक्टर साहब ने उस भाग के मध्य में फोटो का कागज रख कर इस रङ्ग का अस्तित्व खोज निकाला था। उस समय उस कागज पर इस रङ्ग की रासायनिक क्रिया का कुछ परिणाम हुआ, और इस तरह से इस रङ्ग का ज्ञान प्राप्त हुआ। यदि मनुष्य जाति का विकास बन्द न हुआ होगा तो एक दिन ऐसा आने वाला है कि जब लोग इन इनफ्रारेड वर्ण लहरों को स्पष्ट देख सकेंगे। इस प्रकार की भावी मानव-सन्तान को सूर्य प्रकाश हमारे समान ही उपयोगी होगा, क्योंकि सूर्य प्रकाश में उक्त सारे रङ्गों का मिश्रण मिश्रित है। परन्तु उनमें एक बात यह विशेष होगी कि यदि उन लोगों को किसी अँधेरी कोठरी में बन्द कर दिया जायगा, और उस कोठरी को यदि भाफ की नलियों द्वारा उष्ण रखा जावेगा तो उसमें भी वे स्पष्टतया पढ सकेंगे। यदि उनकी खिडकियां पतले रबर की भी बनाई जावेंगी तो भी उनको अन्दर पूर्ण प्रकाश मिल सकेगा, और वे उसी प्रकार के कांच द्वारा सूर्य का वेध ले सकेंगे। कदाचित पृथ्वी की पीठ पर ऐसे भी प्राणी होवेंगे, जो हमसे अदृश्य इनफ्रारेड लहरों की सहायता से देख सकते हों। यदि ऐसा ही हुआ तो हम समझेंगे कि वे बडे भाग्यवान हैं। परन्तु नहीं, क्योंकि विज्ञान शास्त्र कहता है कि इनफ्रारेड

प्रकाश लहरों की सहायता से देखने वाले प्राणियों की दृष्टि में एक न्यूनता रहती है। वह यह है कि यदि हम इस प्रकाश लहर के द्वारा वृत्त, आकाश आदि का फोटो लेते हैं तो हमें नील आकाश की जगह बिलकुल काला रङ्ग दृष्टि आता है, और वृक्षों के शिखर ऐसे शुभ्र दिखते हैं कि जैसे हिमालय की हिमाच्छादित चोटियां। यह रङ्ग में फेर बदल इस प्रकार हुआ कि जब हमने इनफ्रारेड प्रकाश-लहरों की सहायता से फोटो लिया था, उस समय उस रङ्ग के अतिरिक्त सब रङ्गों को हमने छोड दिया। अतएव इसीलिये फोटो में नीले रङ्ग का अभाव दृष्टि गोचर हुआ। हम वर्तमान में जो छाया चित्र उतारते हैं, उसमें केवल अलट्रा व्हायोलेट प्रकाश लहरों का उपयोग होता है। यदि हम कमरे के कांच पर नाम का परदा लगा दें, और इस प्रकार से हम अल्ट्रा व्हायोलेट के सिवाय सब प्रकाश-लहरों का उपयोग करें तो छायाचित्र बहुत ही उत्तम आवेगा। उस समय हमको फोटोग्राफी में अलट्रा किरणें लगेंगी। इन किरणों में गजब की रासायनिक शक्ति भरी हुई है। यदि इन किरणों का अन्वेषण आजसे तीन सौ वर्ष पूर्व हुआ होता तो कीमियागर लोगों को यह मालूम पडने लगता कि जैसे हमको पारस पत्थर ही मिलगया है। क्योंकि इनके द्वारा एक किस्म का फास्फरस तत्काल दूसरे किस्म में बदला जासकता है। उसके द्वारा हम महा भयकर स्फोट तक कर सकते हैं। इसके सिवाय इसके द्वारा हम किसी पदार्थ में उष्णता उत्पन्न न करते हुए भी प्रकाश कर सकते हैं। उसके द्वारा शरीर परके फोडा फुन्सी और कुछ प्रकार के त्वचा रोगों को तत्काल आराम हो जाता है। इनहीं किरणों द्वारा वृक्षों के हरित पल्लवो में का कारबानिक

एसिड और पानी का शर्करा और स्टार्च में परिवर्तन हो जाता है। कितने ही ऐसे पदार्थ हैं कि जो साधारण प्रकाश को अपने में से पार नहीं जाने देते हैं, ऐसे पदार्थों में से भी यह किरणें पार निकल जाती हैं। यदि पृथ्वी पर ऐसे जीव हो कि जो इन किरणों की सहायता से देख सकते हैं, तो उनको चाहे जैसी अन्धेरी कोठरी में भी बन्द कर दिया जावेगा, तो भी ये उसमें स्पष्ट देख सकेंगे। अनेक मनुष्य यह कहने लगेंगे कि भाई इनदो प्रकार की प्रकाश लहरों को हम नहीं देख सकते तो इसमें हमारी, ज्ञानेन्द्रियो में सब से अधिक उन्नत केवल नेत्र ही हैं, और यदि उनमें ही न्यूनता रह गई तो क्या यह हानि की बात नहीं है ? खैर, पर मनुष्य प्राणी इसी पर निर्भर होकर बैठा नहीं रहा। उसने अपनी अद्भुत प्रतिभा-शक्ति और मनन द्वारा नये नये यन्त्रों का आविष्कार कर उसके आसपास की भूमि पर वारम्बार चढाई करना शुरू किया है। सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र की सहायता से नित नये नये सूक्ष्म जन्तुओं का पता लगता जाता है। प्रथम ही प्रथम सत्तरहवीं सदी में ए० व्हान० ल्युव्हेनाक नामक वैज्ञानिक को एक सूक्ष्म जन्तु दृष्टि आया, और साहब ने इस शास्त्र को जब अपने हाथ में लिया, उस समय से इसको शास्त्रीय रूप मिला है। आप आश्चर्य करेंगे कि अभी तक ,इन रोग प्रसारक सूक्ष्म जन्तुओं का पूरा पूरा शोध नहीं लगा है, क्योंकि आज कल के जमाने का सब से अधिक सुधरा हुआ सूक्ष्म दर्शक यन्त्र भी अनेक जाति के सूक्ष्म जन्तुओं का पता न लगा सका है। सूक्ष्म-दर्शक यन्त्रों की भी सीमा निश्चित रहती है। उनकी शक्ति एक इन्च टुकडे १०००० हिस्से लगाकर २००,००० हिस्से तक देखने की है , इससे अधिक नहीं। कभी कभी ऐसा भी हो

जाता है कि इस सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र में से वस्तु की स्थिति कुछ धुन्धली दीखने लगती है, तो इसके लिये यह किया जाता है कि उक्त वस्तु आस पास की वस्तुओं से भिन्न और स्पष्ट दिखने के लिये उसे रंग दिया जाता है। यह रंग डम्बर से तैयार होने वाले रंगों के संशोधन से ही प्राप्त होता है। अभी तक ऐसे जन्तुओं की अनेक जातियां अज्ञात ही हैं, जिनका कि पता केवल रोगोत्पादन द्वारा ही मिलता है। क्योंकि आजतक उनको किसी ने भी नहीं देखा है। उनमें से अनेक इतने बड़े हैं कि वे फिल्टर पेपर में नहीं जा सकते, परन्तु अभी तक उनको ठीक तरह से रंगते नहीं बना है, और इसीलिये वे दृष्टि नहीं आये हैं। यदि हमको बहुत ही सूक्ष्म पदार्थों की परीक्षा करनी है तो इस के लिये मायक्रोस्कोप की अपेक्षा इण्टर फिरामेटर यन्त्र ही अधिक उपयोगी होगा इस यन्त्र की सहायता से मनुष्य एक इञ्च एक टुकडे के $\frac{1}{५०००००}$ हिस्से का माप कर सकता है। शिकागो युनिव्ह र्सिटी के प्रो० मायकलसन् ने जिस तत्व के आधार पर इसकी रचना की है, वह बिलकुल साधारण है। इस यन्त्र में प्रकाश-लहरों के अति सूक्ष्म भाग का उपयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ हमने किसी तालाव में एक गज फासले पर दो पत्थर डालें, तो उन दोनो स्थानों से दो गोल लहरें उत्पन्न होंगी। जब इन दो भिन्न स्थानों से उत्पन्न हुई लहरें एक दूसरी पर आकर गिरेंगी, तब एक तीसरा ही परिणाम निकलेगा। हमारे विज्ञ पाठक इस बात को तो जानते ही होंगे कि लहरों के दो भाग रहते हैं, एक ऊंचा और एक नीचा। जब एक स्थान की ऊंची लहर दूसरे स्थान की नीची लहर पर आकर गिरेगी, तब वहां का पानी स्थिर हो जावेगा। क्योंकि

इन दो स्थानों की लहरें भिन्न भिन्न प्रकार की होने से एक दूसरी का सयोग होते ही लहरें नष्ट होकर पानी स्थिर हो गया। यदि इसके विरुद्ध एक स्थान की ऊची लहर दूसरे स्थान की ऊची लहर पर आकर गिरेगी तो दोनों सम लहरो का सयोग होकर,उस स्थान का पानी दुगुने जोर से ऊपर उडने लगेगा। इसी तत्व का अवलम्ब कर उक्त यन्त्र की रचना की गई है। इस यन्त्र में दो स्थानों से आने वाली प्रकाश लहरो का उपयोग किया जाता है। वे लहरें ऊपर वर्णन किये अनुसार एक दूसरी पर गिरती हैं, और उसके परिणाम में प्रकाश अथवा अन्धकार उत्पन्न होता है। इसके कारण दृष्टि आनेवाली काली सफेद पट्टियो को इएटरफिअरन्स फ्रिन्जेज कहते हैं। यह इस यन्त्र की तात्विक कथा हुई अब हमें यह देखना है कि इस यन्त्र में इसका किस प्रकार से उपयोग किया जाता है। प्रकाश किरणों की एक शलाका एक फूले हुए कांच पर आकर गिरती है। उसमें से बाहर निकल कर वह किरणें एक दूसरी के सम समान रूप से जाती हैं। वहा से निकल कर वे किरणें एक चौकोनी पर गिरती हैं। की एक ओर ,चादी की की होती है। इस प्रकार से रखी जाती है कि शलाका ठीक उसके मे पैंतालीस अश का कोन करती है। उन किरणों में से कुछ का तो परावर्तन होता है और कुछ उस में से आरपार निकल जाती हैं। इस प्रकार से हमने एक ही प्रकाश शलाका के दो भिन्न भाग किये। अब उपरोक्त दोनो भाग उस पर आकर गिरते हैं, और एक दूसरे को काटकर कोन बनाते हैं, और पश्चात् पुन परावर्तित होकर उक्त सरल रेपा में मिल जाते हैं। इस प्रकार से इन किरणों की लहरें एक दूसरी पर

गिरती हैं, और हमको इण्टरफिअरन्स का चमत्कार दिखलाती हैं। ये पट्टियां एक दूरबीन की नलियों के समान नली द्वारा दीख सकती हैं। इस यन्त्र का प्रत्येक हिस्सा इतनी सूक्ष्म दृष्टि और बारीकी से बनाया जाता है कि कुछ कहा नहीं जाता। यदि इस यन्त्र के किसी भी हिस्से में तनिक सी भी खराबी हुई हो तो वह तत्काल दृष्टि पड जाती है। इतना ही नहीं परन्तु यदि आप अपना हाथ उस यन्त्र के समीप ले जावेंगे तो उसकी उष्णता से आपको नये नये और हीपट्टे दीखने लगेंगे। और यदि कहीं आपने एका दी काडी सुलगा दी, तो फिर कुछ पूछिये ही मत, आपको इन पट्टों में विलक्षण चमत्कार दृष्टि आवेंगे। इस यन्त्र का उपयोग वर्तमान में धातु गलाने वाले बडे बडे यन्त्रों की उष्णता के नापने में भी किया जाता है। इस यन्त्र की सहायता से प्रो० मायकलसन् ने पृथ्वी के प्रत्येक पदार्थ पर पृथ्वी की आकर्षण शक्ति का प्रभाव कितना पडता है, यह भी नाप लिया। और इस यन्त्र के द्वारा अनेक आश्चर्यकारक कार्य्य होते हैं॥

अध्याय चौदहवां

खगोल विज्ञान

चन्द्र

चन्द्र व्यापारी लोगों के बहुत काम आता है क्योंकि यही ज्वार भाटे का मुख्य उत्पादक है। मल्लाह लोग चन्द्र से घडी का काम लेते हैं। मल्लाहों के पास तीन चार घडियां रहती हैं, जिनके मिलाने से उन्हें ठीक टाइम मालूम हो सका है।

परन्तु चन्द्र एक ऐसी अच्छी घडी है कि उसमें एक मिनिट का भी फर्क नहीं पडता। कई कवियो ने चन्द्र का गुण गान किया है। उपन्यासों में प्रकृति की शोभा वर्णन करते समय लेखक चन्द्र को कभी नहीं भूलता। चन्द्र हमारी पृथ्वी का निकट सम्बन्धी और उससे बहुत पास है। कवियों का प्यारा, व्यापारियों का सहायक एव हितकर्ता और मल्लाहों को घडी के समान काम देने वाला चन्द्र कितना उपयोगी है! अतएव पृथ्वी के बाद इसी का वर्णन करना अत्यावश्यक है।

चन्द्र का क़द

दो पदार्थों की परस्पर तुलना करने से उनकी छुटाई बडाई मालूम होजाती है। चूहा बिल्ली को और बिल्ली हाथी को राक्षस समझती है। आकाश में हमारे चर्म चक्षु स दिखाई देने वाले तारे चन्द्र से कई गुना अधिक बडे हैं, किन्तु चन्द्र पृथ्वी के अधिक पास होने के कारण बहुत बडा दिखाई देता है। पतङ्ग जब हम उडाते हैं, तो हमें बडी मालूम होती है परन्तु ज्यों २ वह ऊँची चढती जायगी त्यो २ छोटी नजर आने लगेगी। बैलून पृथ्वी पर बहुत बडा दिखाई देता है, परन्तु जब वह आकाश में दो मील ऊपर हो, तब बहुत ही छोटा नजर आता है। पृथ्वी और चन्द्र में २४०००० मील का अन्तर है। परन्तु तारे इस से भी ज्यादा दूर हैं, जिससे वे बहुत ही छोटे नजर आते हैं। इसी सबब से तारे छोटे और चन्द्र बडा दिखाई देता है परन्तु वास्तव में चन्द्र ही छोटा है और वह पृथ्वी के पास होने से बडा दिखाई देता है।

चन्द्र और पृथ्वी

आकृति से विदित हो जायगा कि चन्द्र पृथ्वी से कितना छोटा है। पृथ्वी का व्यास ७९१४ मील और चन्द्र का

२१६० मील है। हम साधारणत. कह सके हैं कि पृथ्वी का व्यास चन्द्र के व्यास से चैागुना है। यदि हम ३ इंच व्यास वाले टेनिस के गेंद को चन्द्र मानलें तो वारह इंच व्यास फुटवाल चन्द्र का व्यास माना जासक्ता है। ६४ चन्द्र मिलकर पृथ्वी के वरावर होंगे, हम ने स्थूल अक लिया है इससे ६४ चन्द्र पृथ्वी के बरावर होते हैं। परन्तु यदि ऊपर लिखे हुए ठीक अक लिये जायँ, तो ५० चन्द्र मिलकर पृथ्वी के वरावर होंगे। इन दोनों के क्षेत्रफल की समता की जाय, तो पृथ्वी का क्षेत्र फल चन्द्र से (स्थूलमान से) १६ गुना और ठीक अक लेने से १३½ गुना होता है और यह ½ भाग पृथ्वी, पृथ्वी के क्षेत्र फल का १⁄₁₃₅ वाँ भाग है। यह यूरोप के क्षेत्रफल से दुगुना और हिन्दुस्थान के क्षेत्रफल से चैागुना होगा। पृथ्वी पर के पदार्थों का वजन चन्द्र के पदार्थों की अपेक्षा अधिक है अर्थात् ८० चन्द्रों का वजन पृथ्वी के वजन के वरावर होगा।

पृथ्वी की प्रदक्षिणा।

अच्छी तरह ध्यान लगा कर देखने से मालूम होगा कि चन्द्र प्रति दिन अपनी जगह वदलता है। हम द्वितिया के दिन उसे जिन तारो के पास उदय होता देखते हैं तृतिया के दिन उसी स्थान पर उदय नहीं होता। इस तरह चन्द्र एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र में जाता है। सांझ के समय चन्द्र को अच्छी तरह देखलो और, प्रात काल उठकर फिर देखो तो तुम्हें वह कुछ खिसका हुआ नज़र आयेगा। इस तरह एक नक्षत्र से निकल पूर्व की ओर जाते जाते फिर उसी नक्षत्र में आने के लिये चन्द्र को २७⅓ दिन लगते है। एक नक्षत्र से निकल कर फिर उसी नक्षत्र में लैाट आने से यह वात सिद्ध होती है कि चन्द्र पृथ्वी की परिक्रमा करता है।

चन्द्र को एक वर्तुल में फिरने के लिये २७ दिन लगते हैं अर्थात् वह एक दिन में १३½° चलता है। इसी परिक्रमा के कारण वह कभी जल्दी और कभी देर से उदय होता है। कल्पना करो कि पौर्णिमा के चन्द्र और एक नक्षत्र सायकाल को सात बजे एक साथ ही उदय हुए। दूसरे दिन चन्द्र १३½° पूर्व को खिसक जाता है अर्थात् उस नक्षत्र के दिन १३½° ऊपर चढ आने पर चन्द्रोदय होता है। हम सूर्य की गति पर से दिन ठहराते हैं और सूर्य पृथ्वी की वार्षिक गति के कारण एक अंश पूर्व में खिसका हुआ नजर आता है। चन्द्र भी प्रति दिन १३½ पूर्व में खिसकता है चन्द्र और सूर्य में १२½° का अन्तर है। सूर्य २४ घंटे में ३६०° फिरता है अर्थात् वह ४ मिनिट में १° चलता है और १२½° रास्ता वह ५० मिनिट में तय करता है। अतएव कल चन्द्र ५० मिनिट देर से उदय होगा।

चन्द्र का धुरी पर फिरना

जो पदार्थ अपनी धुरी पर फिरता है। वह एक चक्कर में चारो दिशाओं में अपना मुख कर लेता है। जो पदार्थ इस प्रकार चारो दिशाओं में अपना मुख कर सक्ता है वह अवश्य ही अपनी धुरी पर फिरता है। चन्द्र पृथ्वी की ओर अपनी एक बाजू रख धुरी पर फिरता है और इस चक्कर में वह अपना मुख चारो दिशाओं में फिरा सक्ता है। अतएव हम यह कह सक्ते हैं कि चन्द्र अपनी धूरी पर फिरता है। उसका धूरी पर फिरने का और परिक्रमा करने का समय एक ही है। यदि हम किसी वृक्ष की ओर मुख रख उसके चारो ओर चक्कर लगावें, तो प्रति ९०° पर दिशा बदलती जायगी। शुरू में उस का मुख दक्षिण दिशा की तरफ होगा तो ९०° चलने पर उत्तर

की ओर हो जायगा। फिर ६०° चलने पर पश्चिम की ओर और अंत में ६० चलने पर वह अपनी जगह पर जहाँ से कि रवाना हुआ था, फिर आजायगा।

चंद्र का धुरी पर फिरना

उपरोक्त आकृति में एक लडका अपना मुख टेबल की ओर रख उसके चारो ओर फिरता है। ऊपर के चित्र को ध्यान लगाकर देखने से अथवा अनुभव से मालूम हो जायगा कि उसके चारो ओर चक्कर लगाने से फिरने वाले का मुह चारो दिशाओं की ओर हो जायगा। चन्द्र पृथ्वी की परिक्रमा करता है तब उसकी एक ही बाजू पृथ्वी की ओर रहती है। चन्द्र फिरता है तब उसके पृष्ठ भाग वाले चित्रों की जांच करने से मालूम होता है कि वे बिल्कुल नहीं बदलते। वे चन्द्र के पृष्ठ पर एक ही स्थान पर नजर आते हैं।

जो आकाशी पदार्थ किसी दूसरे पदार्थ की ओर अपनी एकही बाजू रख कर फिरता है उसकी प्रदक्षिणा का और धुरी पर फिरने का समय एक ही होता है।

चान्द्रमास और नाक्षत्रमास

जो पृथ्वी स्थिर होती तो चान्द्रमास और नाक्षत्रमास में कुछ भी फर्क नहीं होता। चन्द्र एक नक्षत्र से निकल कर फिर उसी नक्षत्र में जितने समय में आता है उसे नाक्षत्र मास कहते हैं। चन्द्र, सूर्य और पृथ्वी जिस स्थिति में हो उसी स्थित में पुन आने में जितना समय लगता है उसे चान्द्रमास कहते हैं। पौर्णिमा से पौर्णिमा या अमावस्या से अमावस्या तक का समय चान्द्रमास कहलाता है। नाक्षत्रमास लगभग २७½

दिन और चान्द्रमास २६½ दिन का होता है। इस का कारण यह है कि चन्द्र अपने मार्ग पर तो फिरता है पर पृथ्वी के मार्ग पर भी फिरता है। चन्द्र एक नक्षत्र से निकल कर फिर उसी नक्षत्र में २७⅓ दिन में आता है परन्तु इतने ही समय में पृथ्वी २७° आगे बढ जाती है। इसलिये चन्द्र को २७° और अधिक चलना पडता है चन्द्र प्रति दिन १३⅕° की चाल से दो दिन में २७° मार्ग तय कर लेता है इसीलिये चान्द्रमास २६½ दिन का होता है।

चन्द्र का अन्तर

चन्द्र पृथ्वी से २४०००० मील दूर है। बिल्कुल ठीक अन्तर २३८८४० मील है। कल्पना करो कि एक रेलगाडी प्रति घण्टा ४० मील चलती है तो उसे चन्द्र तक पहुँचने में ६००० घंटे अर्थात् २५० दिन लगेंगे। इस अन्तर को हम दूसरी तरह से भी नाप सकते हैं विषुवत वृत पर दस बार रस्सी लपेटने से जितनी रस्सी लगेगी उतनी ही दूरी पर चन्द्र है। कल्पना करो कि हमने एक ऐसी तोप बनवाई जिसका शब्द वहा तक पहुँच सका है। यदि वह तोप छोडी जाय, तो छूटने के १५ दिन बाद उसकी आवाज चन्द्र तक सुनाई देगी।

चन्द्र के फिरने का मार्ग भी अंडे के समान है इससे वह कभी हमारे पास और कभी हम से दूर दिखाई देता है। इसी कारण से चन्द्र कभी बडा और कभी छोटा दिखाई देता है। पृथ्वी के अंडाकृति मार्ग के एक विन्दु में सूर्य है वैसे ही चन्द्र के अंडाकृति मार्ग के एक विन्दु में पृथ्वी है। चन्द्र का मार्ग पृथ्वी के मार्ग पर ५° कोण बनाता हुआ उसे काटता है। जिस विन्दु पर विपुवत वृत और क्रांति वृत्त एक

दूसरे को काटते हैं उस विन्दु को विषुवत विन्दु कहते हैं। इसी प्रकार चन्द्र का मार्ग पृथ्वी के मार्ग को जिन दो विन्दुओं पर काटता है उन्हें राहु और केतु कहते हैं।

तिथि

चन्द्रमास तीस भागों में विभक्त किया गया है और उनमें से प्रत्येक भाग को तिथि कहते हैं। २९३ दिन को तीस भाग में बाँटने से प्रत्येक तिथि छोटी होती है और दिवस के समान चान्द्र दिवस भी छोटे बडे होते हैं। क्योंकि चन्द्र का मार्ग लम्बा वर्तुलाकार है इसलिये वह उस पर कभी तेजी से और कभी धीरे धीरे चलता है। एक तिथि ५४ से लगाकर ६५ घडी तक रहती है। व्यवहार में सूर्योदय के समय जो तिथि होती है वही उस रोज की तिथि मानी जाती है। बङ्गाल में चान्द्र मास नहीं माना जाता, इससे वे १ से ३० तक तिथि गिनते हैं। कल्पना करो कि आज सूर्योदय के बाद सप्तमी दो घडी तक रहेगी। अब कल सूर्योदय के पहिले अष्टमी बीतकर नवमी लग जायगी। अतएव आज सप्तमी और कल नवमी मानी जायगी और सूर्योदय के समय अष्टमी न होने से उसका क्षय माना जायगा। कोई तिथि ६४ या ६५ घडी तक भी रहती है। कल्पना करो कि आज सूर्योदय के समय दो घडी द्वितिया ६४ घडी की होने से कल सूर्योदय होने पर वह दो घडी और शेष रहेगी। अतएव दोनों दिन द्वितिया ही मानी जायगी।

अधिक मास

सूर्य एक राशि से निकल कर दूसरी राशि में जितने समय में जाता है उसे सङ्क्रांति कहते हैं। सूर्य धन राशि से निकल मकर राशि में प्रवेश करता है उस दिन मकर

संक्रान्ति होती है। एक संक्रांति के समय को सौरमास कहते हैं। हम लोग चान्द्रमास मानते हैं, सौरमास नहीं। हिन्दुस्थान के बहुत से भागों में सौरमास माना जाता है। जिस चान्द्रमास में सूर्य की संक्रान्ति नहीं होती वह अधिक मास माना जाता है। चान्द्रमास २६ दिन ३१ घड़ी ५० पल का और सौरमास ३० दिन २६ घड़ी १६ पल ११ विपल का होता है। इन दोनो में ५४ घड़ी ५४ पल ३१ विपल का अन्तर होता है। जब यह अन्तर बढ़ते बढ़ते २६ दिन ३१ घड़ी ५० पल का हो जाता है तब एक अधिक मास माना जाता है अर्थात् ५ वर्ष में लगभग दो अधिक मास आते हैं। संवत् १६६३ में एक अधिक मास था अर्थात् उस वर्ष दो चैत्र मास माने गये थे।

क्षयमास

जिस चान्द्रमास में सूर्य की दो संक्रान्ति आ जाती हैं वह मास क्षय होता है। जैसे शुक्ल प्रतिपदा को एक संक्रान्ति बैठे और उसी मास की अमावस्या को दूसरी संक्रान्ति लग जाय तो वह क्षयमास गिना जायगा अर्थात् वह वर्ष ११ मास का होगा। जब सूर्य की गति अधिक होती है तब सौरमास चान्द्रमास से छोटा होता है। शीतकाल में सूर्य पृथ्वी के पास आ जाता है इससे उसकी गति तेज होजाती है। वृश्चिक धन और मकर राशि में सूर्य की गति तेज होती है, इसलिये उन राशियों में सूर्य चान्द्रमास से कम समय में एक राशि में फिरता है। क्षयमास हमेशा इन्हीं तीनो राशियो के सम्बन्ध में आता है, अर्थात कार्तिक, मार्गशीर्ष पोष और माघ मास का ही क्षय होता है। क्षयमास लिखने की यह रीति है कि दोनो महीनों

का युग्म लिखा जाता है। संवत १९८८ में पौष शुक्र प्रतिपदा को मकर संक्रान्ति हुई माघ मावमास की अमावस्या को कुंभ संक्रान्ति हुई। इसलिये उस वर्ष पौष और माघ का युग्म लिखा गया और पौषमास का क्षय माना गया। एक बार क्षयमास आने पर १९वें, ४६वें १२२वें और कभी १४१वें वर्ष फिर क्षय मास आता है। क्षयमास के तीन महीने पहिले एक अधिक मास आता है और क्षयमास हो जाने के तीन महीने बाद पुन एक अधिक मास आता है।

पूनो का महीना

हिन्दु वर्ष और महीना पौर्णिमा से शुरू होता है। प्रत्येक हिन्दु महीने का नाम, चन्द्र पौर्णिमा को जिस नक्षत्र में होता है, उसी के अनुसार ,रक्खे गये हैं। पौर्णिमा के दिन चन्द्र श्रवण नक्षत्र में हो तो श्रावण, और ज्येष्ठा में हो तो ज्येष्ठ। इसी प्रकार और भी जानो।

गुजरात और दक्षिणी हिन्दुस्थान में शुक्ल प्रतिपदा से महीना शुरू होता है और मारवाड और उत्तर हिन्दुस्थान में कृष्ण प्रतिपदा से अर्थात् जिसे गुजरात में कार्तिक वद्य १ कहते हैं उसे मारवाड में मार्गशीर्ष कृष्ण १ कहते हैं। मारवाड में कृष्ण प्रतिपदा से नया मास लगता है परन्तु तो भी अधिक मास शुक्ल प्रतिप्रदा से ही मानते हैं। संवत् १९९३ में दो चैत्र थे मारवाडियों का चैत्रमास गुजरातियों की फालगुन कृष्ण प्रतिपदा से प्रारम्भ हो गया था। परन्तु जब गुजरातवाले अधिक मास गिनने लगे तो वे भी गिनने लगे। जब गुजरातियों ने अधिक मास पूरा होने पर चैत्र माना तो उन्होंने चैत्र के शेष १५ दिन मान लिये। शालिवाहन का वर्ष चैत्र

शुक्ल प्रतिपदा से ही बदलता है। मारवाड़ियो का चैत्र महीना तो फाल्गुन कृष्ण प्रतिपदा से ही शुरू हो जाता है परन्तु नया वर्ष तो चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से ही प्रारभ होता है कृष्णा प्रतिपदा से नया महीना प्रारभ होने की रीति कैसे चली, हम नहीं कह सक्ते। व्यापारी लोग अपना वर्ष (विक्रम सक्रान्ति की) कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से बदलते हैं।

चन्द्र पर क्या है ?

चन्द्र बहुत बारीकी से देखा गया है और खगोल शास्त्रियों ने उसके सब भागों की खूब जाच की है। हमें चन्द्र पर काले धब्बे दिखाई देते हैं। बहुत से लोग कहते हैं कि इस में मनुष्य का मुख नजर आता है। हिन्दू लोग इसे देवता मानकर पूजते हैं। इसके चित्र में मुँह मूँछ आदि बनाये जाते हैं। क्रेश्च लोग कहते हैं कि जुडास ने जेजस क्राइस्ट को फँसाया था इसलिये उसे काले पानी की सज़ा दे चन्द्र पर भेज दिया है। एशिया माइनर के लोग कहते हैं कि चन्द्र दर्पण है उसमें पृथ्वी का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। कुछ लोग कहते हैं ये धब्बे और कुछ नहीं हरिन हैं। इस प्रकार जुदे २ लोग जुदी २ मनमानी कल्पना गढते हैं। परन्तु दुर्बीन से ये सब बातें झूँठी सिद्ध हो चुकी हैं। एक दिन एक आदमी सन्ध्या के समय किसी प्रख्यात वेधशाला में गया। उस वेधशाला में बहुत ही बडा और कीमती दुर्बीन रखा था और वहां का खगोल शास्त्री भी बडा प्रसिद्ध आदमी था। खगोल शास्त्री के पास जा उस आदमी ने चन्द्र देखने की इच्छा प्रगट की। यह सुन खगोल शास्त्री को बहुत ही आश्चर्य हुआ। अन्त में उसने कहा, कि भाई अभी तो चन्द्र आकाश में दिखाई ही नहीं देता, पॉच छः घटे के बाद चन्द्रोदय होगा उस समय आकर चन्द्र देख

हम जानते है कि जहां यह हल्की होती है वहां गर्मी कम मालूम होती है। पहाडों पर हमेशा ठंडी हवा होती है, इसका कारण यह है कि ऊपर की हवा पृथ्वी की हवा से हल्की होती है। हवा हमारे शरीर को गरम रखती है अतएव जहां हवा भारी होगी वहां गर्मी अधिक होगी। चन्द्र पर हवा नहीं, अतएव वहां धूप में शून्य अंश गर्मी होना चाहिये रात को शून्य के नीचे २००° से ज्यादा गर्मी नहीं होगी।

चन्द्र और आब हवा

कुछ लोग चन्द्र पर से हवा का मान और व्यापार की वस्तुओं के भाव ठहराते हैं। चन्द्र के ऊपर अणी पडती हो तो हवा ठीक और नीचे पडती हो तो हवा खराब होती है पर अणी हजारों वर्ष तक कैसे रहेगी हम नहीं कह सके। चन्द्र समुद्र में ज्वार पैदा करता है। ज्वार के कारण भारी जहाज भी ऊपर उठने लग जाते हैं। नदी का कूडा करकट साफ हो जाता ह और बीमारी उत्पन्न करने वाले कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

चन्द्र की सहायता से मल्लाह अपने जहाज चलाते हैं चन्द्र मल्लाहों की एक ऐसी उम्दा घडी है कि उसमें एक सेकण्ड मात्र का भी अन्तर नहीं पडता।

चन्द्र पर से तारीख का निर्णय किया जाता है ईस्वी सन् की प्रथम शताब्दि की प्रारंभिक तारीख चन्द्र ग्रहण पर से ठहराई गई थी। इसके सिवाय चन्द्र और भी कई तरह से उपयोगी है।

चन्द्र पर मनुष्य

चन्द्र पर मनुष्य रहते हैं या नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर दूरबीन से देख कर नहीं दिया जा सका। चन्द्र पर बड़े बडे,

मैदान हैं परन्तु यदि वहां हाथी हो तो भी हम नहीं देख सके। वहां के वृक्ष भी हम नहीं देख सके हैं। अमेरिका महाद्वीप के केलिफोर्निया प्रान्त में इतने बडे वृक्ष हैं कि उनके धड को कोर कर उनमें से घोडा गाडी निकाली जा सकी है यदि इतने ही बडे वृक्ष वहा हों तो भी वे हमें नहीं दिखलाई देंगे। वहा की हवा, पानी इत्यादि पर से हम अनुमान कर सके है कि वहां मनुष्य किसी हालत में नहीं रह सका। इतना भी नहीं वहा किसी भी तरह का प्राणी भी नहीं जी सका। किसी भी तरह यदि वहां पहुँच गये तो भी हम एक घंटा तो क्या एक मिनिट भी न जी सकेंगे। इसका कारण यह है कि वहा हवा नहीं। पृथ्वी पर सब जगह हवा है। हमें सांस लेने के लिये हवा की जरूरत होती है, जहा हवा न होगी पृथ्वी का कोई भी प्राणी वहा न जी सकेगा। कितना ही बडा ज्वालामुखी पर्वत क्यो न फटे और उसका कैसा भी भयानक शब्द क्यों न हो, परन्तु हवा न होने से कुछ भी सुनाई न देगा। क्या ऐसे भयानक स्थान में मनुष्य रह सका है।

कल्पना करो कि चन्द्र पर हवा है तो वहा पानी नहीं। चन्द्र पर कहीं भी तालाव, नदी, सागर इत्यादि कुछ नहीं। यदि चन्द्र पर कोई खगोल शास्त्री होता तो वह पृथ्वी को बादलों से ढकी हुई देख लेता। इन बादलो से वह पानी भी देख लेता। छोटे बडे सब जीवों के लिये पानी और हवा की बहुत जरूरत है परन्तु ये पदार्थ चन्द्र पर न होने से वहां कोई भी प्राणी जीता नहीं रह सका। वनस्पतियों को भी पानी और हवा की जरूरत है।

कल्पना करो कि वहा हवा और पानी है और हम वहा जाकर बस जाय, परन्तु एक कठिनाई और उत्पन्न होगी। गुरुत्वा-

कर्पण कम होने से प्रत्येक वस्तु हलकी हो जायगी। हमारी घडी का वजन कौडी के बराबर उतरेगा। बडे पत्थर का वजन उसी आकार के लकडी के कुन्दे के बराबर होगा, किन्तु पत्थर की रचना में कुछ भी फर्क मालूम नहीं पडेगा। बोझा उठानेवाले लोग एक थैले के बदले छः थैले उठा लेंगे वजन का अर्थ गुरुत्वाकर्पण का बल है। गुरुत्वाकर्पण का नियम है वह बल दो पदार्थ के रज समूह में सपरिमाण से रहता है और दोनों के अन्तर के वर्ग को अस्त प्रमाण में बदल जाता है। जो अन्तर दुगुना बढा दिया जाय तो बल आधा न होकर $\frac{1}{4}$ हो जायगा ऊपर के चित्र में हम देखते हैं कि पृथ्वी चन्द्र से छः गुनी बडी है। गुरुत्वाकर्पण का बल कम होने के कारण हमें वहां अच्छा नहीं लगेगा। यहा नौकर को बच्चे को गोद में उठाकर ले जाने में जो वजन लगता है वहां वह एक के बदले दो बच्चे भी उठा ले तो भी कुछ वजन नहीं मालूम होगा। क्रिकेट का गेंद वहां बहुत दूर तक फेंका जा सकेगा। आदमी घोडे पर सवार हो बडी २ खाइया और ऊंची २ बाढें सहज ही कूद सकेगा। दूसरे बहुत से ग्रहों पर हमारे समान मनुष्य रहते होंगे। परन्तु यह बात तो सच है कि जितने आदमी पृथ्वी पर रहते हैं उतने किसी जगह नहीं रह सक्ते।

सूर्य

चन्द्र यह एक आकाशी पिण्ड पृथ्वी के बहुत ही पास है और उसका पृथ्वी के साथ निकट सम्बन्ध भी है। चन्द्र पृथ्वी का लडका है जहा पृथ्वी जाती है वहा २ अपने लडके को भी साथ ले जाती है। उसे कभी नहीं अलग रहने देती। चन्द्र हमारे बहुत ही काम आता है।

चन्द्र पृथ्वी का पुत्र है वैसे ही पृथ्वी भी सूर्य की पुत्री है। पृथ्वी अपनी आकर्षण शक्ति से चन्द्र को अपने पास रखती है और सूर्य पृथ्वी को अपने पास आकर्षण करता है। सूर्य की सहायता से ही हम पृथ्वी पर रहते हैं और वही हमारा प्राण भी कहा जा सक्ता है।

सूर्य और पृथ्वी के बीच का अंतर

सूर्य और पृथ्वी के बीच का अन्तर ढूढ निकालना बडा कठिन काम है क्योंकि सूर्य पृथ्वी से बहुत ही दूर है। हम पृथ्वी के दो शहरों का अन्तर मालूम कर सके हैं, परन्तु इस अन्तर को मालूम करने के लिये कोई साधन नहीं। सूर्य पृथ्वी से ९३०००००० मील की दूरी पर है पृथ्वी का मार्ग अण्डे के आकार का है अतएव यह दूरी घट बढ़ सकती है। इन अंको.को गिनने में कितना समय लगेगा। घडी एक मिनिट में ६० बार टिक २ करती है और २४ घंटे में ८६४०० बार टिक २ करेगी। घडी को ९३०००००० बार टिक २ करने में १०७६ दिन या करीब तीन वर्ष लगेंगे। हम दूसरी तरह से भी इस दूरी का अन्दाजा कर सके हैं प्रति घंटा ४० मील चलने वाली रेलगाडी २४ घंटे में ९६० मील की यात्रा करेगी एक वर्ष में यह गाडी ३५०४०० मील की यात्रा करेगी अर्थात् इस गाडी को सूर्य के पास पहुँचने में तीन सौ वर्ष लगेंगे। जहांगीर बादशाह के जमाने में इस रेलगाडी ने यात्रा करना प्रारंभ किया होता तो वह अब वहां पहुँच जाती। ओ हो !! इतने वर्षों में ड्राइव्हर गार्ड आदि की कितनी पुश्तें हो जातीं।

सूर्य का अंतर कैसे जाना जाता है ?

सूर्य का अन्तर जानने का बहुत सरल तरीका अडमण्ड हेली (हेली धूम्र यान का पता लगाने वाला) नामक खगोल

शास्त्री ने ढूंढ निकाला है। शुक्र के संक्रमण के समय, अर्थात् जब शुक्र सूर्य के बिम्ब पर होकर जाता है, और जब उसकी परछाईं सूर्य पर काले दाग के समान नजर आती है उस समय निरीक्षण करने से यह अन्तर मालूम होजायगा।

शुक्र के संक्रमण के समय भिन्न २ स्थानों पर खड़े हो दो निरीक्षक इस छाया का अन्तर नापते हैं। उस समय सूर्य पृथ्वी के पास रहता है।

सन् १७६१ और १७६९ ई० में हेली के नियमानुसार सूर्य का अन्तर जानने का प्रयास किया गया। सन् १७६१ में खगोल शास्त्रियों को अच्छी तरह यश नहीं मिला। इसी वर्ष कप्तन कुक सरकारी खर्च से दक्षिण महासागर में भेजे गये थे और उन्होंने उसी समय आस्ट्रेलिया का पता लगाया। यूरोप के दूसरे देशों से भी जुदे २ स्थानों पर गये थे और उन सब के शोध पर से सूर्य का अन्तर ९५०००००० मील ठहराया गया। खगोल सम्बन्धी काम इतना कठिन है कि एक आदमी से दस पांच वर्ष में कुछ भी काम नहीं होता। सन् १७६९ ई० में भी सूर्य का संक्रमण देखा गया और इसके ५५ वर्ष बाद अर्थात् सन् १८२४ ई० में एकिस ने गणित द्वारा उसका अंतर ठहराया उसने सूर्य का स्थान भेद ८''५७७६ प्रसिद्ध किया, परन्तु उसे इसमें सन्देह था और गणित करते २ सन् १८३४ में उसने नीचे लिखे हुए स्थान भेद के कोण प्रसिद्ध किये—

सन् १७६१ के संक्रमण पर से स्थान भेद कोण	८५३
१७६९ ,, ,,	८५९
दोनों पर से सामान्य ,,	८५७
आजकल माना जानेवाला स्थान भेद कोण	८८

सन् १८७४ और १८८२ में शुक्र के संक्रमण हुए थे, उन पर से आजकल सूर्य का अन्तर ९३०००००० मील माना जा

है। खगोल विद्या में सूर्य का अन्तर बहुत काम आता है। क्योंकि इस पर से सब गणित किये जाते हैं। यदि सूर्य का अन्तर गलत हो जाय तो सब कुछ गलत हो जाय।

प्रकाश के वेग पर से सूर्य का अन्तर—प्रकाश सूर्य की तरफ से आता है इसलिये यदि प्रकाश का वेग मालूम हो जाय, तो सूर्य का अन्तर मालूम करने के लिये कुछ भी कठिनाई न होगी सन् १८६२ में फोकोल्ट ने प्रयोग द्वारा सिद्ध किया कि प्रकाश एक सेकण्ड में १८५२००० मील या २९८००० किलोमीटर जाता है। सन् १८७४ ई० में कोर्निश्रो ने ३००४०० किलोमीटर और सन् १८७९ में निकल ने २९९९४० किलो-मीटर प्रसिद्ध किया इन सब अंको पर से सूर्य का प्रकाश प्रति सेकण्ड ९२८०७२८० मील आता है जिस पर से सूर्य का स्थान भेद कोण ८८१११ सिद्ध हुआ।

मंगल और बृहस्पति के बीच वाले लघु ग्रहों पर से सूय का अन्तर निकाला जा सक्ता है।

डेनमार्क के रोमर नामक खगोल शास्त्री ने बृहस्पति के उपग्रहों का ग्रहण देखकर सन् १८७५ में यह सिद्ध किया कि सूर्य के परावर्तन पाये हुए तेज को पृथ्वी की कक्षा के व्यास के एक छोर से दूसरे छोर तक जाने में लगभग १६½ मिनिट लगते हैं इस ऊपर लिखे हुए हिसाब से सूर्य और पृथ्वी के बीच का अन्तर ९२०७०००० मील सिद्ध होता है। पृथ्वी की कक्षा अण्डा-कार होने के कारण उक्त अन्तर ९१४००००० मील बताया गया।

सूर्य का कद

हम सूर्य का अन्तर बता चुके हैं अब हमें उसका कद लिखना जरूरी है। सूर्य का व्यास लगभग ८६६५०० मील अर्थात् पृथ्वी के व्यास से १०९५ गुना है। जो पृथ्वी का कद बढ

कर सूर्य के बराबर होजाय और उसी परिमाण से मनुष्य भी चढे तो उनकी ऊचाई ६२५ होगी और वह उतना ही मोटा भी होगा अर्थात् अभी से १०६०५+५६००१०६०५ गुना हो जायगा।

पृथ्वी और सूर्य की तुलना करने से मालूम होता है कि सूर्य पृथ्वी से १०००००० गुना बडा है आकृति में बडा गोला सूर्य और छोटा पृथ्वी है और दोनों एक दूसरे के परिमाण में हैं। परन्तु इस परिमाण में सूर्य के रजकण शामिल नहीं। तीन लाख पृथ्वी के रजकण मिलाये जायँ तो वे सूर्य के वजन के बराबर होंगे।

सूर्य का पृष्ट भाग

सूर्य का पृष्ट भाग देखने के लिये दूरबीन में काला कांच लगाया जाता है क्योंकि यदि काला कांच न लगाया जाय तो आँखो को नुकसान पहुँचता है। आँखों के आगे काला काच रक्खे सिवाय सूर्य की ओर न देखना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से कांच फूट जाने का भय रहता है जिससे आँख को नुक्सान पहुँचने की सम्भावना रहती है।

हम सूर्य के तेजावरण को देखते हैं। चर्म चक्षु से देखने से उसका पृष्ट भाग चपटा नजर आता है परन्तु दुर्बीन से ऐसा नजर नहीं आता किनारों की अपेक्षा उसका बीच का भाग ज्यादा प्रकाशमान नजर आता है। उसके भीतर बहुत से काले दाग भी दिखाई देते हैं। ये धब्बे बिलकुल काले तो नहीं हैं पर सूर्य के दूसरे भाग की अपेक्षा कम प्रकाशित हैं अतएव उन्हें काले धब्बे नाम दिया गया है। इनके सिवाय बहुत से छोटे २ प्रकाशित कण भी नज़र आते हैं। सूर्य पर तूफान

आने से इनका आकार लम्बे मोजे के समान ऊँचा होजाता है। यह ऊँचा उठा भाग कभी २ बीस हजार मील लम्बा और दो सौ मील से भी ज्यादा ऊँचा होता है।

सूर्य पर के धब्बे

फेब्रोशियन ने सन् १७६१ में सूर्य पर धब्बे होने का पता लगाया। यद्यपि यह शोध न तो बहुत ही कीमती है और न इस के ढढने में अधिक परिश्रम ही करना पडा है। परन्तु जहा प्रत्येक आदमी को शोध करने के लिये जो मान दिया जाता है उस श्रेणी में इस आदमी का नाम सर्व प्रथम आना ही चाहिये। इन धब्बों के बीच का भाग ज्यादा काला है और किनारे का कम। ये धब्बे पोले हैं जिससे वे प्रकाशित नहीं दीखते। इस कम प्रकाशित भाग में कभी २ सूत के समान प्रकाशित रेखाए नजर आती हैं।

इन धब्बो का कद बराबर नहीं, कभी कभी एक ही धब्बा बढता जाता है और कभी वह बहुत ही छोटा होता जाता है। कभी उनमें अदल बदल इतनी तेजी से होता है कि उनका चित्र उतारना कठिन हो जाता है। धब्बे साधारणत तीन या चार हफ्ते तक रहते है। परतु कभी २ वर्ष १½ वर्ष तक भी रहते है।

छोटे छोटे धब्बो के गहरे काले भाग का व्यास ५०० मील होता है बहुत बडे धब्बे के गहरे काले भाग का व्यास ५००० मील नापा जाता है। सन् १८९२ के फरवरी मास की ता० ५ से १७ तक सब से बडे धब्बो के समूह देखा गया था जो कि १५०००० मील और ७५००० मील चौडा था।

कर सूर्य के बराबर होजाय और उसी परिमाण से मनुष्य भी चढे तो उनकी ऊंचाई ६२५ होगी और वह उतना ही मोटा भी होगा अर्थात् अभी से १०६०५+५६००१०६०५ गुना हो जायगा।

पृथ्वी और सूर्य की तुलना करने से मालूम होता है कि सूर्य पृथ्वी से १०००००० गुना बड़ा है आकृति में बड़ा गोला सूर्य और छोटा पृथ्वी है और दोनों एक दूसरे के परिमाण में हैं। परन्तु इस परिमाण में सूर्य के रजकण शामिल नहीं। तीन लाख पृथ्वी के रजकण मिलाये जायँ तो वे सूर्य के वजन के बराबर होंगे।

सूर्य का पृष्ट भाग

सूर्य का पृष्ट भाग देखने के लिये दूरबीन में काला कांच लगाया जाता है क्योंकि यदि काला कांच न लगाया जाय तो आँखों को नुकसान पहुँचता है। आँखों के आगे काला कांच रक्खे सिवाय सूर्य की ओर न देखना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से कांच फूट जाने का भय रहता है जिससे आँख को नुकसान पहुँचने की सम्भावना रहती है।

हम सूर्य के तेजावरण को देखते हैं। चर्म चक्षु से देखने से उसका पृष्ट भाग चपटा नजर आता है परन्तु दुर्बीन से ऐसा नजर नहीं आता किनारों की अपेक्षा उसका बीच का भाग ज्यादा प्रकाशमान नजर आता है। उसके भीतर बहुत से काले दाग भी दिखाई देते हैं। ये धब्बे बिलकुल काले तो नहीं हैं पर सूर्य के दूसरे भाग की अपेक्षा कम प्रकाशित हैं अतएव उन्हें काले धब्बे नाम दिया गया है। इनके सिवाय बहुत से छोटे २ प्रकाशित कण भी नजर आते हैं। सूर्य पर तूफान

जिस वर्ष सूर्य में अधिक धब्बे होते हैं उस वर्ष, बहुत सी दूकान बैठ जाती हैं। ये सब बातें कहां तक सच है हम नहीं कह सके। सारांश में धब्बो का इनसे कोई सम्बन्ध नहीं।

परन्तु इतना तो सच है कि जिस वर्ष धब्बे अधिक होते हैं उस वर्ष लोह चुम्बक तूफान अधिक होते हैं। इन दोनो में सम्बन्ध तो पाया जाता है, पर क्या सम्बन्ध है, हम निश्चित रूप से नहीं कह सके। सन् १८७३ से सन् १८८१ तक तीन बड़े बड़े लोह चुम्बक तूफान आये थे और उस समय इन धब्बों की संख्या अधिक थी। धब्बो की अधिकता से पृथ्वी में लोह चुम्बक प्रवाह चलता है। सन् १८६२ की ता० ५ से १७ तक सूर्य में बहुत बडा धब्बा दिखाई दिया। तब उतने समय तक पृथ्वी पर बहुत से लोह चुम्बक तूफान आये थे।

सूर्य का तेज

अच्छी आंख वाला आदमी पौर्णिमा की चांदनी में समाचार-पत्र पढ सक्ता है, यदि ऐसे ही १०००००० सूर्य इकट्ठे किये जाय तो उनका कितना उजेला होगा। बिजली के दीप को सूर्य के बीच में रख काले कांच से देखाजाय तो बिजली का दीपक काला नजर आवेगा। सूर्य के तेज का २२००००००००वाँ भाग पृथ्वी पर पडता है जो पृथ्वी के आस पास हवा न होती तो इससे तिगुना प्रकाश पडता और वह सफेद के बदले भूरा दिखाई देता। सूर्य की भूरे रंग की किरणें हवा में अदृश्य हो जाती हैं।

सूर्य की गर्मी

सूर्य बहुत गरम है। कितने ही कृत्रिम, उपाय क्यों न किये जाय उतनी गर्मी हरगिज उत्पन्न न होगी। इतनी गरमी है तभी तो सूर्य पर कोई पदार्थ घन रूप में नहीं। हम को यहां

ये धब्बे हमेशा एक ही स्थान पर दिखाई नहीं देते। आज हमें वे जिस स्थान पर नजर आवेंगे, वे ही कुछ समय बाद उससे पश्चिम की ओर दीख पडेंगे। इस पर से यह पता चलता है कि सूर्य अपनी धूरी पर २५ दिन में फिरता है। जो धब्बा आज पूर्व किनारे पर नजर आवेगा, वह बारह दिन के बाद पश्चिमी किनारे पर पहुँच जायगा और फिर १२ दिन पश्चात् अपनी पहले की जगह पर आ जायगा। इन धब्बों को बारीकी के साथ देखने से मालूम होता है कि सूर्य के जुदे जुदे भाग के, जुदे जुदे समय में अपनी धुरी पर फिरते हैं। विषुवतवृत पर के धब्बे २५ दिन में और ४५° उत्तराक्षास के धब्बे २७ दिन में अपनी धूरी पर फिरते हैं।

जर्मनी के डेसु नामक ग्राम में शावे नामक एक मजिस्ट्रेट था, वह अपने शौक के लिये प्रति दिन धब्बे गिनने लगा २५ वर्ष तक कठिन परिश्रम करने पर उसे मालूम हुआ कि वे अमुक वर्ष में ज्यादा और अमुक वर्ष में कम थे। इन धब्बों की मुद्दत ११°१ वर्ष है। सन् १८५३ में धब्बों की संख्या बहुत ही ज्यादा थी परन्तु वे फिर घटते घटते सन् १९०० में बहुत ही कम रह गये। वे पुन बढ़ने लगे और सन् १९०४ में फिर अधिक हो गये। धब्बों के कम ज्यादा होने का कारण अभी तक मालूम नहीं हुआ।

धब्बों का हवा से निकट सम्बन्ध है यह बात सिद्ध करने के लिये अनेकों यत्न किये गये परन्तु कुछ फल न निकला। एक आदमी का कहना है कि जिस वर्ष धब्बे अधिक होते हैं उस वर्ष पानी अधिक बरसता है। दूसरा कहता है कि उस वर्ष गर्मी अधिक पड़ती है तीसरा कहता है कि उस वर्ष शीत काल में अधिक ठंड पडती है। कोई कोई कहते हैं कि

जांयगे वह बढ़ती जायगी। गर्मी का नियम है कि जिसमें से गर्मी निकलती है उसके पास जाने से गर्मी अधिक लगती है परन्तु पहाड पर ठड पडने का दूसरा कारण है। सूर्य की गर्मी को इकट्ठा करने वाले पदार्थ पहाडो पर नहीं पाये जाते। जिससे वहां गर्मी नहीं मिल सकी। हमें सास लेने के लिये हवा की बहुत ही जरूरत है इसलिये जहा जायगे वहीं हमें हवा अधिक मालूम होगी। हवा के ही द्वारा बैलून आकाश में उडता है। हवा केवल सांस लेने के लिये ही काम नहीं आती वरन वह पृथ्वी की गर्मी को भी बाहर नहीं निकलने देती ज्यों २ हम ऊपर जायगे हवा हलकी होती जायगी। जब आदमी पहाड पर चढता है तो वह सूर्य के पास तो अलबत्ता जाता है परन्तु हवा हलकी होने के कारण गर्मी ठहरने नहीं पाती। यही कारण है कि पहाड पर गर्मी अधिक नहीं पडती जिससे उनकी ऊँची २ चोटियो पर बर्फ जम जाता है।

सूर्य से इतनी गर्मी क्यों निकलती है और कब तक निकलती रहेगी? यदि सूर्य में कोयले जलते होते तो वे ६००० वर्ष से अधिक नहीं जल सकते थे। परन्तु हम जानते हैं कि हजारों वर्ष से सूर्य में ऐसी ही गरमी है और न मालूम वह कितने वर्ष तक और रहेगी। इस से यह पता चलता है कि सूर्य हमेशा कोयले के समान नहीं जला करता।

किसी भी कारण से यह गर्मी चल रही है और कभी कम नहीं होती। कुछ लोगो का कहना है कि, सूर्य पर टूटे हुए तारों का समूह गिरा करता है जिससे वह ठडा नहीं होने पाता। टारगेट पर बन्दूक की गोली लगने से वह स्थान और गोली, दोनो ही टकराने से गरम होजाते हैं ये तारे बहुत ही तेजी से फिरते होंगे कि जिनकी रगड से इतनी गरमी पैदा

पत्थर पिघलाने के लिये बडी कठिनाई होती है, परन्तु वह सूर्य पर द्रव रूप मे पाया जाता है। अनुमान किया जाता है कि सूर्य ७००० से ८००० सेण्टीग्रेड गरम है और सूर्य से पृथ्वी पर जितनी गर्मी आती है उससे एक सैकण्ड में ६००००००० टन पानी १००° सेण्टीग्रेड गरम हो सक्ता है। लेंस से सूय की गर्मी इकट्ठी कर उससे अनेकों काम किये जा सके हैं। लेंस को धूप में रखने से सूर्य के किरण एक जगह इकट्ठे हो जाते हैं। यदि इस कांच के नीचे कागज का टुकडा रक्खा जाय तो वह शीघ्र ही जल उठेगा। सूर्य की गर्मी इकट्ठी कर उससे कई यत्र चलाये जा सक्ते हैं। अहमदाबाद में प्रदर्शिनी के समय सूर्य की गर्मी से पूरियां तली गई थीं। आग और सूर्य की गर्मी में कुछ अन्तर नही।

कई लोग यह प्रश्न कर बैठते हैं कि हम ज्यों २ गर्म चीज के पास जाते हैं हमें गर्मी मालूम होती है। परन्तु सूर्य के पास जाने से हमें गर्मी क्यों नहीं लगती ? सर रावर्ट बाल ने एक आदमी को नीचे लिखा हुआ उत्तर दिया था "मुझे विश्वास है कि तुम बडी गलती कर रहे हो। तुम कहते हो कि सूर्य के पास जाने से अधिक गर्मी लगती है पर यह बात सरासर झूँठ है। स्वीट्जरलैंड जाने वाले प्रवासी ऊँचे पहाड पर चढते हैं और वह नीचे की जमीन से सूर्य के अधिक पास हैं। अतएव उन प्रवासियो को अधिक गर्मी लगना चाहिये परन्तु असल में वहा गर्मी अधिक नहीं पडती। हरएक आदमी जानता है कि आलपस पर्वत की चोटियां हमेशा वर्फ से ढकी रहती हैं, किन्तु पहाड के नीचे गर्मी अधिक पडती है इस पर से क्या यह अनुमान नही किया जासक्ता कि हम जैसे २ सूर्य के पास जायगे गर्मी कम होती जायगी और ज्यो २ दूर होते

खग्रास के समय रंगावरण में ज्वाला के समान कुछ दिखाई पडता है। कभी २ सूर्य में से बडे जोर से हवा निकलती है और वह रंगावरण से बाहर तक चली जाती है। इन में से एक ज्वाला ४७५००० मील लम्बी और उतनी ही चौडी नजर आई थी। कभी २ फुहारो के समान ज्वाला निकला करती है, जिनमें से एक की ऊँचाई ३५०००० मील नापी गई थी। सन् १८६२ के मई मास में ऐसी ज्वाला देखी गई थी जिसकी गति प्रति सैकण्ड ३२३ मील थी। यह भी रंगावरण के समान ग्रहण के ही समय नजर आती है। किसी समय स्पेक्ट्रोसकोप नामक यन्त्र द्वारा भी देखी जाती है। सूर्य के धब्बों के ये भी कम ज्यादा हुआ करती है। जिस वर्ष सूर्य पर ज्यादा धब्बे नजर आते हैं उसी वर्ष ये भी देखी जाती है और तब ही मेगनेटी तूफान बहुत होते हैं।

मुकुटावरण

खग्रास सूर्य ग्रहण के समय जब उसकी आखिरी किरण चमकती बंद हो जाती है उस समय सूर्य के चारो ओर मोती के रंग के समान मुकुट नजर आता है। यह इतना प्रकाशित होता है कि चकाचौंध आने लग जाती है और इसका प्रकाश बहुत दूर तक पडता है।

सन् १८७८ ई० में इसकी लम्बाई ६०००००० मील नापी गई थी। दुर्बीन द्वारा देखने से इसका मध्य भाग अप्सरा के खुले बालों के समान नजर आता है। सूर्य ग्रहण न हो ऐसे समय इसे देखने का यत्न किया गया, पर कुछ फल न निकला। मुकुटावरण क्या है, यह अभी तक निश्चित रूप से नहीं जाना गया। सन् १८६६ में डाक्टर गोल्ड ने शोध के उपरान्त नीचे लिखे हुए अनुमान किये थे।

हो जाती है। यदि इन तारों से सूर्य को गर्मी मिलती होती तो पृथ्वी पर पडने वाले तारों से, सूर्य की गर्मी से आधी गर्मी उत्पन्न होना चाहिये थी। किन्तु यह बात नहीं पाई जाती। अतएव टूटने वाले तारों से, सूर्य को गर्मी, किसी हालत में नहीं मिल सकी। हमें गणित करने से मालूम होता है कि एक सैकण्ड में सूर्य से जितनी गर्मी मिलती है उतनी, एक वर्ष में भी इन तारों से नहीं मिल सकेगी।

दूसरा कारण यह बताया जाता है कि सूर्य जलती हुई हवा का गोला है। वह जैसे २ छोटा होता जाता है उसमें से गर्मी उत्पन्न होती जाती है। हम जानते हैं कि ऊपर से कोई पदार्थ डाला जावे तो वह पृथ्वी की ओर आकर्षित होगा और जहा जाकर गिरेगा वहीं गर्मी उत्पन्न होगी। सूर्य के कण धीरे २ भीतर गिरते हैं जिससे गर्मी उत्पन्न होती है। सूर्य इतना बडा है कि वह प्रति दिन छोटा होता जाता है। परन्तु ६००० वर्ष में वह जितना छोटा हुआ है उतना फर्क बडे दुरबीन से भी नहीं निकाला जा सका। यह अनुमान किया गया था कि सूर्य की गर्मी १००००००० एक करोड वर्ष तक रहेगी। परन्तु रेडियम का पता लगने पर इसकी अवधि ब्रह्मा के वर्ष से भी अधिक करदी गई। इतना होने पर भी यह विषय ऐसा है कि इसके सम्बन्ध में कोई निश्चय नहीं किया जा सका।

सूर्य की आजू बाजू का आवरण।

तेजावरण की आजू बाजू की हवा को रंगावरण कहते है। खग्रास सूर्यग्रहण के समय जब चन्द्र बीच में आजाता है तब यह तेजावरण नजर नहीं आता, उसी समय रंगावरण दीख पड़ता है। इसका रंग लाल है। इसमें हैड्रोजन हेलीअम और केलसीअम है।

पृथ्वी सूर्य के चारो ओर चक्कर लगाती है जिससे सूर्य एक राशि से दूसरी राशि में जाता हुआ नजर आता है। बंगाल में चन्द्रमास नहीं माना जाता जिससे उनकी तिथियां भी हम से भिन्न हैं। वे भी मुसलमानो के समान २१ वा २२ वां दिन गिनते हैं।

सूर्य अपनी धूरी पर फिरता है यह बात हम पहिले ही लिख चुके हैं और सूर्य अपने सब मंडल सहित हरक्यूलस नक्षत्र की तरफ जाता हुआ नजर आता है।

सूर्य हमारा प्राण कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। सूर्य हमें प्रकाश और पानी देता है और वह हम पर हुकूमत भी करता है। पृथ्वी पर ही नहीं सब ग्रहों पर भी उसकी सत्ता है।

सूर्यमाला

हम पृथ्वी, चन्द्र और सूर्य के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिख आये हैं। हम यह भी लिख आये हैं कि पृथ्वी और चन्द्र का आधार सूर्य पर है। सूर्य, ग्रह, उपग्रह और छोटे ग्रह, गिरने वाले तारे और धूम्रकेतु आदि सब आकाशी पिण्डों पर हुकूमत चलाता है, और येही सब सूर्य माला के अंग हैं। यही कारण है कि ग्रह, उपग्रह, छोटे ग्रह, गिरने वाले तारे (उल्का) धूम्रकेतु राशिचक्र तेज आदि मिलकर सूर्यमाला कहे जाते हैं।

आकाश में तारे ग्रह से छोटे नजर आते हैं। यदि हम ध्यान लगाकर न देखें तो वे चमकने वाले बिन्दु के समान नजर आवेंगे। तारे एक दूसरे से समानान्तर पर रहते हैं और ग्रह अपना स्थान बदलते हैं। किसी नक्षत्र में कोई भी ग्रह होगा तो उन नक्षत्र के तारे समानान्तर पर दिखाई देंगे। किन्तु ग्रह हररोज अपनी जगह बदलता हुआ नजर आवेगा। इसी से पाश्चात्य लोग उन्हें ठहरे हुए तारे (fixed stars)

१—सूर्य के बाहर जो कण फेंके जाते हैं वही मुकुटावरण है यह कण एक सैकण्ड में २०० मील की गति से उडते हैं।

२—ये कण बिजली के प्रति सारक प्रेरणा से एक दूसरे से मिले हुए हैं अधिक देर तक नहीं ठहर सके।

३—उन गिरने वाले तारों से जो कि सूर्य के आस फिरते हैं यह प्रकाश नजर आता है।

४—ये तीनों अनुमान मात्र है इनमें से एक नहीं कहा जा सक्ता।

सूर्य के भीतर के पदार्थ

सूर्य न तो ठोस ही है न प्रवाही है। यह कहा जा सक्ता है। उसके मध्य भाग में वह द्रव हो जाता है और फिर भाफ में यह बात कबूल की जाय कि उसमें रसायन क्रिया होनी अशक्य है तो हम हैं, कि उसकी गर्मी बहुत वर्षों तक

पृथ्वी पर मिलने वाले तत्वों में जाते हैं। अलबत्ता किसी ने भी पर उसके किरणों की स्पेकट्रोस्पो मालूम होगई थी। इन में से लोहा, और ताँबा मुख्य है। पाया जाता। हेरियम रेडियम पाये जाते हैं।

हम समझते है कि सूर्य काल को अस्त होता है, किन्तु अपनी धूरी पर फिरती है, जिससे

पृथ्वी सूर्य के चारो ओर चक्कर लगाती है जिससे सूर्य एक राशि से दूसरी राशि में जाता हुआ नजर आता है। बंगाल में चन्द्रमास नहीं माना जाता जिससे उनकी तिथियां भी हम से भिन्न हैं। वे भी मुसलमानों के समान २१ वां २२ वां दिन गिनते हैं।

सूर्य अपनी धूरी पर फिरता है यह बात हम पहिले ही लिख चुके हैं और सूर्य अपने सब मंडल सहित हरक्यूलस नक्षत्र की तरफ जाता हुआ नजर आता है।

सूर्य हमारा प्राण कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। सूर्य हमें प्रकाश और पानी देता है और वह हम पर हुकूमत भी करता है। पृथ्वी पर ही नहीं सब ग्रहो पर भी उसकी सत्ता है।

सूर्यमाला

हम पृथ्वी, चन्द्र और सूर्य के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिख आये हैं। हम यह भी लिख आये हैं कि पृथ्वी और चन्द्र का आधार सूर्य पर है। सूर्य, ग्रह, उपग्रह और छोटे ग्रह, गिरने वाले तारे और धूम्रकेतु आदि सब आकाशी पिण्डो पर हुकूमत चलाता है, और येही सब सूर्य माला के अंग हैं। यही कारण है कि ग्रह, उपग्रह, छोटे ग्रह, गिरने वाले तारे, धूम्रकेतु राशिचक्र तेज आदि मिलकर सूर्यमाला कहे जाते हैं।

आकाश में तारे ग्रह से छोटे नजर आते हैं। ध्यान लगाकर न देखें तो वे चमकने वाले नजर आवेंगे। तारे एक दूसरे से ग्रह अपना स्थान बदलते हैं। किसी होगा तो उन नक्षत्र के तारे स किन्तु ग्रह हररोज अपनी जगह इसी से पाश्चात्य लोग

कहते हैं। उन्होंने ग्रहों को भटकनेवाले तारे (wandering stars) नाम दिया है। ताराओं में से ग्रह को ढूंढ निकालने की दूसरी रीति है कि ताराओं का प्रकाश स्थिर नहीं रहता परन्तु ग्रहों का प्रकाश स्थिर रहता है। तीसरी रीति यह है कि यदि तारे दुर्बीन से देखे जांय तो उसी चमकती हुई विन्दु के समान नजर आवेंगे। परन्तु ग्रहों का आकार बड़ा दिखाई देगा।

आठग्रह

बुध, शुक्र, पृथ्वी, मगल, गुरु, यूरेनस, शनि और नेपच्यून ये आठ ग्रह हैं।

पुराने लोग बुध, शुक्र, गुरु, शनि, मगल को ही जानते थे वे लोग यह भी जानते थे कि पृथ्वी के चारो ओर बहुत से ग्रह फिरते हैं। यह टोलेमीनों का सिद्धान्त १४०० वर्ष तक माना गया। १६ वी शताब्दी में कोपरनिकस नामक विद्वान ने इस सिद्धान्त को झूठा ठहराया और अपना सिद्धान्त चलाया, जोकि अब तक माना जाता है। उसका कहना यह था कि सूर्य के चारो ओर बहुत से ग्रह फिरते हैं और पृथ्वी भी सूर्य की परिक्रमा करती है। शेष दो ग्रह पीछे से ढूंढ़कर निकाले गये। सर विलियम हरशल ने सन् १७८१ में दुर्बीन से यूरेनस का पता लगाया और नेपच्यून पहिले पहिल गणित शास्त्र की मदद से शोधा गया। और उसे सब से पहिले बर्लिन के खगोल शास्त्री वलिए ने २३ सितम्बर सन १८४६ में दुरबीन से देखा।

इसके सिवाय और कई छोटे छोटे ग्रह हैं, जिन्हें हम लघु ग्रह नाम देना अनुचित नहीं समझते। इन ग्रहों का पता १४ वी शताब्दी से लगने लगा। और आज तक करीब ५०० ग्रहों

का पता लग चुका है प्रति वर्ष इन की सख्या वढती ही जाती है। ये छोटे वडे सब ग्रह सूर्य के आस पास फिरते है और वे सूर्य से अपने अन्तर के प्रमाण में नीचे लिखे हुए है —बुध, शुक्र, पृथ्वी, मगल, लघु ग्रह, गुरु, शनि यूरेनस और नेपच्यून हैं।

कई लोग ग्रहों के दो वर्ग बनाते है। लघु ग्रह और बडे ग्रह। लघु ग्रहो को छोडकर शेष आठ बडे ग्रह कहलाते हैं।

वडे ग्रह भी दो भागो मे वांटे जा सक्ते है। भीतर के ग्रह और वाहर के ग्रह। जिन ग्रहों की कक्षा पृथ्वी की कक्षा के अन्दर है वे सब भीतरी ग्रह और जिनकी कक्षा पृथ्वी की कक्षा से वाहर है वे वाहरी ग्रह कहलाते हैं। अन्दर के ग्रहों की चन्द्र के समान कलाए हैं, परन्तु वाहर के ग्रहों में केवल मगल ही विम्बाकार रूप मे हैं। भीतर के ग्रह आधी रात को अर्थात् वे रात को यामोत्तर वृत पर दिखाई नहीं देते। वे केवल सवेरे या शाम को नजर आते हैं, परन्तु वाहर के ग्रह रात को किसी भी समय देखे जा सकते है अन्दर के ग्रह सूर्य और पृथ्वी के वीच में आ जाते हैं तब वे सर्य पर काले धब्बों के समान नजर आते हैं और इस दृश्य को सक्रमण कहते है। वाहर के ग्रहों का सक्रमण नहीं होता। भीतर के ग्रहों के उपग्रह नहीं होते परन्तु वाहर के ग्रहों के उपग्रह होते है। अनुमान किया जाता है कि वाहर के ग्रह अभी तक गरम है।

कुछ लोग लघु ग्रहों की मर्यादा मानकर बुध शुक्र, पृथ्वी और मगल को भीतरी और गुरु, शनि, यूरेनस और नेपच्यून को वाहरी ग्रह मानते है।

ग्रहों के उपरान्त आकाश में हमारे चन्द्र के समान और भी कई चन्द्र है जो उपग्रह कहलाते हैं। जैसे चन्द्र

के आस पास फिरता है वैसे ही वे भी दूसरे ग्रहों की परिक्रमा करते हैं। पृथ्वी के एक, मगल के दो, गुरु के आठ, शनि के दस, यूरेनस के चार, और नेपच्यून के दो उपग्रह है। ग्रह सूर्य के आस पास और उपग्रह अपने ग्रहों के आस पास फिरते है। ग्रह और उपग्रह दोनो ही सूर्य के तेज से चमकते है। सूर्य के गुरुत्वाकर्पण के कारण वे सूर्य के चारो ओर फिरते है और उपग्रह, ग्रहो की गुरुत्वाशक्ति के कारण, उनके चारो ओर घूमते है।

ये सब ग्रह पश्चिम से पूर्व सूर्य के चारो ओर अपनी धुरी पर फिरते है। इनके फिरने का मार्ग अण्डाकृति के समान है। उपग्रह भी ग्रहों के समान पश्चिम से पूर्व उनके चारो ओर फिरते है। केवल यूरेनस और नेपच्यून के उपग्रह पूर्व से पश्चिम को फिरते हैं। बहुत से ग्रह पृथ्वी के समान लगभग गोल है और ध्रुव के पास कुछ ज्यादा चपटे है।

केप्लर सिद्ध कर दिखाया है कि ग्रहों की कक्षा गोल नहीं है। कई वर्षों के कठिन परिश्रम के बाद उसने बताया कि यदि मगल के जुदी २ जगह के बिन्दु एक टेढी लकीर से जोडे जावें तो एक अण्डाकृति बन जायगी और उसके केन्द्रों में से एक पर सूर्य का स्थान होगा। इस प्रकार प्रत्यक्ष जाच कर मगल की कक्षा को अण्डाकार सिद्ध किया। उसने यह भी अनुमान किया कि सब ग्रहों की कक्षा अण्डे के आकार की होना चाहिये। उसने कक्षाओं पर ग्रह की गति तीन साधारण नियमो पर ठहरी हुई बताई। ये नियम गुरुत्वाकर्पण के नियमानुसार हैं।

१—ग्रह अण्डाकृति मार्ग में फिरते हैं और सूर्य उनके दो केन्द्रों में से एक पर रहता है।

२—सूर्य के चारो ओर फिरने में ग्रह बराबर क्षेत्र फल बनाते हैं।

३—ग्रहों की प्रदक्षिणा काल के समय का वर्ग सूर्य से उसके साधारण अन्तर के घन के प्रमाण में होता है।

आकृति ४१ वीं इन तीनों नियमों को खुलासा करती है पहले नियम के अनुसार, ऊपर की आकृति में ग्रह की कक्षा का आकार अण्डे के समान है। सू० केन्द्र पर सूर्य का स्थान है। सूर्य की परिक्रमा करने में ग्रह बराबर समय में, क्षेत्रफल बनाते हैं। वह काले त्रिभुज हैं। सूर्य के मध्य बिन्दु को ग्रह से जोडने वाली सरल रेखा बराबर समय क्षेत्रफल बनाती है, उसे त्रिज्या (सू० अ) कहते हैं। केप्लर के तीसरे नियम से यह जाना जाता है कि जो खगोलवेत्ता ग्रहों की प्रदक्षिणा का मार्ग शोध निकाले और पृथ्वी से सूर्य तक का अन्तर मालूम करलें तो किसी भी ग्रह का सूर्य से लगभग ९३००००० मील की दूरी पर है। परन्तु हमें गणित करने में सरलता हो अतएव यह अन्तर हम एक मील मानते हैं। पृथ्वी एक वर्ष में सूर्य की परिक्रमा करती है और गुरु १२ वर्ष में तो केप्लर के नियमानुसार $1^2 : 12^2 :: 1^3 : \text{द}^3$

$$१४४$$

इन का घनमूल लगभग ५.१ मानलें और इसे ९३००००० मील से गुण करें तो गुणन फल ८०४००००० मील आता है। यहां गुरु और सूर्य के बीच का अन्तर है। परन्तु ठीक अङ्क लेना चाहिये तभी तो उत्तर ठीक प्राप्त होगा। नहीं तो सब गलत हो जायगा। यदि किसी ग्रह की कक्षा का निश्चय करना हो तो उसका नक्षत्रों में फिरने का मार्ग निश्चय कर लेने से मालूम हो सकता है और उस पर से यह भी मालूम हो जाता है कि वह क्रान्ति वृत्त पर कितने अंश का कोण

बनता है। बुध का मार्ग क्रान्तिवृत के साथ ७° कोण बनाता है शुक्र का मार्ग ३° २४° और शनि का मार्ग २°-३० कोण बनाता है। शेष ग्रहों के कोण २ से भी कम हैं इससे यह भी जाना जाता है कि सब ग्रह क्रान्तिवृत के पास फिरते हैं। बुध जो सब से दूर है ७° का कोण बनाता है अर्थात् ग्रहों के फिरने का मार्ग क्रान्तिवृत से उत्तर ७° से दक्षिण ७° तक है और यह सब १४° का मार्ग राशि चक्र कहलाता है।

ग्रह को हम जिस नक्षत्र में देखते हैं उसी नक्षत्र में और उसी स्थान पर आने में उसे जितना समय लगता है यह ग्रह का नक्षत्र वर्ष कहलाता है।

अध्याय पन्द्रहवां

अन्दर ग्रह

अब इस अध्याय में अन्दर के ग्रहों के सम्बन्ध में कुछ लिखा जायगा। हम पहले एक जगह लिख चुके हैं कि कुछ लोग लघु ग्रहों की कक्षा में फिरने वाले ग्रहों को अन्दर के ग्रह कहते हैं और कुछ पृथवी की कक्षा के भीतर फिरनेवाले ग्रहों को। हम दूसरे विभाग के अनुसार बुध और शुक्र को अन्दर का ग्रह मानकर उनका वर्णन करते हैं।

बुध

बुध सूर्य के पास है। इसका व्यास ३००० मील है। यह सूर्य से लगभग ३६००००००० मील की दूरी पर है। परन्तु वह कभी अधिक पास और कभी अधिक दूर चला जाता है।

उसका ज्यादा से ज्यादा अन्तर ४३००००००० मील और कम से कम अन्तर २६०००००० मील है। पुराने जमाने में लोगो ने बुध का पता कैसे लगाया होगा? क्योंकि उनके पास यन्त्र तो थे ही नहीं। इसके अलावा यह ग्रह बहुत ही थोडे समय तक, सवेरे और शाम को, दिखाई देता है। आज कल बुध को देखना बडा मुश्किल है क्योंकि वह सवेरे या सांझ की दृष्टि मर्यादा पर बहुत ही थोडे समय तक नजर आता है। इसके अलावा उस समय वहा धुँधला दीख पडती है। कई लोगो ने तो इसे देखा तक नही। कोपरनीकस नामक खगोलशास्त्री ने इस ग्रह को देखने की बहुत कोशिश की पर न देख सका।

धुरी पर फिरने और प्रदक्षिणा करने का समय —बुध ८८ दिन में सूर्य की परिक्रमा करता है अर्थात् उसका वर्ष हमारे वर्ष का ¼ भाग भी नहीं है। हमारा एक वर्ष बुध के चार वर्ष के बराबर होता है।

बुध कितने समय मे अपनी धुरी पर फिरता है इसके सम्बन्ध में जुदे २ मत है। पहले लोग समझते थे कि २४ घटे में अपनी धुरी पर फिरता है। किन्तु इटाली के शाये परेली नामक खगोलशास्त्री ने कई वर्ष तक निरीक्षण कर ऐसा निर्णय किया कि चन्द्र के समान बुध का प्रदक्षिणा करने का समय और धुरी पर फिरने का समय एक ही है और उसकी एक ही बाजू सूर्य के तरफ रहती है। अमेरिका के परसिवललावेल नामक खगोलशास्त्री ने भी यही निर्णय किया है। इसका कहना है कि बुध की धुरी उसकी कक्षा के मार्ग से ६०° पर है।

निरी आँखें और दुरबीन से उसका दृश्य —बुध सूर्य के बहुत ही पास है और वह बहुत ही थोडे समय तक अर्थात् केवल

१½ घंटा सूर्योदय के बाद नजर आता है। अतएव इसे देखना कठिन काम है। इसे देखने का सब से अच्छा समय मार्च या एप्रील जब कि वह सूर्य के पास होता है, है। उस समय वह पश्चिमी दृष्टि मर्यादा पर तेजस्वी तारे के समान दिखाई देता है। दुरबीन से देखने से मालूम होता है कि यह भी चन्द्र के समान कम ज्यादा प्रकाशित दीख पडता है। इसका मुख्य कारण यह है कि न तो बुध ही स्वयं प्रकाशमान है और न दूसरे तारे ही। वह सूर्य की किरणों का परावर्तन होने से चमकता है। ऐसे ही दूसरे ग्रह भी चमकते है। चन्द्र योग के समय जैसा दिखाई पडता है वैसा यह भी योग के समय नजर आता है। उत्तम योग के समय वह पूर्णेन्दु के समान नजर आता है परन्तु इस समय वह ऐसा होता है कि नजर ही नहीं आता। उस समय वह सूर्य के साथ उदय होता, और उसी के साथ अस्त भी हो जाता है। कभी २ इस पर काले धब्बे नजर आते हैं परन्तु वे क्या हैं, निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता। शायद वे खुले मैदानी दरिया या तालाब होंगे। प्रकाश विक्षेप यंत्र द्वारा पता चला है कि इस ग्रह पर पानी की भाफ है जिस परसे अनुमान किया जाता है कि उस पर पानी और हवा मौजूद है। जब वह बहुत ही रहता है, तब उस पर पृथ्वी से चार गुनी गरमी पडती है और जब बहुत ही पास होता है तब ९ गुनी। जब अहमदाबाद में १००° या ११५° गरमी पडती है तो हम कहते हैं कि गरमी बहुत ही पडती है तब ९००° गरमी पडे तो क्या कहना! अतएव वहां मनुष्यों का रहना अशक्य ही है।

ग्रहों का वजन मालूम करना बडा कठिन काम है परन्तु खगोलशास्त्री एक ग्रह पर दूसरा आकाशी पदार्थ कितनी

आकर्षण शक्ति का प्रयोग करता है यह जानकर उनका वजन भी निकाल सकते हैं। पैंकी नामक खगोलशास्त्री ने पैंकिना नामक धूम्रकेतु शोध निकाला है। यह दुरबीन की मदद के बिना कभी नजर नहीं आता। यह धूम्रकेतु तीन वर्ष में नजर आता है। इसी की मदद से बुध का वजन निकाला जाता है।

किसी जमाने में एक खगोलशास्त्री की एक गणितशास्त्री से घनी मैत्री थी। वे कामकाज में एक दूसरे की सहायता किया करते थे। खगोलशास्त्री पैंकिना धूम्रकेतु निरीक्षण में लगा हुआ था। वह रात को धूम्रकेतु का स्थान देखकर लिख लिया करता था और फिर वह जो कुछ देखता अपने मित्र से कह देता था। इस परसे वह गणितशास्त्री वह धूम्रकेतु कहां २ और कब २ फिरेगा यह बात गणितद्वारा अपने मित्र को बताता। अपने गणित को सच्चा सिद्ध करने के लिये वह, अमुक दिन, अमुक समय और अमुक स्थान पर दिखाई देगा, यह बात भी अपने मित्र को कह दिया करता था। और वह उसी प्रकार नजर भी आता था। एक बार वह गणितशास्त्री के बताए हुए समयसे कुछ बाद और उसके बताए हुए स्थान से कुछ दूर नजर आया। खगोलशास्त्री ने अपने मित्र से कहा कि तू गणित करने में चूक गया। और गणितशास्त्रीने कहा कि तू ने देखने में गलती की। खूब वाद विवाद होने लगा और तकरार बढ गई परन्तु अन्त में उन्होंने यह ठहराया कि हम पैंकिना धूम्रकेतु को ही इसका कारण पूछेंगे। गणितशास्त्री ने धूम्रकेतु से पूछा.—'तू आज नियम तोड कर आया ? तू अपने ठीक ठहरे हुए समय पर नही आया। जहा नजर आना चाहिए वहा तू न देखा गया, तेरा मार्ग ही बदल गया है। सचमुच तूने अपना नियम भग किया इसका कारण क्या है ?'

गणितशास्त्र को विश्वास था कि उसने गणित करने में गलती की थी।

यह सुन धूम्रकेतुने उत्तर दिया :—मैं तो अपने हमेशा के नियम के अनुसार चल रहा था। तुम मेरा रास्ता जानते हो, मैं उसीपर धीरे चल रहा था। यदि मैं अकेला होता तो कभी निर्द्धारित स्थानपर ठीक समय पर आ जाता। रास्ते में, जब कि मैं तुम्हारी नजर के बाहर था, बुध मेरे पास आया। मैं कुछ बुध के मार्गपर नहीं चल रहा था! मैं तो सीधा अपने मार्गपर चला जा रहा था, परन्तु वह मुझे इधर उधर खींचने लगा। मैंने तो बडी कठिनाई से उससे अपना पीछा छुडाया और अपनी ताकत के मुआफिक तेज चलकर ठीक समय पर पहुँचने की कोशिश करने लगा। परन्तु मैं गए समय को नही पकड सका। यही कारण है कि आज मुझे आनेमें देरी हुई और मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि जिस स्थान पर आज मेरा होना जरूरी था, वहाँ मैं नहीं था।

दोनों मित्रोंने धूम्रकेतु के वचन की सत्यता का पता लगाना प्रारभ किया और उन्हें वह सच मालूम हुआ। धूम्रकेतु ने कहा था उसी स्थान पर बुध मौजूद था और उसी ने उसका रास्ता रोका था। खगोलशास्त्री को विश्वास हो गया कि गणितशास्त्री की कुछ भी गलती नहीं।

दोनों मित्र अलग होनेवाले थे परन्तु गणितशास्त्री ने खगोलशास्त्री से कहा:—"भाई! ठहरो हम इससे एक नई बात का पता लगावेंगे। पैंकिना धूम्रकेतु की असल जगह और शोधी हुई जगह में कितना अन्तर है?

खगोलशास्त्री ने कहा—"इसे जानकर क्या करोगे?"

गणितशास्त्री ने कहा कि बुधने धूम्रकेतु के मार्ग में इतने फेरफार किये हैं। यदि वह बडा होता तो और भी अधिक फेरबदल करता । इस पर से बुध का रजकण समूह जाना जा सकता है।

खगोलशास्त्री ने अन्तर बताया तब गणितशास्त्री ने गणित कर कहा कि २५ बुध मिलकर हमारे पृथ्वी के बराबर होंगे। वजन निकालने की रीति बहुत ही टेढी है और वह साधारण लोगों के जानने योग्य नहीं इसलिये हम उसे यहां देना उचित नहीं समझते। बुधने एंकिना धूम्रकेतु पर जिस आकर्षणशक्ति का प्रयोग किया था उसपर से उसके रजकण समूह का पता लग गया।

बुध का सक्रमण—कभी २ योग के समय, जब पृथ्वी, सूर्य और बुध एक सरल रेखा में होते हैं, बुध सूर्यपर काले धब्बे के समान नजर आता है। इसे बुध का सक्रमण कहते हैं। गत सौ वर्षों में ऐसे सक्रमण हुए थे। आखिरी सक्रमण तारीख १४ नवम्बर सन् १६०७ में हुआ था और अब तारीख ७ मई सन् १६२४ को होगा।

बुध के अन्दर के ग्रह

सन् १८४८ तक जितने सक्रमण हुए उनपर विचार कर लेवेरिअरने अनुमान किया है कि सूर्यमाला के सब ग्रहों के आकर्षण से बुध की गति, जितनी तेज होना चाहिए उससे अधिक तेज है। इसका कारण यह है कि बुध और सूर्य के बीच में कई छोटे ग्रह हैं।

कई लोग, जिनमेंसे कोई भी प्रसिद्ध या विद्वान खगोल-शास्त्री न था, कहते हैं कि हमने ऐसे तारे देखे हैं किन्तु

किसी भी विद्वान ने आजतक यन्त्रोंसे इन ग्रहोंमेंसे एक भी नहीं देखा। यदि ग्रह होते तो उनके संक्रमण कई बार हुए होते पर आजतक एक भी संक्रमण नहीं देखा गया। अतएव अन्दर ग्रहोंका होना सम्भव नहीं। सन् १८७५ में एक खगोल शास्त्री ने प्रसिद्ध किया था कि ऐसा एक ग्रह सूर्य पर देखा गया है। परन्तु उसी दिन दूसरे स्थानपर भी निरीक्षण किया था जिससे यह मालूम हुआ कि वह ग्रह नही था। इन संशयोंके कारण सूर्य, ग्रहण के समय बडी बारीकी से निरीक्षण किया जाता है परन्तु अभी तक एक भी ग्रह नहीं देखा गया। अतएव बुध की कक्षा में किसी ग्रह का होना निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता।

शुक्र

शुक्र सब तारात्रों से ज्यादा प्रकाशमान् है। अंधेरी रातमें शुक्र का तेज बहुत नजर आता है। पिछली रात की शान्त वायु में इसका प्रकाश अवर्णनीय दीख पडता है। यह तारा इतना तेज है कि एकबार दिखा देने बाद इसे कभी नहीं भूल सकते। सौंदर्य्य के उपासक सवेरे चार बजे उठकर इस अद्भुत दृश्य का अवलोकन अवश्य करें। जब यह तारा बहुत प्रकाशित् होता है तो दिन को भी नज़र आता है।

अन्तर और व्यास—सूर्य से इसका साधारण अन्तर ६७०००००० मील है। इसकी कक्षा गोल है इसलिए सूर्य से यह लगभग बराबर दूरीपर रहता है। इसका व्यास लगभग ७७०० मील है। अधम योग के समय दूसरे ग्रहों की अपेक्षा यह हमारे ज्यादा पास रहता है क्योंकि उस समय पृथ्वी और शुक्र में २६०००००० मील का अन्तर रहता है।

धूरी पर फिरने और प्रदक्षिणा करने का समय —शुक्र सूर्य के चारों ओर २२५ दिन में फिरता है। बहुत समय तक लोगों की यह धारणा थी कि शुक्र २३ घण्टे २१ मिनिट में अपनी धुरीपर फिरता है परन्तु मिलान के प्रसिद्ध खगोलशास्त्री शाप्पेरली ने पता लगाया कि इसका धूरीपर फिरने का समय इसके नाक्षत्र वर्ष के बराबर है। इसने जो धब्बे किसी विशेष स्थान पर देखे उन्हें ही वह तीन मासतक देखता रहा। इसके बाद तो वह कई घण्टे तक निरीक्षण करता ही रहा, परन्तु कुछ भी फर्क मालूम नहीं हुआ। इस परसे उसने अनुमान किया बुध और चन्द्रमा के समान इसका भी धूरीपर फिरने और प्रदक्षिणा करने का समय एक ही है और बुध के समान यह भी अपनी एकही बाजू सूर्य की तरफ रखता है।

शुक्र की कला —चन्द्र के समान शुक्र की भी कला है और वे दुरबीन से नजर भी आती हैं। परन्तु इन दोनों की कला में बड़ा अन्तर है। चन्द्र की कला में चन्द्र का प्रकाशित भाग एक ही वर्तुल में नजर आता है परन्तु शुक्र की कला में उस का प्रकाशित भाग जुदे २ वर्तुल में नजर आता है।

ऊपर के चित्र में शुक्र की अलायानी कला, चतुर्थांश कला और पौर्णिमा की कला दिखाई गई है। पूर्ण कलाके समय शुक्र का प्रकाशित भाग बड़े वर्तुल के समान है और पौर्णिमा के कला के समय इसका प्रकाशित भाग छोटे वर्तुल के समान रहता है। शुक्र का प्रकाश एकसा नहीं रहता। इसका कारण यह है कि अधम योग के समय यह हमारे पास और उत्तम योग के समय हमसे दूर रहता है। इस अन्तर का प्रमाण १:६ है। अर्थात् अधम योग के समय वह हम से जितनी दूरीपर रहता है उससे छ गुनी दूरीपर उत्तम

के समय रहता है और इसी कारण से $\frac{1}{6}$ भाग छोटा नजर आता है और इसका तेज भी इसी प्रमाण में कम होता है। चन्द्र अपने सारे मार्ग में पृथ्वी से बराबर दूरीपर रहता है, जिससे उसके प्रकाश और आकार में कुछ भी फर्क नहीं पडता जो शुक्र गुरू के समान बडा होता तो उसकी पूर्णकला निरी आंखों से नजर आती और यह साबित हो जाता कि शुक्र स्वय प्रकाशमान नहीं। यह बात जानने के लिये अन्य साधन भी है, परन्तु यदि ऐसी स्थिति होती तो उसे सिद्ध करने में कुछ भी कठिनाई नहीं पडती।

दृश्य —यह ग्रह आकाश के सब ताराओंसे ज्यादा चमकीला है। छोटे दुरबीन से भी इसका [प्रकाश बहुत तेज नजर आता है। कभी २ इसपर धब्बे नजर आते हैं पर वे दरिया हैं या खंड, हम निश्चितरूप से नही कह सकते। इसके ध्रुवपर सफेद धब्बे भी देखे गए हैं और कहा जाता है कि यह ध्रुव परका बर्फ होना चाहिए। जब शुक्र अधम योग से पश्चिम को होता है तो वह सूर्य के पहले उदय होता है। इस जगह पर, प्राचीन काल में ग्रीस लोग उसे लुसिफर याने दिन का दूत कहा करते थे। जब यह उत्तम योग से पूर्व में होता है तब सांझ को अस्त हो जाता है। और इस जगह पर ग्रीक लोग उसे हेस्पेरस (सांझ का दूत) कहा करते थे। संस्कृत में इसके, दैत्यगुरु, काव्य, उशनशभार्गव, कवि आदि नाम हैं।

हवा —जब शुक्र का संक्रमण होता है तब इसके बिम्बके आसपास प्रकाश नजर आता है। यह सूर्य का प्रकाश उसकी हवामें होकर बाहर आता है। पृथ्वी की हवा से सूर्य की हवा ज्यादा भारी है। प्रकाश विक्षेप यंत्र द्वारा यह भी सिद्ध किया गया है कि इसपर पानीकी भाफ है।

शुक्र का जातीय गुरुत्व पृथ्वीके जातीय गुरुत्व से लगभग बराबर है। यदि पृथ्वी का जातीय गुरुत्व एक होता तो उसका ८५ होगा। इसपरसे यह भी अनुमान किया जाता है कि शुक्र ठोस है। पानी के साथ इस जातीय गुरुत्व की तुलना की जावे तो वह ४ ८१ गुना मालूम होता है। शुक्र पर पृथ्वी से कुछ कम गुरुत्वाकर्षण है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि जो पदार्थ यहां एक सेकण्डमें १६ फीट गिरता वह वहां १३ फीट गिरेगा। यह बादलों से छाया हुआ है अतएव बहुत प्रकाशित है क्योंकि बादल किरणों का अच्छा परावर्तन करते हैं।

बृहस्पति

अभीतक हम जिन ग्रहों के सम्बन्धमें पढ चुके हैं उनका अनुक्रम सूर्य से उनके अन्तर के प्रमाणमें है और उस प्रमाण में लघु ग्रहों के बाद बृहस्पति आता है। यदि सबसे बड़े ग्रह को पहला नम्बर दिया जाता तो बृहस्पति ही को यह पद प्राप्त होता। शनि, बृहस्पति, से बहुत ही कम है। इसके बाद उतरते कद के यूरेनस और नेपच्युन हैं। इन सब ग्रहों के कद से पृथ्वी बहुत छोटे कदकी है। पृथ्वीसे बृहस्पति १३०० गुना बड़ा है। जो प्रकाश के अनुसार नम्बर दिया जाता तो पहला नम्बर शुक्र को और दूसरा गुरुको मिलता।

लघु ग्रह का मार्ग

अन्तर —सूर्य से इसका साधारण अन्तर ४८३००००००० मील है। इसका साधारण व्यास ८८२०० मील है। यह पृथ्वी से ज्यादा चपटा है। इसका विषुववृत्तपर का व्यास ८९६०० मील और ध्रुवपर का व्यास ८४४०० है। पृथ्वीके दोनों व्यासों का अन्तर केवल २५ २६ मील है पर इसके व्यासों का अन्तर

५२०० मील है। बृहस्पति पर नजर डालते ही वह चपटा गोल नजर आता है।

प्रदक्षिणा का काल और धुरी पर फिरने का काल —इसकी प्रदक्षिणा का काल लगभग बारह वर्ष (११ ८६ वर्ष) है। जैसे २ ग्रह सूर्य के पास आता जाता है, उसके फिरने का मार्ग बड़ा और उसकी गति कम होती जाती है। मगल प्रति सेकण्ड १५ मील और बृहस्पति ८ मील चलता है। ऊपर लिखे हुए कारणों से बृहस्पति अपनी कक्षा में १२ वर्ष में फिरता है। यही कारण है कि हमारा सिंहस्थ वर्ष १२वें वर्ष आता है। बृहस्पति एकबार सिंह राशिमें प्रवेश होता हैं वह वहां से निकल उसी राशि में १२ वर्ष में आता है और इन बारह वर्षों में वह १२ राशि में फिरता है। इसे एक राशिसे दूसरी राशि में जाने को एक वर्ष लगता है। इसीसे सिंहस्थ वर्ष १ वर्ष तक रहता है। यह ग्रह बहुत ही चपटा है। ग्रह जितना ही अधिक चपटा होगा उसकी गति भी उतनी ही ज्यादा होगी। बृहस्पति अपनी धुरीपर ६ घण्टे ५५ मिनिट में फिरता है। इसका विषुवव्यास पृथ्वी के विषुवव्यास से ११ गुना बडा है, और इसकी विषुववृत्त पर की गति, पृथ्वी की विषुववृत्त पर की गति से २७ गुनी अधिक है। फिर भी इसके सब भाग समान समय में धुरीपर नहीं फिरते। सूर्य के समान इसका विषुववृत्तपर का भाग ध्रुव के भाग की अपेक्षा ज्यादा तेज फिरता है। इसकी कक्षा विषुववृत्त के साथ ३०° अंश का कोण बनाती है। अतएव बृहस्पति पर जुदी २ ऋतुएं होनी चाहिए। पृथ्वी पर सूर्य का तेज और गरमी जितनी पडती है उसका २७ वां भाग प्रकाश और गरमी बृहस्पति पर पडती है।

दृश्य —निरी आंखों से और खास प्रतियोग के समय यह ग्रह बहुतही प्रकाशित दिखाई देता है। शुक्र को छोडकर इस ग्रह के समान प्रकाशवान् ग्रह दूसरा है ही नहीं। सबसे अधिक प्रकाशित सीरीयस से भी यह उस समय चार पॉच गुना प्रकाशित रहता है। इसका तेज कुछ पीला रग लिए सफेद होता है। अच्छी दृष्टिवाले लोग इसका उपग्रह देख सकते हैं। छोटे दुरबीन से भी इसका दृश्य बहुत अच्छा नजर आता है। इसके ऊपर कुछ सामानान्तर बेल्टस (पट्टे) नजर आते हैं पर उसमें भी विषुववृत्तके पट्टे साफ नजर आते हैं। बृहस्पति पर घने बादल होने से वह स्थान काला नजर आता है। जो स्थान सफेद है वहा सफेद बादल हैं जिससे वह भाग ज्यादा प्रकाशित नजर आता है। यदि बहुत समय तक बृहस्पति को देखते रहें तो उसके बेल्टों में फेरबदल होता दिखाई देगा क्योंकि ज्यों २ ग्रह अपनी धुरी पर फिरता जायगा उसका नया भाग हमारी नजर के आगे आजावेगा। कभी २ नए बेल्ट नजर आते हैं और पुराने अदृश्य हो जाते हैं। यदि हम बारीकीसे देखें तो हमें वे सब अस्थायी नजर आवेंगे। इसीसे इसका नक्शा नहीं बनाया जा सकता। इसपर लाल रग का धब्बा कुछ स्थायी है। सन् १८७८ में प्रो० प्रीचेट ने निरीक्षण कर इसका जो स्थान बताया था वह अभीतक उसी स्थानपर मौजूद है। यह धब्बा दक्षिण गोलार्ध में ३०००० मील लम्बा, और ७००० मील चौडा है। इसके प्रकाश में फेरफार हुआ करते हैं। सन् १८८३, १८८४ और १८९२ में इसका तेज कुछ कम हो गया था। हम, इस धब्बे की उत्पत्ति के सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कह सकते। कई लोग कहते हैं कि ग्रहपर कुछ फेर बदल होने के कारण गर्म हवा ऊपर चढ़ बादलों को भगा देती है। इसके सिवा अन्य छोटे

बडे कई काले और सफेद धब्बे नजर आते हैं। ये हमेशा गोल या लम्बे गोलाकार हो जाते हैं। शायद ये बादल होंगे और दूसरे बादलों से ऊपर नजर आते है। उनकी गति जुदी २ है अर्थात् उनका ग्रहके साथ कोई सम्बन्ध नहीं, ऐसा निश्चित-रूपसे कहा जा सकता है।

पृथ्वीपर सूर्य की गरमी से तूफान आते हैं। सूर्य की किरणों के बडे मैदानोंपर पडने से उनकी हवा में फेर फार हो जाता है। सूर्य की गरमी से तूफान के साथ पानी भी बरसता है। बृहस्पति पर बडे २ तूफान आते है परन्तु वहां सूर्य की गरमी तो बहुतही कम पहुंचती है, अतएव इससे यह सिद्ध होता है कि ग्रह गरम है क्योंकि तूफान गरमी के बिना नहीं आते। हमारी पृथ्वी ठडी हो गई है परन्तु बृहस्पति अभीतक गरम स्थिति में है और वह पृथ्वी के समान ठोस होता तो उसका विशेष गुरुत्व पृथ्वी के समान होता। बृहस्पति आकार में पृथ्वी से १३०० गुना बडा है, परन्तु वजनमें वह पृथ्वी से ३१६ गुना है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इसके पदार्थ द्रव स्थिति में है और हमेशा उबलते रहते हैं। जिस प्रकार सूर्य के पदार्थ भीतर से बाहर निकल पुन. भीतर पड जाते है वैसेही बृहस्पति में भी पडते हैं। ऐसा सिद्ध हो चुका है कि जो ग्रह जितना विशेष गुरुत्व के प्रमाण में बडा होता है वह उतनाही ज्यादा गरम होता है। परन्तु यह ग्रह इतना गरम नहीं है कि इसे स्वत का तेज हो। यदि यह ग्रह स्वत. प्रकाश-मान् होता तो इसके चन्द्रो का ग्रहण कभी नहीं होता क्योंकि प्रकाशित् पदार्थों की परछाई कभी नहीं पडती।

पृथ्वी पर रहनेवाले प्राणी वहां नहीं रह सकते बृहस्पति पर इतने तूफान आते हैं कि वह स्थान रहने लायक नहीं।

कुछ वर्षों बाद, जब कि ग्रह ठंडा हो जायगा और बादल अदृश्य हो समुद्र बन जायगा और जब वह पृथ्वी के समान ठोस हो जायगा, तब वहां आदमी रह सकेंगे। पहले हमारी पृथ्वी भी बृहस्पति के समान गरम थी और उसपर कोई नहीं रहता था।

उपग्रह —बृहस्पति के आठ उपग्रह हैं इनमें से चार तो गेलिलियोने दुरबीन बनाया तब ही ढूंढ निकाले थे। येही चार उपग्रह सब से पहले दुरबीन द्वारा देखे गये थे। कुछ लोग कहते हैं कि ये निरी आंखों से भी देखे जा सकते हैं, किन्तु इसका उत्तर यही है कि इनका पता लगने के पहले उन्हें कोई नहीं देख सका था। इन चारो का नाम ग्रह के पास से बाहर की ओर पहला, दूसरा, तीसरा और चौथा उपग्रह रक्खा गया है।

बृहस्पति और उसके चार उपग्रह

सन् १६१० में गेलिलियोने ऊपर लिखे चार उपग्रहों का पता लगाया। इसके २८२ वर्ष बाद लीकवेधशाला में प्रो० बरनार्डने पांचवें उपग्रह का पता लगाया। वह बहुतही छोटा है और ग्रह के इतना पास है कि साधारण शक्ति के कांच की दुरबीन से नहीं देखा जा सकता। यह बृहस्पति से ११२४०० मील की दूरीपर है। इसी वेधशाला में जनवरी सन् १९०५ में प्रो० पेरीने छठे उपग्रह का पता लगाया। इसकी कक्षा बहुत ही बड़ी है। इसी वर्ष फरवरी में प्रोफेसर ने सातवें उपग्रह का पता लगाया। सन् १९०८ में ग्रीन की वेधशाला में फोटोग्राफ की मदद से आठवें उपग्रह का पता लगाया गया।

उपग्रहों का व्यास समय वगैरह —पहले उपग्रह का २४०० मील से कुछ अधिक है। दूसरे का चन्द्र के बराबर और चौथे

का ३६०० और ३००० मील है। पाँचवे, छठे और सातवें उपग्रह का व्यास बहुतही छोटा है और अभीतक ठहराया भी नहीं गया।

ऊपर की आकृति में उपग्रहो के ग्रहण, सक्रमण और ओकलटेशन (अदृश्यता) दिखाई गई है। काली परछाई वृहस्पति की छाया है, और सूर्य से ग्रह के अधिक दूरी पर होने के कारण परछाई बहुत दूर तक चली गई है जिससे प्रत्येक उपग्रह उसकी छाया में आ जाता है। इस आकृति में दूसरा ग्रह उसकी छाया में है जिससे उसका ग्रहण हुआ है। जब उपग्रह ग्रह की छाया में न होकर उसकी आड में आ जाता है तब उसका ओकलटेशन होता है। जब कोई भी आकाशी पिण्ड दूसरे आकाशी पिण्ड की ओट में आ जावे, परन्तु उसकी परछाई में न हो तो कहा जाता है कि उसका ओकलटेशन हुआ। इस आकृति में तीसरा ग्रह पृथ्वी पर से नजर नहीं आता इसलिये उसका ओकलटेशन हुआ है। तीसरे दृश्य को सक्रमण कहते है। कोई उपग्रह जब ठीक सूर्य और ग्रह के बीच में हो और वह ग्रहपर बिन्दु के समान नजर आवे तो उस उपग्रह का सक्रमण होता है इस समय उपग्रह की छाया गृहपर पडती है पहले तीन उपग्रहों की कक्षा ग्रह की कक्षा की सतह में होने से उनका ग्रहण प्रति परिक्रमा म होता है।

इन ग्रहणो का उपयोग प्रकाश की गति का शोध लगाने में होता है। सन १६६५ में रोमरने इस गति का पता लगाया था। यद्यपि उसके समकालीन विद्वानो ने उसके इस शोधपर विश्वास नहीं किया तथापि उसकी मृत्यु के बाद, जब कि ब्रेडली ने प्रकाश विक्षेप यन्त्र का आविष्कार किया। उसके

शोध की सत्यता पर विद्वानों को विश्वास करना पड़ा। अगर पृथ्वी और बृहस्पति बराबर अन्तर पर होते, तो बृहस्पति के उपग्रहों के नियमित समय पर होने परन्तु इन ग्रहणों के समय में फर्क पड़ते देख रोमर इसका कारण ढूंढने लगा। इसे मालूम हुआ कि जैसे ॰ ग्रह प्रतियोग से दूर होता जाता है, उसका ग्रहण देरसे होने लगता है और पहले उपग्रह का ग्रहण जितनी देरसे होता है उतनीही देरसे दूसरे का, उतनीही देर में तीसरे का और उतनी ही देरसे चौथे उपग्रह का ग्रहण होता दिखाई दिया। बृहस्पति के योग के समय इसे २२ मिनिट का फर्क मालूम हुआ क्योंकि इसके पास ठीक यन्त्र न थे। आधुनिक यन्त्रों और शोध से इसका अन्तर १६ मिनिट पाया गया है। पहले ग्रहण जितनी देर से होते थे योग के बाद वे उतनीही जलदी होने लगे और अन्त में प्रतियोग के समय ग्रहण ठीक नियमित समय पर हुआ।

प्रकाश की गति

अर्थात् सूर्य के प्रकाश को आने में जितना समय लगता है, उससे दूना समय गुरु के प्रकाश को लगता है। यदि गुरु को १००० सेकण्ड लगे तो सूर्य के प्रकाश को पृथ्वी पर आने में ५०० सेकण्ड या ८ मिनिट २० सेकण्ड लगेंगे। इस पर से प्रकाश की गति प्रति सेकण्ड $\frac{९३००००००}{५००}$ = १८६०० मील मानी गई है।

बृहस्पति के उपग्रह चन्द्र के समान अपनी एक ही बाजू ग्रह की तरफ रखकर फिरते हैं। अर्थात् उपग्रहों के धुरी फिरने का और परिक्रमा का समय एक ही है।

गेलिलियोने बृहस्पति के चार उपग्रहों का पता लगाया, जिससे कोपरनिकस के सिद्धान्त का पुष्टीकरण विशेष रूपसे

हो गया। कोपरनिकसने प्रसिद्ध किया था कि सब ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं। इस बात का शोध लगाना बडी टेढी खीर है पर जब इन उपग्रहों को बृहस्पति की परिक्रमा करते हुए पाया, तो कोपरनिकसका सिद्धान्त मान लिया गया। गेलिलियोने जब यह शोध लगाया था उस समय लोगोंने उस की खूब हँसी की। कलेवियस नामक खगोलशास्त्री को इसके सम्बन्ध में बहुत कुछ संशय था, परन्तु दूरबीन से उपग्रहों को देखनेपर उसने गेलिलियोका सिद्धान्त मान लिया। एक विद्वान् तो दुरबीनद्वारा ग्रहों को देखने के लिए भी तैयार न थे, क्योंकि वे जानते थे कि यदि मैं देखूँगा तो मुझे गेलिलियो का सिद्धान्त मानना पडेगा। इसके बाद वह शीघ्र ही मर गया, उस समय गेलिलियोने कहा था कि यह रास्ते में बृहस्पति के चार उपग्रह जाते हैं। अतएव हम उनका वर्णन करते हैं।

धूम्रकेतु या पुच्छल तारे

गत सात प्रकरणोंमें जिन आकाशी पदार्थोंका वर्णन किया जा चुका है, वे सब लगभग गोल थे और उनमें से कुछ घन थे। इनमें से बहुतसों का जातीय गुरुत्व पृथ्वी के जातीय गुरुत्व से भी कम या तो भी उनका जातीय गुरुत्व हवावाले पदार्थोंसे सौ गुना अधिक था। इस प्रकरणमें जुदे ही प्रकार के आकाशी पदार्थों का विवेचन किया जायगा। उनका आकार अनियमित है। वे बहुत ही द्रव पदार्थ के बने हैं और उनका वजन भी बहुत कम है। ये ग्रह से सब प्रकार से भिन्न हैं। ग्रह तो अमुक समय पर नजर आते हैं परन्तु ये नजर नहीं आते। वे एक नजर आने लगते हैं और उनका कद इतना बढ जाता है ... एवम् अज्ञानी लोगों के हृदय में भय का ... च

लगता है। फिर अदृश्य हो जाते हैं। उनमें से बहुत से तो फिर नजर ही नहीं आते। इन आकाशी पदार्थों को धूम्रकेतु या पुच्छल तारे कहते हैं क्योंकि इनके पूँछ होती है।

पुराने जमाने में निरी आंखों से जितने धूम्रकेतु नजर आते थे वेही मालूम थे, परन्तु आजकल दुरबीनसे बहुत से धूम्रकेतु देखे गए हैं और प्रति वर्ष उनकी सख्या बढती ही जाती है। बहुतेरे खगोलशास्त्री भी तो केवल धूम्रकेतु का पता लगाने में ही लगे रहते हैं। मेसीयर नामक खगोलशास्त्री ने अपनी सारी उमर धूम्रकेतु के शोध में ही बिता दी थी। एक बार वह एक धूम्रकेतु को शोधने में लगा हुआ था परन्तु उसकी स्त्री की बीमारी के कारण वह उसे न पकड सका। बादमें यही धूम्रकेतु लिमोजीस के खगोलशास्त्री मोनटेन ने ढूँढ निकाला। जब मेसियर मरगई तब लोग उसे सान्त्वना देने को गए तो वह अपनी स्त्री के लिए शोक प्रकाशित न कर कहता,—"अरे भाई मैं क्या करू ? मैंने बारह धूम्रकेतु का पता लगाया और तेरहवां शोधता था कि मोनटेन उसे लेगया।" और आंखों में आंसू भर आते और रोने लग जाता था। तब उसे याद आती कि लोग उसे उसकी स्त्री की मृत्युके कारण सान्त्वना देने को आये हैं, तब वह स्त्री को याद करता। परन्तु उसका मन धूम्रकेतु में इतना लगा था कि वह फिर उसके लिए रोने लग जाता। प्रति वर्ष नए धूम्रकेतु शोधे जाते हैं। छोटे धूम्रकेतु निहारिका के समान नजर आते हैं परन्तु उनकी गतिपरसे उनका धूम्रकेतु होना सिद्ध किया जाता है। तीन हजार वर्ष में लगभग ७०० धूम्रकेतु शोधे गए हैं। प्रति वर्ष लगभग आधे दर्जन धूम्रकेतुओं का पता लगता है पर- [illegible] काश इतने [illegible] दुरबीन की सहायता बिना [illegible] आते। धूम्र [illegible]

सख्या वहुत ही अधिक है। गणित द्वारा पता लगाया गया है कि सूर्य के पास जितने धूम्रकेतु आते हैं उससे भी अधिक धूम्र-केतु नेपच्युन के पास होकर चले जाते हैं। केप्लर के मतानुसार पानी में जितनी मछलिया हैं उससे भी धूम्रकेतु आकाश में हैं।

बड़े धूम्रकेतुओं को उनके शोधनेवाले के नाम दिए जाते हैं। सन् १८५८ में डोनाटी नामक आदमीने एक धूम्रकेतु का पता लगाया, इसलिए उसे डोनाटी नाम दिया गया। एकिंएने एकिना धूम्रकेतु ढूँढा। जिस वर्षमें जो धूम्रकेतु शोधा जाता है उसे उसी वर्ष का नाम भी दिया जाता है। फिनलेनेकेप आफ गुडहोप के वहा सन् १८७२ में एक धूम्रकेतु को शोधा जिसका नाम 'सन् १८७२ का धूम्रकेतु' रखा गया। यदि एक वर्षमें बहुत से धूम्रकेतु देखे जावें तो उन्हें अनुक्रम से सूर्य के पास आते हुए क्रमसे नम्बर दिए जाते हैं। जिस धूम्रकेतु को दो आदमी शोध कर निकालते हैं तो उसे दो नाम दिए जाते हैं। सन् १८४२ का पोन्सब्रुकस धूम्रकेतु सन् १८१२ में पोन्सने और सन् १८८३ में फिर उसे ही ब्रुकसने ढूंढ निकाला। वराह मिहिरने 'बृहत सहिता' के ११वें प्रकरण में धूम्रकेतु के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है। उसमें, धूम्रकेतु कितने हैं, वे कैसे फिरते हैं, कहां नजर आते है, उनकी पूछ कैसी और कितनी बड़ी होती है, इत्यादि बातों का, विवेचन किया गया है। उसमें धूम्रकेतु के नाम भी दिए गए हैं। उस जमाने में भी शोधनेवाले के नाम से धूम्रकेतु पहचाना जाता है। पाराशर आदि ऋषियों ने भी धूम्रकेतु के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है।

एरिस टोटल और उसके अनुयायी धूम्रकेतुओं को पृथ्वी के साथ सम्बन्ध रखनेवाले कहते परन्तु टोलेमी इस सम्बन्ध

मैं अपने ग्रन्थ में कुछ भी नहीं लिखता। सबसे पहले टाईको-ब्राही ने सिद्ध किया कि धूम्रकेतु चन्द्रसे भी अधिक दूरीपर है और इसकी कक्षा गोल है। केपलर का मत था कि धूम्रकेतु सरल रेखा में फिरते है। हेवेलियस नामक उसके शिष्य ने सिद्ध किया कि धूम्रकेतु गोल या सीधी लकीर में नहीं फिरते परन्तु अण्डाकृति मार्ग में फिरते है। धूम्रकेतु उनकी कक्षासे ही पहचाने जाते है। धूम्रकेतु एक दूसरे से भिन्न है इतनाही नही, पर एकही धूम्रकेतु के आकार में बहुत फर्क पड जाता है। कभी २ वह बहुत बडा नजर आता है और कभी छोटा हो जाता है। एकबार नजर आए हुए धूम्रकेतु को दूसरी बार कैसे पह-चान सकते है? यह बडा कठिन प्रश्न है। उनकी कक्षा मालूम होनेसे हम फिर उसे भूल ही नही सकते। उसके दिखाव में कितना ही फेर बदल क्यों न हो पर धूम्रकेतु अपनी कक्षा कभी नही छोडता, यही कारण है कि वे एकदम पकड लिए जाते हैं।

इन धूम्रकेतुओं के फिरने के मार्ग तीन प्रकार के हैं। कितने ही अण्डाकृति मार्गमें, कितनेक पेरेबोला में और कितने ही हाइपरबोला में फिरते हैं। वे तीनो लम्बे मार्ग है पर उनमें कुछ अन्तर अवश्य है। पहला बन्ध-मार्ग और दूसरा और तीसरा अबन्ध मार्ग है पेरेबोला में उसके दो भाग समानान्तर होते है। पर हाइपरबोला में वे समानान्तर नहीं होते किन्तु उनके मार्गो के बीच का कोण बडा हो जाता है।

जो धूम्रकेतु लम्बे गोल में फिरते वे फिर नजर नहीं आते हैं। पेरेबोलामें फिरनेवाले धूम्रकेतु जब किसी बडे ग्रह के पास जाते हैं तो उनका मार्ग बदल कर अण्डाकृति होजाता है और वे इसी नए मार्ग में हमेशा फिरा करते हैं आकर्षण के कारण किसी तरह धूम्रकेतु की गति बदल जाय

तो उसका मार्ग पेरेबोलाके बदले हाइपरबोला हो जाता है। बृहस्पति के पास होकर जानेवाले धूम्रकेतु का मार्ग बहुतही बदल जाता है। बृहस्पति ने २० धूम्रकेतु का मार्ग बदल दिया है। नेपच्युन ने ६ धूम्रकेतु का मार्ग बदल डाला। धूम्रकेतु को परोणा की उपमा दी जाती है। वे कहते हैं कि अण्डाकृति में फिरनेवाले परोणा अमुक समय में पीछे आते हैं।

धूम्रकेतु के मुख्य तीन भाग हैं —कोमा या सिर, नुकलीअस या केन्द्र और दुम।

धूमकेतु

पुच्छल तारों में बादल के समान जो भाग नजर आता है वह उसका सिर। छोटे धूम्रकेतु का केवल यही भाग नजर आता है। नुकलीअस सिरमें तारा या ग्रहके समान नजर आता है। यह भाग बहुत ही प्रकाशित होता है। सब धूम्रकेतुओं में यह भाग नजर आना ही चाहिए ऐसा नहीं, तथापि धूम्रकेतु ज्यों २ सूर्य के पास जाता है, अधिक प्रकाशित नजर आता है। कभी २ इसके सिरमें एक नुकलीअस के बदले दो तीन होते हैं। सिरसे पीछेके भाग तक फैली हुई पूँछ होती है। यही भाग आंखों से आनन्ददायक नजर आता है। आग गाडी में से जिस प्रकार धुआँ निकलता है वैसेही सूर्य के पास जाने से धूम्रकेतु में से यह पूँछ निकलती है। यद्यपि धूम्रकेतु के ऊपर लिखे हुए तीन भाग बताए हैं, तो भी सब धूम्रकेतुओं में वे नजर नहीं आते। कितने ही में नेकलीअस और कितनेही में पूँछ नहीं होती। जेटस और एनवेलप्थ नाम एक चौथा भाग और होता है। जब धूम्रकेतु सूर्य के पास आता है तब उसके नेकलीअस में से जेटस निकलते है। वे ऊँचे २ होते जाते है और सिरमें अदृश्य हो जाते हैं।

धूम्रकेतु कम ज्यादा प्रकाशित भी होते हैं। कई तो इतने प्रकाशमान होते हैं, कि दिन को दोपहर के समय भी नजर आते हैं और बहुतसों को देखने के लिए शक्तिवान् दुरबीन की जरूरत पडती है। सन् १८४३ और १८८२ में जो धूम्रकेतु देखे गए थे वे दोपहर को भी नजर आते थे। इनका प्रकाश एकसा नहीं रहता। ज्यों २ वह सूर्य के पास जाता है ज्यादा प्रकाशित होता जाता है। कुछ धूम्रकेतु थोडे सप्ताह तक ही नजर आते हैं और कुछ अधिक समय तक नजर आते हैं। सन् १८८१ का धूम्रकेतु १७ महिने तक दीख पडा था। सन् १८८६ का पहला धूम्रकेतु दो वर्षतक नजर आया था।

बडे ग्रहोंसे भी इसका कद बहुत ही बडा है और यदि पूँछ भी गिनती में ली जावे तो उसका कद विलक्षण बड़ा २ हो जायगा। साधारण रीति से दुरबीन में दिखनेवाले छोटे धूम्र-केतु के सिर का व्यास ४०००० मील से १००००० मील तक होता है। सन् १८११ के धूम्रकेतु का व्यास १२००००० मील था। यह सूर्य के व्यास से भी बडा है। ज्यों २ धूम्रकेतु सूर्य के पास आता जाता है उसके सिर का व्यास कम होता जाता है। एकिना धूम्रकेतु जब वह पहले पहल नजर आता है उस समय वह सूर्य से १३०००००० मील की दूरीपर होता है। उस समय उसके सिर का व्यास ३००००० मील होता है। परन्तु जब वह बिलकुल सूर्य के पास आता है अर्थात् जब,सूर्य और एकिना के बीच में ३३०००००० मील का अन्तर होता है तब उसके सिर का व्यास १२००० से १४००० होता है।

नुकलीअस का व्यास १०० से ८००० मील तक होता है। कोमा के समान इसका कद भी कम ज्यादा हुआ करता है। पूँछ की लम्बाई १०००:००० से १५०००००० मील तक होती

है, किन्तु कभी २ वह १०००००० मील लम्बी भी होती है। सन् १८८२ के धूम्रकेतु की पूँछ भी बडी थी। इसकी पूँछ के शुरू के भाग का व्यास २००००० मील और अन्त के भाग का व्यास १०००००० मील था। धूम्रकेतु का सब से बडा भाग उसकी पूँछ है। किसी २ धूम्रकेतु के एक से भी ज्यादा पूँछ होती है।

धूम्रकेतु का कद तो मोटा होता है पर उसका रजकण समूह बहुत छोटा होता है। ऐसा न होता तो वह पृथ्वी और दूसरे ग्रहों के मार्गों पर असर किये बिना कभी नहीं रहता। बडे से बडे १००००० धूम्रकेतु इकट्ठे किये जॉय तब उनका वजन पृथ्वी के वजन के बराबर होगा। पृथ्वी आदि के आकर्षण से उनका मार्ग बदल जाता है पर उनके आकर्षण से किसी भी ग्रह का मार्ग बदला नहीं। वे बडे तो बहुत ही हैं पर उनका वजन बहुत ही कम है अतएव उनका जातीय गुरुत्व बहुत ही कम होगा। ये धूम्रकेतु इतने बारीक पदार्थ हैं और अलग २ रजकण समूह के बने हुए हैं कि जब वे तारे पर फैलते हैं तो उनके कारण उस तारे का तेज कम नहीं होता। ४०००० मील व्यास वाले धूम्रकेतु का रजकण समूह पृथ्वी के रजकण समूह का $\frac{१}{२५००००}$ वॉ भाग है और उसका जातीय गुरुत्व हवा के जातीय गुरुत्व $\frac{१}{१००००}$ होता है। जब पूँछ बहुत बडी होती है तो उसमें से तारे का प्रकाश कुछ फीका नज़र आता है।

धूम्रकेतु सूय से जितनी दूरीपर होगा उसका प्रकाश भी उसी प्रमाण में कम ज्यादा होता है। सूर्य के पास जानेपर इसमें इतनी गरमी पैदा हो जाती है कि पृथ्वी पर सब से बडी भट्ठी में भी उतनी गरमी देखने में न आवेगी। इसका

स्पेक्ट्रम दो तरह का है। पहला केवल सूर्य के से और तेज दूसरा इसके स्वत के तेज से उत्पन्न होता है। दूसरे प्रकार स्पेक्ट्रम की परीक्षा करने से मालूम होता है कि उसमें हाइड्रोकार्बन गेसीज बहुत है जब धूम्रकेतु सूर्य के पास होता है तब उसमें सोडीयम और लोहा भी देखा जाता है। इसके तेज के सम्बन्ध में अनुमान किया जाता है कि किसी कारण से उसमें बिजली के समान प्रकाश पेदा होता है।

सबसे पहले जब धूम्रकेतु दुर्बीन से देखा जाता है तब वह पतले बादल के समान दिखता है और उसका केन्द्र कुछ अधिक गहरा नजर आता है। ज्यों २ वह सूर्य के पास जाता है वह अधिक प्रकाशित होता जाता है और वह भाग नुकलीअस होता है। धूमस प्रकाश में से नुकलीअस निस्तेज तारे के समान नजर आता है। सूर्य के अधिकाधिक पास जाने से वह गरम होता जाता है जिससे उसमें तूफान होने है। ज्यों २ वह सूर्य के पास जाता है उसकी पूंछ बडी और ज्यादा प्रकाशित होती जाती है। सूर्य के पास आ जाने के बाद धीरे २ इसका सिर बडा, पूंछ छोटी और नुकलीअस निस्तेज होता जाता है।

सिरवाले भाग में घन और हवा का मिश्रण है। उल्का और धूम्रकेतु में अधिक सम्बन्ध है जो आगे बताया जावेगा। उस सम्बन्ध से ऐसा मालूम होता है कि उसमें अलग २ घन पदार्थ होना चाहिए। कोई २ कहते हैं कि ये घन पदार्थ रेत के कण के आकार के हैं।

धूम्रकेतु की दुम हमेशा सूर्य से सामने की ओर होती है। वह दृश्य आकृति पर से मालूम हो जायगा। जेट और एनवेलेप में से जो पदार्थ निकलते हैं वे कुछ सूर्य और धूम्रकेतु की

विद्युच्छक्ति से पीछे पडते हैं, जिनसे दुम बनती है। वेसेल, नोरटन और रशिया के खगोलशास्त्री बेडिचिने शोध कर सिद्ध किया है कि धूम्रकेतु का मध्य भाग और सूर्य दोनों पदार्थों को सामने की ओर भेजने है और आकर्षण का नियम इसे भग नहीं करता। बिजली का बल आकर्षण के बल से अधिक शक्तिमान होता है। कभी २ यह बल आकर्षण के बल से चार गुना होता है। साधारणत. दुम का आकार सींग के समान होता है।

खगोलशास्त्री बेडिची, जिसने इस दुम का अच्छा अभ्यास किया है, इस के तीन भाग करता है। पहले वर्ग की दुम, जो कि सूर्य के सामने की ओर होती है, लगभग सरल होता है और वह हायड्रोजन गेस की बनी हुई होती है। दूसरे वर्ग की दुम कुछ टेढी नजर आती है। इसमें आकर्षण बलसे बिजली का बल २½ गुना अधिक होता है। साधारणत अधिकांश धूम्रकेतु की दुम इसी वर्ग की होती है। यह दुम हाइड्रोजन और कारबोन की बनी होती है। इसमें मार्गगेस और ओली-फिअन्ट गेस मुख्य होते हैं। तीसरे वर्ग की दुम बहुतही छोटी और ज्यादा टेढी होती है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह दुम लोहे की भाफ से बनी होती है।

ग्रहों की कक्षा तो राशिचक्र में होती है, पर धूम्रकेतु की कक्षा राशिचक्र से बाहर भी होती है। इसकी कक्षा क्रान्तिवृत्त के साथ ०° से ९०° तक कोण बनाती है। सब ग्रह पश्चिम से पूर्व को फिरते हैं पर धूम्रकेतु पूर्व से पश्चिम को फिरते हैं।

कई धूम्रकेतु बृहस्पति, शनि आदि आकर्षण से सूर्यमण्डल में फिरने लगे हैं। आकृति देखनेसे मालूम होगा कि उसमें बताए हुए धूम्रकेतु की कक्षा के सूर्यसे दूर के बिन्दु

बृहस्पति की कक्षा पर हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि जब ये धूम्रकेतु फिरते हुए आते तो गुरु उसके मार्ग में फेरबदल कर देता और इसीसे वे सूर्यमण्डल में फिरने लगे। दूसरे ग्रहोंसे बृहस्पतिका आकर्षण बल अधिक होने से उसने बहुतसे धूम्रकेतुओंको पकडा है। बृहस्पतिने २७, शनिने २, युरेनसने ३ और नेपच्युनने ६ धूम्रकेतु पकडे हैं। हेलीका धूम्रकेतु नेपच्युन का धूम्रकेतु कहलाता है। इस प्रकार पकडने की रीति को "केपचर थिअरी" (पकडने का सिद्धान्त) कहते हैं। बृहत संहिता के ११वें प्रकरण में लिखा है कि शनि के ६० और बृहस्पति के ६५ धूम्रकेतु हैं। इससे मालूम होता है कि पुराने ज़माने में ऋषियों ने धूम्रकेतु का भी अधिक अभ्यास किया था।

धूम्रकेतुओं के अलग दल होते हैं। एक दल के धूम्रकेतु एकही मार्ग में फिरते हैं और वे एक के पीछे एक नजर आते हैं। सन् १६६८, १८४३, १८८०, १८८२, १८८७, के धूम्रकेतु एकही समूह के थे।

बृहस्पति के धूम्रकेतु

पेरिस का खगोलशास्त्री टिसेरेण्ड कहता है कि किसी धूम्रकेतु के न्युक्लिअस के फट जाने पर उसमेंसे बहुत से धूम्रकेतु उत्पन्न हो जाते हैं और यह धूम्रकेतु जिस मार्ग पर फिरता था उसीपर वे भी फिरते हैं, किन्तु उनके फिरने के मार्ग में फर्क नज़र आता है। ऐसे छ समूह अबतक मालूम हुए हैं।

धूम्रकेतु फिरकर जब पीछा आता है तो उस की दुम, जोकि पहले नजर आई, फिरसे नजर नहीं आती। इस बार दूसरी ही दुम नजर आवेगी। यह दुम हमेशा नई होती जाती है। जब २ धूम्रकेतु सूर्य के पास आता है उसके बहुतसे पदार्थों

का होता जाता है। फिर धूम्रकेतु का रजकण समूह और प्रकाश कम होता जाता है। सर ऐजक न्यूटन का मत है कि अन्तमें उसके कण अलग हो आकाशमें फैल जावेंगे। धूम्रकेतु जो कि फिर हमारी दृष्टिमें नहीं पडते अपने मार्ग में किसी दूसरे सूर्य से मिलते होंगे और शायद उस सूर्य माला के ग्रहोंने उन्हें पकड लिया होगा और वहा वे इसी दशामें फिरते होंगे।

पौर्वात्य और पाश्चात्य जन समूहमें धूम्रकेतु के सम्बन्धमें कई प्रकार के सन्देह पैदा हो रहे हैं। जेरुसेलमका नाश हुआ तब एक वर्ष पूर्व उस नगर में धूम्रकेतु नजर आया था जिसका आकार तलवार की पत्ती के समान था। लोग कहते हैं कि जब २ धूम्रकेतु दिखता है एकाध राजाकी मृत्यु होती है सन् १०६६ में हेलीका धूम्रकेतु नजर आया था और इसी वर्ष राजा विलियम विजयी ने इङ्गलैण्ड पर चढाई की थी। सन् १५२८ में धूम्रकेतु नजर आया तब लोगो के मन में भीति उत्पन्न हुई थी उसका वर्णन एम्नोपेरी नीचे लिखे मुआफिक देता है।

"यह धूम्रकेतु इतना भयकर था कि लोगों के मनमें बहुत ही भय पैदा हो गया था। कई तो भय के मारे बीमार भी हो गए थे। धूम्रकेतु के तलवार के समान दुम थी। तलवार के ओर की तरफ तीन तारे थे। बीच २ मे मनुष्य का सिर आदि आकार नजर आते थे।" आजकल की शोध के कारण भय का नाश हो गया और लोग समझने लगे कि धूम्रकेतु शोधने तथा तपासने लायक आनन्ददायक पदार्थ है। ऐसा सिद्ध हो गया है कि हवा के भीतर, और मनुष्य और वनस्पतिपर धूम्रकेतु बिलकुल असर नहीं कर सकता।

कई धूम्रकेतुओं के वर्णन, पुस्तकों में, पाए जाते हैं पर हम केवल दो का वर्णन देते हैं।

न्यूटन के समकालीन हेलीने दो दर्जन धूम्रकेतुओं की कक्षा की गिनती की तो उसे मालूम हुआ कि सन् १५३१, १६०७ और १६८२ की धूम्रकेतु की कक्षा एकही थी। तब इसने अनुमान किया कि यह तीन बार नजर आया हुआ धूम्रकेतु एकही था और वह प्रति ७५ वें वर्ष नजर आता है। वह फिर सन् १७५८ में नजर आयगा, ऐसा भी प्रसिद्ध किया। उसे अच्छी तरह मालूम था कि वह तब तक मर जायगा इसलिये उसने लिखा कि यदि यह धूम्रकेतु फिर ऊपर लिखे समय पर नजर आवे तो मुझे (हेली को) इसका शोध करने के लिये मान दिया जाय। इसलिये धूम्रकेतु का नाम हेलीका धूम्रकेतु है। उसके कहे मुआफिक यह धूम्रकेतु सन् १७५८ के क्रिस्टमस की रात को नजर आया था। यही धूम्र-केतु सन् १९१० में भी दीख पडा था। इस वर्ष और भी कितने धूम्रकेतु नजर आए थे।

सन् १८१६ में एकिना ने एकिना धूम्रकेत के फिरके का समय ३½ वर्ष ठहराया था। यह बहुत ही छोटा है। इससे केवल दुरबीन में ही नजर आता है। बुध के पास आने से इसके मार्ग में फेर बदल हो जाता है।

सन् १८८२ का धूम्रकेतु पहले पहल दक्षिण गोलार्ध में देखा गया था। उसकी दुम की लम्बाई १०००००००० मील अन्दाजी गई थी। और वह इतना प्रकाशित था कि दिन को भी नजर आता था कई लोग इस धूम्रकेतु को अभी तक न भूले होंगे।

उल्का (टूटनेवाले तारे)

हम वडे ग्रह, धूम्रकेतु आदि के सम्बन्ध में पढ़ चुके हैं अब हम बहुत ही छोटे पदार्थों का वर्णन करेंगे। धूम्रकेतु कद में सब से वडे और लघुग्रह सबसे छोटे हैं। ये उल्का नामधारी नए आकाशी पदार्थ तो लघुग्रह से भी बहुत ही छोटे हैं। इन में से कुछ तो जमीन पर पडते हैं और कुछ रास्ते में ही भस्म हो जाते हैं। इस पर से इनके दो विभाग किए गए हैं। पहले विभाग के तारे "मिटीओराइट" और दूसरे विभाग के तारे "शुटिंग स्टार" (टूटने वाले तारे) कहलाते हैं।

पुराने जमाने में उल्का (मिटीअरो) गिरा करते थे। सन १४९२ के नवम्बर की सातवीं तारीख को एलसेस में एक पत्थर गिरा था जो वहां के मन्दिर में रखा गया है और उस के पास उसका इतिहास भी लिख रक्खा है। उस रोज दो पहर के पहले गर्जना हुई थी और २८० सेर का पत्थर गिरा था जो कि जमीन में तीन फीट घुस गया था। फ्रांस रेवोल्युशन (क्रान्ति) के समय यह पत्थर वहां से उठा लिया गया था परन्तु अब पीछा वहीं रख दिया गया है। इसी तरह और भी कई जगह ऐसे पत्थर पाए गए हैं। वियना नगर में ऐसे पत्थरों का एक संग्रहालय है जोकि देखने योग्य है। मिटीओराइट साधारणतया छोटे होते हैं परन्तु कभी २ वडे भी नजर आते हे। इसके कुछ पत्थरों में लोहा और निकल धातु भी पाई जाती है। पृथ्वी के तत्त्वों का $\frac{1}{3}$ से भी अधिक भाग इस पत्थर में होते हैं। इस में कोई नया तत्त्व तो अभी तक नहीं पाया गया परन्तु नए मिश्रण को मिले हैं। साधारणत' गन्धक, फास्फोरस, तावा, कलई, अल्युमिनियम, केलसीयम आदि अधिक पाए जाते हैं। सोना या रूपा अभीतक किसी

में नहीं पाया गया। एरिझोना में से सन् १८६१ में जो पत्थर पाए गए उन में से हलके काले रंग के हीरे निकले थे इन पत्थरों पर पतली काली तह होती है जिससे वे झट पहचाने जा सकते हैं। गरमी से पत्थर के पदार्थों के पिघल जाने से ये थड बनते हैं।

आस्ट्रिया के मिनरलाजिस्ट शरमाक ने इसका अच्छा अभ्यास किया है और वह कहता है कि ये ज्वालामुखी में से निकले हुए पदार्थ है। परन्तु दूसरे विद्वानों का मत इससे मिलता जुलता नहीं। चन्द्र पर के ज्वालामुखी तो हजारों वर्ष हुए ठंडे हो गए हैं और पृथ्वी पर तो ऐसा कोई ज्वालामुखी नहीं जो इतनी ज्यादा गति वाले पदार्थ (प्रति सेकण्ड ६ मील की गति) बाहर फेंक सके। जब ग्रह पूरी पक्व स्थितिमें न पहुँचे थे तब उनके ज्वालामुखियो में शायद इतनी शक्ति होगी। खगोलशास्त्रियो का मत है कि जिस तरह निहारिका में गृह उत्पन्न हुए हैं, वैसेही ये भी उत्पन्न हुए होंगे।

उल्का आकाश में बहुत ही नजर आते हैं। यदि कोई मनुष्य आकाश की ओर पाव घण्टे तक देखा करे तो वह इतने समय में पांच छ. हजार तारे देखेगा। यदि दिन भर आकाशी पो देखते रहें तो हमें एक करोड से डेढ़ करोड तक तारे नजर आवेंगे।

ये तारे बहुतही छोटे हैं। जब ये जल उठते हैं तब पृथ्वी से ७५ मील ऊँचे होते हैं। ५० मील की ऊँचाई पर सुलगनेवाले तारे अदृश्य हो जाते हैं। इनकी गति, जब कि ये प्रकाशमान् नजर आते हैं, प्रति सेकण्ड पाच से पचास मील तक होती है ये बडी तेजी से फिरते हैं किन्तु वातावरण के कारण इनकी गति बन्द होते ही गरमी उत्पन्न हो जाती है जिससे

इनका नाश हो जाता है। सर विलियम थामस ने सिद्ध किया है कि जब ये वातावरण में प्रवेश करते हैं तब ज्वोपाइपफ्लेम में हजारों अंश गरमी होती है उसी के समान गरमी उत्पन्न होती है। उल्का के प्रकाशित होनेका कारण यह है कि ये बहुत गरम होते हैं।

वर्ष के किसी भाग में ये तारे ज्यादा टूटते हैं। प्रतिवर्ष अगस्त की १० वीं तारीख को ययाति नामक नक्षत्रमें से उल्का ज्यादा निकलते हैं। प्रति नवंबर की १३ वीं तारीख को सिंह नक्षत्र में से बहुत से तारे गिरते हैं। प्रति ३३ वे वर्ष सिंह नक्षत्र में से इतने तारे गिरते हैं कि उन्हें उल्का का झपटा कहते हैं। सन् १८३३ का झपटा बडाही अद्भुत था। ऐसा कहा जाता है कि उस वक्त २½ घण्टे में लाख तारे बोस्टनमें गिने गये थे। इनके साथ कुछ भी आवाज सुनाई नहीं दी और न जमीनपर ही कुछ पदार्थ नजर आया। पीछे की आकृति में एक टूटते हुए तारे का चित्र दिया गया है। यह गिननेवाले तारों का समूह है और फिरते २ जब पृथ्वी की कक्षा को छेदता है तब उसके आगे के बहुत से तारे गिर पडते हैं। युरेनस, नेपच्युन, बृहस्पति आदि सब गृह अपने आकर्षण से उनके अबन्ध मार्ग को बन्द मार्ग में बदल देते हैं।

धूम्रकेतु और उल्का में घनिष्ट सबन्ध है। इनकी कक्षाएं मिली हुई हैं। सन् १८६२ का धूम्रकेतु जिस कक्षा में फिरता है उसी में अगस्त के उल्का भी फिरते हैं। सन् १८६६ के टेम्बल के धूम्रकेतु की कक्षा में नवम्बर के उल्का फिरते हैं। उल्का के पत्थर को गरम करें तो उनका प्रकाश धूमूकेतु के प्रकाश के समान होता है। इसपर से कुछ लोगों का कहना है कि धूमूकेतु अलग २ ऐसे गिननेवाले तारों का समूह है।

राशिचक्र तेज भी सूर्यमाला का भाग है। वसन्त ऋतु में यह तेज सूर्यास्त के बाद राशिचक्र में दिखाई देता है जिससे इसका नाम राशिचक्र तेज रखा गया है। यह सूर्यास्त के बाद शंकु के आकार में ६०० तक नजर आता है। इनमें से बहुत मन्द प्रकाश आता है, इससे यह अनुमान किया जाता है कि वे अति ही पतली निहारिका के रूप में होगे। ये क्या हैं? इस प्रश्न को हल करने के लिए अभी तक बहुत कम साधन पाए गए हैं॥

अध्याय सोलहवां

तारे

अब हम नए पदार्थों के सम्बन्ध में विचार करेंगे। हम रात को आकाश में नजर डालें तो तारे नजर पड़ेंगे। इनको पहचानना जरूरी है। सब तारों को नहीं, तौभी अधिक प्रकाशित तारों को पहचान लेना जरूरी है। हम नगर के सब लोगों को तो नहीं पहचान सकते परन्तु तौभी गाड़ी घोड़े पर फिरनेवाले लोगों को तो पहचानते हैं। इसी तरह तेजस्वी तारों को जान लेना जरूरी है। मृगसर नक्षत्र देखने लायक है। इसमें अगणित तारे और निहारिकाएं हैं यह नक्षत्र एक बार देख लिया जावे तो फिर कभी नहीं भूलता। यह आकाश का राजा कहें तो अत्युक्ति न होगी।

आकाश में देखने से मालूम होता है कि तारे असंख्य हैं परन्तु यदि गिनती की जावे तो उनकी संख्या कम निकलेगी। अन्धेरी रात में गिनती करने से मालूम हुआ है कि ६००० से ७००० तक तारे निरी आंखों से देखे जा सकते हैं। परन्तु जब

चन्द्र आकाश में होता है तब तारे इससे भी आधे नजर आते हैं। यदि दुरबीन से देखा जाय तो वास्तव में तारे असख्य दीख पडेंगे।

पुराने जमाने में तारों के समूह बनाए गए थे। इन समूह की आकृति कल्पित कर उनके नाम रखे गए हैं। ये नाम कब रक्खे गए, निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक प्रजा के पुराने इतिहास में इन नक्षत्रों के नाम पाए जाते हैं और वे नाम मिलते जुलते हैं। क्रान्तिवृत्त के ८° उत्तर और ८° दक्षिण का पट्टा राशिचक्र कहाता है और इनके भीतर के नक्षत्र को राशि कहते हैं। ये राशियां बारह हैं। इन के नाम पहले लिखे जा चुके हैं। यही नाम अरब, अङ्गरेज ग्रीक आदि लोगों के ग्रन्थों में भी पाये जाते हैं। इससे ये सिद्ध होता है कि इनकी जन्मभूमि एक ही देश है।

हम लोगों में इस राशिचक्र के २७ भाग किये गए हैं। उनके नाम पहले दिए जा चुके हैं। इन्हीं पर से हम लोगों के महिनों को नाम दिए गए हैं। चीन के २८ नक्षत्र हमारे २८ नक्षत्रों के समान हैं। हम अभिजित नक्षत्र को ज्योतिष में गिनते हैं परन्तु पंचांग में नहीं गिनते। बारह राशियां और २७ नक्षत्र हैं अर्थात् प्रत्येक राशि में २¼ नक्षत्र आते हैं। अङ्गरेज लोग नक्षत्रों को जुदी रीति से गिनते हैं। अङ्गरेज लोग विषुववृत्तपर से पहली राशि गिनते हैं। इन राशियों के २००० वर्ष पहले रक्खे गए थे परन्तु अपने चलन के कारण विषुवविन्दु में फर्क पड गया है। अङ्गरेज लोगों की दिसम्बर २१ वीं को मकर संक्रान्ति होती है। परन्तु हम लोग, पुराने जमाने की मकर राशि के नक्षत्र पर से मकर संक्रान्ति १३ जनवरी को मानते हैं। हम जिस दिन नवीं राशि गिनते हैं

उससे २३ दिन पहले अङ्गरेजी पचांग में नवीं राशि मानी जाती है।

आकाश के दूसरे नक्षत्रों को भी नाम दिए गए हैं। शीत-ऋतु में उत्तर की ओर आकाश में सिर पर जो नक्षत्र नजर आता है उसे शर्मिष्ठा कहते हैं। और सवेरे दिखनेवाले नक्षत्र को सप्तर्षि कहते हैं। उसके आगे के दो तारों को मिलाकर सरल रेखा खींची जाय तो वह ध्रुव नक्षत्र को जाकर मिलेगी।

सप्तर्षि

बहुत प्रकाशित तारों को जुदे नाम दिए गए हैं। जैसे आर्द्रा तारा, अरुन्धती का तारा, आदि। बहुत से तारों को नाम नहीं दिया जा सकता उनमें से जिस नक्षत्र में वे होते हैं उसे क सप्तर्षि व सप्तर्षि आदि नाम दिए गए हैं। अङ्गरेजी में ग्रीक भाषा के मूलाक्षर पर से अमुक नक्षत्र के सबसे प्रकाशित तारे को अल्फा सप्तर्षि आदि नाम दिए गए हैं। हम अङ्गरेजों की नकल कर सप्तर्षि, व सप्तर्षि कहते हैं। यह कुछ हमारी जुनी पद्धति नहीं। जब नक्षत्र में मूलाक्षर से ज्यादा तारे हों तो उन्हें नम्बर दिये जाते हैं।

निरी आंखों से दिखनेवाले तारोंके प्रकाश के प्रमाण वर्ग बनाए गए हैं। सबसे ज्यादा प्रकाशित तारे पहले वर्ग में गिने जाते हैं। छठे वर्गतक के तारे निरी आंखों से देखे जाते हैं। पांचवें वर्ग के तारे उन लोगों के नजर आते हैं जिनकी नजर शार्टसाइटेड (कम नजर) होती है। छठे वर्गके तारों को जो शख्स देख सकता है उसकी नेत्र-शक्ति अच्छी होना चाहिए। इस उतरते वर्ग के तारे निरी आंखों से नहीं देखे जाते पहले वर्ग के तारे का तेज छठे वर्ग के तारेसे १०० गुना अधिक है। आकाशमें पहले वर्ग के तारे केवल २० हैं।

तारे वहुत ही दूर है। सबसे ज्यादा पास का तारा क नरतुरग गिना जाता है और उसका अन्तर सूर्य और पृथ्वी के बीच के अन्तर से २७५००० गुना अधिक है। इतनी दूरी के तेज को आनेमें चार वर्ष लगते है। सीरीयस (साइरस) इस से दूनी दूरी पर है। कितनेक तारे तो इतनी दूरीपर है कि उनका तेज यहा आनेको १०० वर्ष लगते है। और वहुतसे इससे भी दूर हैं।

वहुतसे तारे सफेद रग के हैं। कुछ पीले कुछ लाल रग के भी होते हैं। सीरीयस सफेद, वीगा भूरा और आरकटस लाल है। ताराओ के रग का आधार उसके भीतर के पदार्थों पर है।

सबसे ज्यादा प्रकाशित तारा सीरीयस है। वह वीगा से छ गुना ज्यादा प्रकाशित है। उसके समान ७००००००००० तारे इकट्ठे किए जायें तब उनका प्रकाश सूर्य के तेज के बराबर होगा। वह वहुतही दूर है जिससे उसका प्रकाश इतना मन्द मालूम हुआ। जो सीरीयस सूर्य के समान पास होता तो उसका तेज सूर्यसे भी ज्यादा मालूम होता।

इन सब ताराओं के गति होती है। पुराने लोग इसे स्थायी समझते थे पर अब यत्रों से देखने से मालूम होता है कि उनके स्थान में फर्क पडता है। वे वहुतही दूर हैं इसलिए निरी आखों से उनके स्थानमें फर्क मालूम नहीं होता। सूर्य, जो कि एक तारा है, अपने सब ग्रहों को लेकर शौरी नक्षत्र की ओर जाता हुआ नजर आता है।

कुछ तारे निरी आखों से तो एक दिखाई देते है परन्तु दुरबीन से देखने से दो मालूम होते हैं। इन दो तारों में से

एक दूसरे के आसपास फिरता नजर आता है। कितनेही तारे एकसे भी ज्यादा तारे के बने होते हैं। मृगसर नक्षत्र का तारा छ तारात्रों का बना है।

ध्रुव का तारा।

कुछ तारों के तेज में फर्क पडता हुआ मालूम होता है। किसी तारे का तेज़ अमुक समय पर अपनी पूर्व स्थिति पर आ जाता है। निरी आखो से दिखाई देनेवाले का तेज कभी २ इतना कम हो जाता हे कि वह दुरबीन में भी नजर नहीं आता।

कभी २ नये तारे नजर आते हें और वे फिर अदृश्य भी हो जाते हैं। नवम्बर सन् १५७२ को टाइकोब्राह्मीने शर्मिष्ठा नक्षत्र में एक तारा सीरीयस से भी ज्यादा प्रकाशित देखा। कई दिन तक वह तारा नजर आता रहा। दिसम्बर में यह तारा निस्तेज दिखाई देने लगा और अन्त में सन् १५७४ के मार्च में यह बिलकुल अदृश्य हो गया।

निहारिका

बादल के समान जुदे २ आकार के जो पदार्थ आकाश में दिखते हैं उन्हें निहारिका कहते हें। वे निरी आखों से बादल दिखते हें वैसे नहीं दिखते, किन्तु दुरबीन में ही दिखते हे। मृगशर नक्षत्र की निहारिका बहुत ही दिखने लायक है।

सृष्टि की उत्पत्ति निहारिका से हुई कही जाती है। लेपलेश कहता है,—"असल निहारिका बहुत ही गरम भाफ था। इसके बाद निहारिका ने गोलरूप धारण किया और धुरीपर फिरने लगी। ज्यों ज्यो निहारिका ठण्डी होती गई, वह छोटी होती गई और ज्यादा तेजी से धुरी पर फिरने लगी। ज्यों २